लेखक :
आगम भट्टाळु

✡

(प्रकरण ८-९-१०-११ का)

लेखक
शान्तीलाल वनमाली शेठ

मुद्रक : मुद्रणस्थान
जयन्तिलाल देवचंद महेता
जय भारत प्रेस
शाक मारकेट पासे-राजकोट

वीर संवत २४८५
विक्रम संवत २०१५
प्रथम संस्करण
प्रत: १००० एक हजार

कमी हुई कीमत ०-८-० मार्थी कीमत १-४-०

अनुक्रमणिका.

फोटा :



निवेदन ।

प्रिय पाठक ! यों तो तूने जीवनचरित्र आदि की अनेक पुस्तकें पढ़ी होंगी; किन्तु ऐसे विषम काल में एक बाल ब्रह्मचारी महामुनि के अतिलाभदायी एवं पठनीय जीवन चरित्र को पढ़नेका लाभ तुम्हें अमूल्य अवसर प्राप्त हुआ है, यह एक अनूठा भाग्य है । पुस्तक को पढ़कर पाठक कृतार्थ हों, यह लेखक का अभिलाप है ।

ग्रन्थ की विशिष्टता ।

सुपुत्रों ने माँ-बाप की सेवा-पूजा की हो, ऐसे अनेक उदाहरण अवनि में पाये जा सकते हैं, किन्तु इस पुस्तक का कथानायक, माँ-बाप को अपनी सेवा करने के लिए आकर्षित कर रहा है । वह तो मातृकुक्षि का परमरत्न है । कुलदीपक है ! ! उसने अपनी आत्मा को वैराग्यगृह में प्रविष्ट किया है ! ! ! उसने अपने जीवन को आगमानुकूल बनाकर, उन आगमगत सिद्धान्तों को जीवन में रहीभूत करने के लिए भगीरथ प्रयास किया है, और वह धन्य बन गया ।

ऐसे बाल ब्रह्मचारी मुनिके जीवनचरित्र में से जिन जिन घटनाओं को प्रकाश में लाया गया है, उन में ज़रा भी अति-शयोक्ति नहीं है । अक्षरशः सत्य घटना है । सूक्ष्मदृष्टि से इस का अध्ययन करने वाला एक विज्ञानस्वरूप महापुरुष का दर्शन पा सकता है ।

पाठकगण को इस अद्भुतरसमय जीवनचरित्र पढ़ने के साथ ही साथ, आत्मा में शान्तरस अलंकार भी सिद्ध होंगे ।

आगम श्रद्धालु

गोण्डल सम्प्रदाय के पूज्य आचार्य श्री १००८ श्री पुरुषोत्तमजी महाराज का

— प्रमाण पत्र —

इस ग्रन्थ के लेखक महाशयने, श्री विनोदकुमार का जीवन-चरित्र, जिस रीति से लिखा है, उस में लेखक महाशय को कथा-नायक का ज़्यादा परिचय न होने से, लेख में न्यूनता या अधिकता का दोष संभाव्य है; तथापि मुझे ज़रूर यह कहना चाहिए कि, जिन सिद्धान्तों से समन्वित, विनोदकुमार का जीवन था, उन को लक्ष्य करते हुए—नोआगमज्ञ (जाणग) शरीर, भव्यशरीर और नैगमनय के आरोपांशों को ध्यान में रखते हुए—यदि यह ग्रन्थ पढ़ा जाय, तो जरा भी अतिशयोक्ति मालूम होने की सभावना नहीं रहती।

वेरावल में मेरे साथ रहकर, रात-दिन धार्मिक सूत्रों का अध्ययन करते समय, उनके गुण का परिचय हुआ कि, उनकी सिद्धान्त के प्रति अचल श्रद्धा है। दृष्टान्त रूप में, मै जब दशवैकालिक का चतुर्थ अध्ययन सार्थ पढ़ा रहा था, उस समय उनका सविनय हर्षोल्लास, एवं उत्साह अवर्णनीय था।

विनोदमुनि में सरलता, विनय, नम्रभावना, मन्दकषाय संसार की ओर अरुचि आदि गुण इतनी अधिक मात्रा में थे कि वे प्रत्यक्ष दीख पड़ते थे मेरी देखने की रीति भी सही थी। वैराग्यभावना से प्रेरित होकर, स्वयमेव उन्होंने दीक्षा ली, और वह भी बड़ी दूर जाकर, कि जहाँ किसी भी प्रकार के विघ्न की उपस्थिति न हो, और किसी को मालूम भी न पड़े—यही उनकी दीक्षांगीकार की उत्कृष्ट भावना का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

वे मुझसे अक्सर कहा ही करते थे कि शीघ्रातिशीघ्र जगद्वन्ध विच्छिन्न करने का मैं उनके लिए प्रयास करूँ, और आत्मकल्याण कर्त्री पावनकारिणी महती दीक्षा दूं, ताकि वे कर्मक्षय कर, अनन्त आत्मीय सुखप्राप्ति करें—इस प्रकार की उन की दीक्षाप्राप्त्यर्थ अविरत याचना रहा ही करती थी।

*

आदर्श बताकर चले गये तुम



मोह विनोद मुनि आये आये चले गये तुम ॥

प्रेम-धार से पले हुए थे,
सुख वैभव में रले हुए थे।
फूल गुलाबी खिले हुए थे,

मोह नव दीक्षित हँसा रूला कर चले गये तुम ॥

शीघ्र प्राप्त कर सूत्र सार तुम,
मोह माया का तोड़ तार तुम,
स्वयं दीक्षा सोल्लास धार तुम,

मोह त्यागी वीर मौर फैला कर चले गये तुम ॥

कैसा था वैराग्य तुम्हारा,
कैसा था चरित्र तुम्हारा।
कैसा था सौभाग्य तुम्हारा,

मोह आदर्श मुनि आदर्श बताकर चले गये तुम ॥

પ્રાતઃસ્મરણીય બા.બ્ર. મુનિશ્રી વિનોદચંદ્રજી
સ્વામીના સ્મૃતિ-સ્મરણમાં

વીરાણી

— મુનિશ્રી —

વિનોદચંદ્રજી સ્વામી

દીક્ષા સંવત ૨૦૧૩ના વૈશાખ વદ ૧૨ રવિવાર

નિર્વાણ સંવત ૨૦૧૩ના શ્રાવણ શુદ ૧૨ બુધવાર

— શ્રી —

શામજી વેલજી વીરાણી

— તરફથી —

બનાવનાર વનમાળી કાલીદાસ વોરા

आदर्श बताकर चले गये तुम

ओह विनोद मुनि आये आप चले गये तुम ॥

प्रेम-भार से लदे हुए थे,
सुख वैभव में पले हुए थे।
फूल गुलाबी खिले हुए थे,

ओह नव दीक्षित ऐसा रुला कर चले गये तुम ॥

शीघ्र प्राप्त कर सूत्र सार तुम,
मोह माया का तोड़ तार तुम
स्वयं दीक्षा सोल्लास धार तुम,

ओह त्यागी वीर सौरभ फैला कर चले गये तुम ॥

कैसा था वैराग्य तुम्हारा
कैसा था भक्ति तुम्हारा।
कैसा था सौभाग्य तुम्हारा,

ओह आदर्श मुनि आदर्श बताकर चले गये तुम ॥

પ્રાતઃસ્મરણીય બા. બ્ર. મુનિશ્રી વિનોદચંદ્રજી

• • • • સ્વામીના સ્મરણમાં • • •

વીરાણી વંશવૃક્ષ

શ્રી વિનોદકુમાર

શ્રી શામજીભાઈ

શ્રી વેલજી ભાઈ

શ્રી મુળજીભાઈ

શ્રી લવજીભાઈ

— મુનિશ્રી —

વિનોદચંદ્રજી સ્વામી

દીક્ષા સવત્ ૨૦૧૩ના વૈશાખવદ ૧૨ રવિવાર

નિર્વાણ સવત ૨૦૧૩ના શ્રાવણ શુદ ૧૨ બુધવાર

— શ્રી —

શામજી વેલજી વીરાણી

— તરફથી —

બનાવનાર વનમાળી કાલીદાસ વોરા

શ્રી. વીરાભાઈ

प्रस्तावना

"वैराग्यमूर्ति विनोदमुनि"-यह शब्द प्रयोग, मुझे कुछ हद तक असमंजस में डाल देता है। विनोदकुमार को-मेरे बन्धुतुल्य दुर्लभजी भाई के पुत्र को क्या मैं मुनि कहूँ? क्या मैं विशेषण दे सकता हूँ भला? पर हाँ, भारतीय संस्कृति का यही सौजन्य है। उस संस्कृतिने शारीरिक या सामाजिक सम्बन्धो एवं वय आदि अन्याय योग्यताओं को उचित महत्त्व देते हुए भी श्रेष्ठता तो वैराग्य में ही स्थापित की है। जिसने वैराग्य धारण किया है, उसके चरणों में भारतीय समाज का मस्तक नत होता ही रहा है।

परन्तु सोचता हूँ कि वह भारत तो प्रबल वेग से परिवर्तनशील होता जा रहा है। पाश्चात्य पवन की लहरें भारत की संस्कृति के इन मूल्यों और अन्यान्य मूल्यों को आकाश के बादलों की तरह न जाने कहाँ से कहाँ घसीटकर ले जा रही हैं? यही कारण है कि खुद भारतीय मानस भी इन मूल्यों की यथार्थता के सम्बन्ध में सचमुच ही साशंक बन गया है! युगप्रभाव और संस्कारप्राबल्य, भारतीय मूल्यों की अंतर्निहित शक्ति का मुकाबिला कर रहे हैं! परिणाम तो ईश्वराधीन है, और जिस किसीने भारतीय संस्कृति का इतिहास जाना-पहचाना है, वह अभी भी आशा की नजरो से देख रहा है।

लेखक ने वैराग्यमूर्ति विनोदमुनि की आत्मस्फूरणा एवं मनोमन्थन का चित्राकन करने का प्रयास किया है। मेरे पूर्वकथनानुसार, आधुनिक भारत को, और आज के भारतीय युवक की मनोदशा को कहाँ तक मान्य है? अथवा मान्य हो तो भी उसकी यथार्थता के सम्बन्ध में कहाँतक विश्वास है?

मैं इस विषय में केवल रूढि को लेकर विचार करनेवाला विचारक नहीं हूं। वैराग्यमूर्ति विनोदमुनि की मनोवेदना और उनके सत्कृत्य को खंडित रीत्या समर्थन देकर, उनकी पुण्यस्मृति को तेजोविहीन बनाना मैं नहीं चाहता।

कुछ घटनाओं में धनसम्पत्ति पुरुषार्थ के परिणाम का रूप लेती होगी, पर वह पुरुषार्थ के लिए प्रेरकशक्ति तो कदापि नहीं है। आज पूँजीपतियों के अनेक पुत्रों को साम्यवाद के मार्ग पर जाते हुए मैं देख रहा हूँ, तब मेरे दिल में उनके प्रति सहानुभूति उत्पन्न होती है। मनुष्य की सच्ची खुराक तो भावनात्मक क्षुधा के ऊपर प्रेरणात्मक जीवनदर्शन ही है; और उसकी भूख गरीबों को जिस हद तक नहीं मालूम पड़ती, उस से कुछ अधिक मात्रा में, बहुधा धनसम्पन्न मनुष्यों, और खास करके उनके परिवार के युवान वर्ग को मालूम पड़ती है। गरीबी खुद ही समझदार आदमी के लिए पुरुषार्थ का कारण बन जाती है। उस से दूर भागनेवाला यह नहीं समझता कि, अपने पुरुषार्थ की कसौटी करने की कैसी अपूर्व वेला सामने आकर खड़ी है। वह अनिमन्त्रित समय साक्षात् और मूर्तिमन्त स्वधर्म है। भारत की अद्यतन पुरुषार्थ की घड़ी में तो गरीब अमीर-सभी के लिए राष्ट्रधर्म भी है। जिस प्रकार धनसम्पन्न परिवार के पुत्रों का साम्यवाद की ओर झुकाव, प्रेरणात्मक जीवनदर्शन के अभाव में से उत्पन्न हुआ है, ठीक उसी प्रकार, जिस कुटुम्ब में ज्यादा जोर धार्मिक संस्कारों के ऊपर दिया जाता है, वहाँ झुकाव धार्मिक उन्नति की ओर होता है। फलतः इस के पीछे प्रेरणात्मक जीवन दर्शन की भूख ही है।

लेकिन भारतवर्षने वैराग्य का इतना महत्त्व क्यों दिया?

आज के युग में उसका क्या अर्थ है, यह दूसरा प्रश्न है। सच पूछा जाय, तो एक ही महाप्रश्न के ये दो प्रश्न, दो पहलू हैं। मानव का सर्जन, सिर्फ रोटीका गुलाम बनने के लिए नहीं हुआ। उसकी विशिष्ट शक्तियों के विकास के साथ, इस वैराग्य की कल्पना का सम्बन्ध है। ईश्वरने जिन अपूर्व शक्तियों को मनुष्य में रखा है, उनका ज्यों ज्यो विकास होता है, त्यों त्यों इस मार्ग पर प्रकाशाधिक्य होता रहता है। जिस प्रकार जन्मान्ध व्यक्ति को अलग अलग रगो की कल्पना नहीं होती, और ज्ञान नहीं होता, ठीक उसी प्रकार रागद्वेषपूर्ण हमारे जीवन को भारतीय संस्कृति की इस श्रेष्ठ देन की पूरी कल्पना नहीं है, पूरा ज्ञान भी नहीं है। वैराग्य, जीवन का इन्कार करनेवाला नहीं, प्रत्युत संपूर्णतया विकसित जीवन का सौन्दर्य है आभूषन है। मनुष्य जब इन्द्रियों के स्तर पर से सोचना बन्द कर देता है, तब उस के सामने बुद्धियुक्त पुरुषार्थ का चित्र खडा होता है। जब वह बुद्धिकी सीमाएँ पार कर लेता है, तब आन्तरस्फुरणा (INTUITION) जाग्रत् होती है। जिस प्रकार बन्द आँख खुलने से पूर्व अगोचरीभूत वस्तु देखी जा सकती है, जिस प्रकार बधिरता का नाश होने से पूर्वाश्रुत (अश्रुतपूर्व) स्वरों को सुना जा सकता है, ठीक उसी प्रकार एक स्तर को पार करके दूसरे स्तर पर पहुँचनेवाला है। यदि कोई मनुष्य जन्मान्ध है—उसे दृष्टि प्राप्त नहीं हुई, इसलिए उसका यह मानना कि जगत का रंग काला है, बड़ी गलती का ही परिचायक है, जन्म से बधिर का यह मानना कि यह जगत मौन चलचित्र जैसा है, यह भी उसी प्रकार की क्षति है, ठीक इसी तरह इन्द्रिय या तर्क के स्तर पर खड़े रहकर जागतिक विचार करते हुए वैराग्य का न्याय करना यथार्थ नहीं है।

मानव के विकास की भूमिका अलग अलग होती है। इन्द्रिय के स्तर पर से जीवन के सुखदुःखों का देखनेवाला या केवल तर्कोपलब्ध सुखदुःखों के खयालों से सोचनेवाला, वैराग्य के विषय में सही निर्णायक नहीं माना जा सकता।

भारतीय जीवनदर्शन की नींव कुछ ऐसे सिद्धान्त हैं, जो अंतरिन्द्रियों के अवलोकन, मथकरण और समन्वय से निकले हैं। उनको पानेवाली विभूतियाँ उच्च स्तर पर खड़ी थीं, जो स्तर हमारा नहीं है। हम उनकी आलोचना की आलोचना करने के अधिकारी नहीं हैं, ऐसा मेरा नम्र अभिप्राय है, और इसी से मैं अपनी स्तर कक्षा में रहकर अपनी कल्पना के सुखदुःखों को ही समझ सकता हूँ, और उनकी मर्यादाओं को भी यथार्थ समझ सकता हूँ, मेरी श्रद्धा इसी प्रकारकी है। उन लोगों ने उस स्तर पर पहुँचने के लिए तपश्चर्या करने में न्यूनता नहीं रखी थी महारथियों और अतिरथियों की वीरता भी उनकी धीरता के आगे तेजोहीन बन जाए, ज्वाजल्यमान बुद्धिमत्ता भी उनकी धीरता के आगे अपना सर झुकाए, अमरतम शहीदकी शहीदी, उनकी शहादत के आगे तुच्छ बन जाए, ऐसी उन विभूतियों के प्रसादरूप ये सिद्धान्त, भारतीय समाज के पास पड़े हैं क्या हम उस प्रसाद में से श्रद्धापूर्वक कुछ पा सकते हैं?

मैं जानता हूँ कि युगप्रवाह दूसरी ही दिशा की ओर बह रहा है, मैं यह भी समझ रहा हूँ कि आज का युग, आज के प्रश्नों को आज की परिस्थिति में और समाज की आज की स्तर कक्षा में रहकर ही सोच सकता है, किन्तु यदि मेरी गलती न हो, तो मैं कह सकता हूँ कि अधतन युग के प्रारंभ से ही— साथ ही साथ उसकी कसौटी के प्रारम्भाक्षर के साथ ही, घुन का भी श्रीगणेश हो चुका है—भयानक अन्दरूनी पोल भी जन्म

ले चुकी है, ऐसा इस युग के सर्जकों को भी मालूम पड़ गया है। केवल पोल ही नहीं, उस भयानक गह्वर में भयानक कद्रूप राक्षसी स्वरूप भी उत्पन्न हो चुके हैं, जो कि समाज को चारों ओर से खा जाने के लिए मुँह फाडकर गर्जना करते हुए प्रतीत हो रहे हैं। युगप्रवाह की परीक्षा में से समय का सवाल है, उस प्रकार मानव समाज की अस्ति–नास्ति का सवाल भी विचार को न्यौता दे रहा है, और मानव जाति का यह सौभाग्य है कि उस के सम्बन्ध में विचारणा हो भी रही है। किसी भी समाजका नेतृत्व, युगप्रवाह के व्यापक असरों को सोचे विना रह नहीं सकता। जो मूल्य युगप्रवर्तकों के ज़रिये समाज को प्रेरणा देने के लिए होते हैं, उनका विचार, सिर्फ मानवता के दोनों घटकों के हिताहित की दृष्टि से ही नहीं होता, या सिर्फ युगप्रवर्तकों के जीवनकालावच्छिन परिस्थिति की दृष्टि से भी नहीं होता। हज़ारों वर्षों तक जिनके फल समाज द्वारा भोग्य हों, उन तत्त्वसिद्धान्तों की विचारणा के लिए विश्वव्यापी और त्रिकाल-गामिनी दृष्टि की अनिवार्य आवश्यकता है। ये ही मूल्य समाज की रचना, रक्षा और संगठन के लिए हितकर सिद्ध हो सकते हैं।

दूसरा भी एक प्रश्न है, और उसका सम्बन्ध वर्तमान समय में वैराग्य की यथार्थता से है। जब इस वस्तु का विचार करता हूँ, तब मेरे सामने वैराग्यमूर्ति विनोदमुनि आते हैं। मनुष्य के जीवन का प्रारम्भ, मनुष्य के जन्म ही से नहीं होता, और मृत्यु से जीवन का अन्त नहीं होता। सूक्ष्म भावनाएँ और सूक्ष्म संस्कार मनुष्य के साथ संगति करते ही रहते हैं। श्री दुर्लभजी भाई के यहाँ, विनोदमुनि का जन्म, इन संस्कारों का परिपाक था। आज भी श्री दुर्लभजी भाई के पिता स्वर्गीय शामजी भाई का प्रतिभा सम्पन्न, तेजस्वी और धर्मनिष्ठ व्यक्तित्व, मेरे सामने खड़ा होता है। लाखों की सम्पत्ति के

बीच, धर्मसंस्कार किस प्रकार बड़ा युद्ध खेल सकते हैं, यह खामजी भाई बीराणी के कुटुम्ब में मैं देखता था। अत्यन्त सादी रहन-सहन, स्वधर्म दृष्टि से व्यापार करने की रुचि, मुसीबतों में सहायता करने की भावना और तदुपरान्त जैन-धर्म की कड़ी धार्मिक शिस्त का पालन। श्री दुर्लभजी भाई की पत्नी की अपनी सास की एकनिष्ठ सेवा भी मेरी नज़रों में आती है। श्री दुर्लभजी भाई की सुदृढ़ धार्मिक रुचि भी मेरे सामने आती है। अपने संस्कारों की पूँजी को, इन संस्कारों का समर्थन मिला, और कई जन्मों के भवानुबन्धयोग शुष्क होकर विकीर्ण हो गये।

वैराग्य के लिए जिस प्रकार परिपक्व दृष्टि अनिवार्य है, उसी प्रकार अनुकूल वातावरण भी पोषक बनता है। उनको दोनों प्राप्त हुए, और उन्होंने धर्ममार्ग में प्रयाण किया।

मैंने ऊपर कहा कि मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है परोक्ष रीति से संस्कारिता बहती ही रहती है, और उस के स्वच्छ जल, सदाचार और स्वच्छता की प्रेरणा दे सकते हैं मलिन जल रजस् और तमस् को प्रेरणा दे सकते हैं। इस संस्कारिता का आगममार्ग हमारे पास नहीं है, किन्तु मनुष्य की उत्कृष्ट इच्छा पर से, उस के वेग का नापा जा सकता है; और उसके स्वच्छ निर्मल व्यवहार पर से उस के जल की निर्मलता का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है।

और तो क्या लिखूँ मैं ? उस नवयुवान मुनि के जीवन प्रवाह, उन के आसपास के जनसमुदाय और संसार के छीछले व्यवहारों के नीचे-गहराई में, जो सनातन सिद्धान्त पड़े हैं, उनका संशोधन करने की हमें प्रेरणा दे।

—वेचर भाई

श्री विनोदमुनि ने दिनाङ्क २३–५–'५७ के रोज़ भागवती दीक्षा का अङ्गीकार किया, और चिरंजीव शान्तिभाई ने दिनाङ्क १७–६–'५७ के रोज लग्नदीक्षा ली।

ये दोनों भिन्न प्रकारकी दीक्षाएँ होते हुए भी स्वधर्म दीक्षाएँ ही मानी जा सकती हैं—इस भाव को सूचित करता हुआ श्री ढेबरभाइ का तारसन्देश हम सादर पेश करते हैं:–

DT. 17-6-57

XRF NEW DELHI 15 82 VINOD, RAJKOT

I SEND MY BEST WISHES FOR THE HAPPINESS AND PROSPERITY OF SHANTIBHAI AND HIS WIFE STOP THERE IS AN UNSEEN HAND OF GOD AT WORK EVERYWHERE STOP HE GUIDES US ALL STOP HE GUIDED VINOD IN ONE DIRECTION STOP THAT BECOMES HIS SWADHRMA STOP HE GUIDES SHANTIBHAI IN ANOTHER THAT IS ALSO HIS SWADHRMA STO' MAY BOTH FIND HAPPINESS AND SATISFACTION IN BEING IN IDEAL COUPLE CULUTURALLY SPIRITUALLY AND EVERY OTHER WAY STOP MY LOVE TO ALL-DHEBAR

तार का हिन्दी अनुवाद

न्यू देहली

चिरंजीव शान्तिभाई और उनकी अ. सौ. धर्मपत्नी स्मिता बहन के योगक्षेम के लिए मैं अपनी कल्याणकामनाएँ पेश करता हूँ।

ईश्वर के अदृश्य हाथों का सर्वत्र प्रभाव प्रवर्तमान है, वही हम सब को मार्गदर्शन देता है।

उसी शक्ति ने श्री विनोदमुनि को एक दिशा में प्रेरणा दी, और वही शक्तिजन्य प्रेरणा उन का स्वधर्म बन गई।

वही शक्ति, चि. शान्तिभाई को अन्य दिशा में प्रेरणा दे रही है और वह शान्तिभाई के लिए स्वधर्म बनी है।

चि. शान्तिभाई और अ. सौ. स्मिताबहन सांस्कारिक दृष्टि से आध्यात्मिक दृष्टिसे और इतर दृष्टि से आदर्श दम्पती बनें।

सभी से मेरे प्रेमस्मरण। –ढेबर

श्री श्वे॰ स्था॰ जैन कॉन्फरेंस के गांधी की बालब्रह्मचारी मुनि श्री विनोदमुनिजी को श्रद्धाञ्जलि और ग्रन्थ के विषयमें अभिप्राय।

मुनि श्री विनोदमुनिजी का जीवन चरित्र मैंने देखा। लेखक का उनके परिश्रम के लिए धन्यवाद देता हूँ। मालूम पड़ता है कि लेखकने जैनधर्म का अच्छा अभ्यास किया है। जैनत्व और शुद्ध आत्म धर्म की ओर ज्यादा सूक्ष्म दृष्टि के अभ्यास यदि वे करेंगे तो उनकी आत्मा का कल्याण हो सकता है। जैनदर्शन सर्वज्ञप्रणीत और सर्वथा स्वतंत्र होने से एवं मुनिश्री जैनागमानुरागी और अगाधश्रद्धावान् होने से, उन्हीं सिद्धान्तों को प्राधान्य देकर उन्हीं का अवलम्बन किया है।

श्री विनोदकुमार मुनि, संसारी अवस्था के अन्तिम कुछ वर्षों में मेरे पास अक्सर आया करते थे। उनको यों तो मूल में पूर्व भव का संस्कार था ही, इस लिए सत्यान्वेषण में मग्न रहते थे। और पहले संयमपालन संभाव्य है, क्योंकि उनमें त्यागभावना का माधुर्य था, और वह बढ़ती ही जा रही थी; किन्तु धर्म और परोपकार के न्याय से आभरयुक्त और ऊपर वर्णित मिथ्यात्व की असमंजस में डालनेवाली जालों से युक्त वातावरण उन्हें क्षोभ उत्पन्न करता था। फिर भी हारने की बजाय-उन में फँस जाने की बजाय-वे उनको सुलझाते रहते और उस क्रिया में उन्हें जो आनन्द आता, उसे देखकर मुझ में भी आनन्द और वात्सल्यभाव प्रकट होता था। इसी से उनकी इच्छा के अनुसार सर्वदा मैं चर्चा के लिए तैयार रहता था। गुरु की और श्रद्धा की परीक्षा करने की कसौटियाँ उन्होंने अच्छी तरह से मान ली थीं। सभी सूत्रों के बिना पढ़े ही किसी भी लेख या चर्चा में सत्यासत्यविवेक वे पा सकते थे।

अपने को विद्वान और शास्त्रज्ञ कहलाने वाले लोग जो गलतियाँ कर बैठते हैं, उन्हें वे पकड़ सकते थे; और उनका शास्त्रानुकूल निराकरण भी प्राप्त कर लेते थे। उन्हींने ही 'सम्यग्दर्शन और अध्यात्मज्ञान' की पुस्तक प्रकाशित करने के लिए अपने पिताजी को प्रेरणा दी थी।

श्रद्धा के विषय में गुणस्थान ४ से १२ तक एकत्व हो सकता है; अतः श्रद्धा के सम्बन्ध में मेरा उनपर बहुत मान था। मेरी बुद्धि के अनुसार, दिवंगत महाराज श्री अमुलखऋषिजी, दि. ग. महाराज श्री काशीरामजी, दि. ग. श्री हाथीजी महाराजजी, एवं विराजमान श्री समर्थमलजी महाराज तथा श्री. पुरुषोत्तमजी महाराज आदि महाराजों और श्री रतनलालजी डोशी आदि श्रावकों की श्रद्धा उच्च कोटि की मानी जा सकती है। ठीक उसी प्रकार की श्रद्धा श्री विनोदमुनिजी की भी थी।

उन्होंने साधु का प्रतिक्रमण आदि कुछ क्रियाएँ ससार में रहकर सीखी थीं। मृगापुत्र के अध्ययन में से परिषहों को जीतने का धैर्य, उन्होंने हस्तगत कर लिया था। नमिराजर्षि प्रत्येक बुद्ध के अध्ययन में से सम्बन्धियों के मोहबन्धनों का त्याग उन्होंने सीख लिया था। पंचम आरा के श्रीमती भद्रा सेठानी के पुत्र एवन्ता मुनिकी सज्झाय पर से स्वयमेव दीक्षा का अंगीकार करने का उन्होंने पहचान लिया था।

आचार्य पदवी को अलंकृत कर, सौराष्ट्र के असंख्य जीवों का उद्धार करनेवाले वे हो जायँ, इस रीति से उन्हें समर्थ बनाने का अभिलाष था; पर पाँच समवाय में अविभाव भी सहचारी ही रहता है। उपलेटानगर में यकायक रात्रि में उदरपीड़ा शुरू हुई। पेट पर हाथ देकर वे बैठ गये। मुझे लगा कि उन्हें RENAL COLIC (रेनल कॉलिक) जैसा कुछ हो गया है, तब मैंने सूचना दी थी कि इसका योग्य निराकरण करना चाहिए, वहाँतक आग

और पानी से दूर रहना जरूरी है कि जिससे रोगातिरेक न हो; और ऊँची जगह में खास ख्याल रखना चाहिए ताकि गिरने से हानि न हो। क्यों कि दर्द की सख्ती के समय में शरीर पर काबू नहीं रखा जा सकता। परन्तु उन्होंने दर्द की उपेक्षा की, और अपनी जिन्दगी का कोई भरोसा न होने से, एव हलुकर्मी और भविमात्र होने स त्याग मार्ग में ही अपने पुरुषार्थ का विकास किया।

दीक्षा में विघ्न न आए, इसलिए वे किसी से कहे बिना मारवाड़ चले गए, और पहले से चुने हुए गुरुओं में से एक गुरु का आश्रय लेकर स्वयमेव दीक्षा-ग्रहण कर लिया, और यथाशक्य अपने पुरुषार्थ को चारित्र्यसम्पादन में कार्यान्वित किया। सयमपालन के साथ भय अक्स्मात आ पड़ी तब गायों को अनुकम्पा से रेल्वे अकस्मात् से बचाने के लिए प्रयत्न किया। गायों को तो वे बचा सके, किन्तु रजोहरण लेने के लिए जाते हुए रेल्व अकस्मात् हुआ, और अन्तर्मुहूर्त में स्वर्गवासी हुए।

उनका सांसारिक भोगों के ऊपर तो मोह नहीं था, और कषाय तो पहले ही से पतले बन चुके थे। इस भव की मान-प्रतिष्ठा पर उन्हें मोह नहीं था, इसलिए उनकी जघन्य लेश्या लें, तो भी तेजोलेश्या ही हो सकती है। इसलिए शास्त्रदृष्टि से देखते हुए, उनकी गति देवलोकवासी तथमयी-तत्स्वरूप हो, यह निर्विवाद है। और ऐसे हलुकर्मी जीव एकावतारी हों, उसमे कोई आश्चर्य नहीं है। किसीको यह प्रश्न हो सकता है कि ऐसे जीवों का ऐसा करुण अवसान क्यों होता है? उसका उत्तर यह है कि हरएक जीव को चारों गति के कर्मफल होने का सम्भव है, और हजारों या करोड़ों भव के कर्म भी सत्ता में होने की संभावना है। अबाधाकाल पूर्ण हो, और निमित्त मिलने के मुताबिक कर्म उदयावस्था में आते हैं। और जिसे

क्षमो ही प्राप्त करना है, उसे भी कर्म तो एक या दूसरी रीति से भुगतकर खपाने ही पड़ते हैं। विपाकोदय आने के योग्य कर्म हों, तभी अकस्मात् या मरणान्तिक आ पडता है। इसके उदाहरण स्वरूप में हम गजसुकुमालजी को ले सकते हैं। ऐसे अन्य उदाहरण भी सूत्रों मे से मिल सकते हैं।

गजसुकुमाल मुनि की आयु छोटी थी और सत्ता में कर्म ज्यादा थे। उनको पूर्णरूप से भुगत जाने के सिवा मोक्ष किस तरह से प्राप्त हो सकता था! तब जाकर अग्नि का मरणान्तिक उपसर्ग मनुष्यकृत प्राप्त हुआ और उन्होंने मोक्ष की प्राप्ति की। विनोदमुनि की सत्ता में भी कर्म होने ही चाहिएं ऐसा न हो, तो आयुष्य अल्प होते हुए भी अकस्मात् प्राप्त नहीं हो सकता था। इसलिए उन्होंने हज़ारों भव के कर्म, एक ही अकस्मात् से संयम में रहकर भुगत डाले। इससे अनुमान किया जा सकता है कि अब वे शीघ्रातिशीघ्र मोक्षगमन करेंगे।

अब श्री विनोदचन्द्रजी की आत्मा विनोददेव, अपने देवत्व रूप में भी जैनशासन का रक्षण करे, और वहां से यथाशीघ्र मोक्षगमन करे इसी भावना के साथ एन. के गांधी की श्रद्धाञ्जलि।

कविलोग कहते हैं कि –

माता! दो तुम भक्तजन, या दाता या शूर;
बिना रत्न वन्ध्या रहो, पर मत गँवाओ नूर।

यहाँ श्री विनोदकुमार मुनि में तीनों गुण थे; क्यों कि परिषह सहन करने में शूर ही सच्चे शूर हैं। इसलिए श्री. विनोदकुमार मुनि के साथ उनकी ससारपक्ष की माताजी श्रीमती मणिबहन भी स्मृति की मर्यादा तक भाव से अमर रहेंगी। धन्य है ऐसी माताओं को। दूसरी माताएँ भी दृष्टान्त लेंगी कि अपनी सन्तानों को धार्मिक शिक्षा के विषय में अज्ञात नहीं रखना चाहिए। ऐसा होनेपर वे आवारा और नास्तिक हो जायँगी; और लोग कहेंगे कि इससे तो उनकी माता अगर वन्ध्या रही होती तो क्या बिगड़ जाता था? पुत्रादि अवगुणी और नास्तिक हों, तो उसका उत्तर दायित्व माता-पिता के लिए भी कम नहीं हो सकता।

हमारा मनोवेदन

हे अभिमुक्त या प्र विनोदमुनि!

हम जागीन जब आपका नाम 'विनोद' रखा, तब हम यह स्वप्न में भी मालूम नहीं था, कि कहीं 'विनोद' शब्द का अर्थ 'निर्युनन' भी होता है।

क्या उस नामकरण के बीच भी आपकी ही कोई प्रेरणा काम कर रही थी? क्या संसार का निर्युनन कर, लोकविजय को वरण करनेकी आपकी तैयारी तभी की थी?

हे स्वयं दीक्षित या प्र विनोदमुनि!

दीक्षा के लिए आपकी तत्परता को आरम्भ में तो हमने 'बालिशता' माना था: सही रूप में तो अब मालूम पड़ता है कि बालिश हम थे, आप सच्चे मुक्त थे।

दीक्षा के साथ आपने प्रव्रज्या के लिए उतावली करनी शुरू की। आपको सम्मति देने का धर्मलाभ, हमें प्राप्त हो, इसलिए आपने तो हमें अनेक अवसर दिये; परन्तु निज की मान्यता की पकड़ से हम आप की उस आत्मप्रद पवित्रदशा का नहीं पहचान पाये!!

हे 'असंख्यं जीविय मा पमायए' महामंत्र के आराधक!

आप तो पूर्वावतार में ही गुणस्थानश्रेणि के अन्तिम सोपान पर कालधर्म को प्राप्त हुए थे, इसीलिए इस अवतार में आपने प्रथमतः ही प्रमाद का परित्याग कर लिया था न?

स्वयंदीक्षा लेने में आपने त्वरा रखी, क्या उसका कारण भी यही था कि, अब इस अवतार में काल की गति, आपकी सिद्धि गति का अन्तराय रूप न बन जाय?

दुर्लभजी खेतसी वीराणी
मणिबहन दुर्लभजी वीराणी

"असंखयं जीविय मा पमायए"



श्री विनोदकुमार वीराणी

(दीक्षा लेने से पहले शास्त्राभ्यास करते हुए)

जन्म : पोर्ट सुदान, संवत् १९९२

दीक्षा	निर्वाण
खीचन – (राजस्थान)	फलोदी – (राजस्थान)
सं. २०१३, वैशाखकृष्ण १२	स. २०१३, श्रावणशुक्ल १२
ता. २६–५–'५७ रविवार।	ता. ७–८–'५७ बुधवार।

महानुभावो,

धर्मकरणी करने में उपयोगी निम्नांकित पुस्तकें और अन्य उपकरण, लगी हुई कीमत से आधी कीमत में दिये जाते हैं। अतः जिनको ज़रूरत हो, उन्हें चाहिए कि वे निम्न पते से प्राप्त कर लें, या डाकद्वारा मँगवा लें (डाकखर्च अलग लगेगा)

नाम	लगी हुई क़ीमत	आधी क़ीमत
श्री जैनतत्त्वप्रकाश	६–०–०	३–०–०
सम्यग्दर्शन और अध्यात्मज्ञान	४–०–०	२–०–०
महामन्त्र आराधना, श्रुतज्ञान-प्रश्नोत्तरी और तत्त्वसंग्रह	४–०–०	२–०–०
श्री धर्मध्यान और सज्झायमाला	३–८–०	१-१२-०
श्री दंडकावबोध ग्रंथ	३–०–०	१–८–०
श्री जैनज्ञानसागर	३–०–०	१–८–०
श्री वृहद् जैन थोक संग्रह	३–०–०	१–८–०
अतिमुक्त बा. ब्र. श्री. विनोदमुनि का जीवनचरित्र (द्वितीयावृत्ति) गुजराती	२–८–०	१–४–०
अतिमुक्त बा. ब्र. श्री. विनोदमुनि का जीवनचरित्र हिन्दी प्रथम संस्करण	२–८–०	१–४–०
श्री सिद्धि के सोपान	१–८–०	०-१२-०
श्री नवतत्त्व और जीवविचार	०–८–०	०–४–०
भावनाशतक तथा कर्म और आत्मा का संयोग	०–८–०	०–४–०
श्री प्रतिक्रमणसूत्र	०–६–०	०–३–०
श्री सामायिक सूत्र	०–१–६	०–०–९
ऊन के गुच्छे	३–८–०	१-१०-०
ऊन का कटासन	२–८–०	१–४–०
नवकारयुत चन्दन की माला	१–०–०	०–८–०
पुस्तक रखने का काष्टसाधन	१–०–०	०–८–०

पत्ता
दिवानपरा गली नं. ६
राजकोट

श्री शामजी वेलजी वीराणी और
श्री. कड़वीबाई वीराणी स्मारक ट्रस्ट

– स्वर्गस्थों की पुण्यतिथियाँ –

पूजनीय पिताजी,
श्री शामजी वेलजी वीराणी

(संवत् २००२, माघकृष्ण १२, तारीख २८–२–'४६)



पूजनीय माताजी,
श्री कड़वी बाई वीराणी

(संवत् २०१०, भाद्रपद शुक्ल १४, तारीख ११–९–'५४)



बा ब्र श्री विनोदमुनिजी

(संवत् २०१३, श्रावण शुक्ल १२, तारीख ७–८–'५७)



उपर्युक्त पुण्यतिथियों में
कुटुम्बी एवं स्नेही वर्ग,
अपनी आत्मा की उन्नति के लिए,
महात्माओं के जीवन में से अनुकरणीय
व्रत नियमों–जैसे कि सामयिक, प्रतिक्रमण, संवर,
चोविहार, उपवास, एकासन, आयंबिल, ऊनोदरी आदि
को यथाशक्य करके उनकी वास्तविक जीवनस्मृति
अपने जीवन में उतारें, यही नम्र विज्ञप्ति है।

हमारी जागृति ही उनकी स्मृति हो।

–आत्मबन्धु



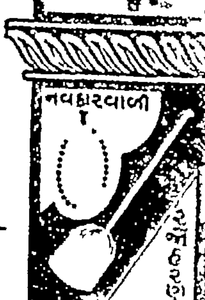



"असंखयं जीविय मा पमायए"
अपने हृदय की चिरन्तन प्रकाशमान
धर्मज्योति से हमारे जीवन में भी
तेजका प्रवाह बहानेवाले




स्व पू पिताजी
शामजी वेलजी वीराणी
एवं
स्व पू माताजी
कड़वीबाई वीराणी
और
जन्मसे ही धर्मरंगरंजित
स्व. बा. ब्र. विनोदमुनिजी को





'अतिमुक्त
बा. ब्र. श्री विनोदमुनि के
जीवनचरित्र
ग्रंथ समर्पित.




लि દુલભજી શામજી વીરાણી-
के वंदन



– स्वर्गस्थों की पुण्यतिथियाँ –

पूजनीय पिताजी
श्री शामजी पे…ी वीराणी
(संवत् २००२, माघकृष्णा १३, तारीख २८-२-'४६)



पूजनीय माताजी,
श्री कड़वी बाई वीराणी
(संवत् २०१०, भाद्रपद शुक्ल १४, तारीख ११-९-'५४)



बा. ब्र. श्री विनोदमुनिश्री
(संवत् २०१३ श्रावण शुक्ल १०, तारीख ७-८-'५७)



उपर्युक्त पुण्यतिथियों में
कुटुम्बी एवं स्नेही वर्ग,
अपनी आत्मा की उन्नति के लिए,
महात्माओं के जीवन में से अनुकरणीय
व्रत नियमों–जैसे कि सामायिक, प्रतिक्रमण, संवर,
चोविहार, उपवास, एकासन, आयंबिल, ऊनोदरी आदि
को यथाभाव करके उनकी वास्तविक जीवनस्मृति
अपने जीवन में उतारें, यही नम्र विज्ञप्ति है।

हमारी जागृति ही उनकी स्मृति हो।

—आत्मबन्धु







સ્મરણાંજલિ



"असंखयं जीविय मा पमायए"

अपने हृदय की चिरन्तन प्रकाशमान
धर्मज्योति से हमारे जीवनमें भी
तेजका प्रवाह बहानेवाले





स्व पू पिताजी
शामजी वेलजी वीराणी
एवं
स्व पू माताजी
कड़वीबाई वीराणी
और
जन्मसे ही धर्मरंगरंजित
स्व. बा. ब्र. विनोदमुनिजी को





'अतिमुक्त
बा. ब्र. श्री विनोदमुनि का
जीवनचरित्र
ग्रंथ समर्पित.

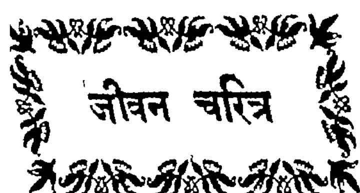




लि. દુલભજી શામજી વીરાણી
के वंदन



अतिमुक्त
बाल ब्रह्मचारी श्री विनोदमुनि का
संक्षिप्त



श्री महावीर भगवान की स्तुति

संसार दावानल दाहनीरम्,
सम्मोह धूली हरणे समीरम्,
माया रसादारण सार सीरम्।
नमामि वीरं गिरि सार धीरम्॥

अर्थ :- संसाररूप दावानल (अग्नि) को बुझाने के लिए जल समान, मोहरूपी धूल को उड़ाने में पवन समान, माया रूपी पृथ्वी को खोदने में मजबूत और तीक्ष्ण हल के समान, मेरु पर्वत जैसे धैर्यवान श्री वीरप्रभुको मैं प्रणाम करता हूँ।

दोहे।
(बा. ब्र. श्री विनोदकुमार मुनि की स्तुति)

पङ्कज निपजत पङ्क में, ज्यों अलिप्त बन जाय;
त्यों रहकर संसार में, रहे विनोदकुमार॥१॥

संसार दुःखमय समझकर, चढ़े त्याग के पन्थ;
धन्य विरागी आत्मवर, स्वतो बने निर्ग्रन्थ॥२॥

कड़ी दाव है काल की, खवा जात सब साज;
रहे नहीं सुर-इन्द्र भी, क्या गरीब क्या राज? ॥३॥
त्यों बनकर वे प्रान्त में, भयप्रद जो स्थित;
भावि मिथ्या मनता नहीं, समभ्र शान्ति हों चित्त ॥४॥

जैन उपाश्रय —आम्बाजी स्वामी
पोरबन्दर, १७-८-५७

बा ब्र श्री विनोदमुनि की पुण्यस्मृति में—
पू मुनिश्री आम्बाजी स्वामिरचित

प्रभु महावीर की महिमा।

दोहे

विर भीर चोवीस में, जो नव सम था कोई;
दयावान भगवान जो, मुक्त हमेशा होई ॥१॥
निरखे लोकालोक भी नाम गाँव औ' ठाम;
अमर गति भी आप ने, मन-चाहा है धाम ॥२॥
रहे उजाल इस लोक को, आत्मज्ञानी अनन्त;
तत्त्वज्ञान त्रिलोक का, मान्य श्रेष्ठ भगवन्त ॥३॥
नेह गेह को छोड़कर, प्रभुवर गत शिवपुर;
भूलो नहीं प्रभु नाम को, शान्ति मिले भरपूर ॥४॥
तिर्थरूप त्रिलोक में, अमर प्रभु का नाम;
रसना से स्मृत हो सदा, पोषण हृदय आराम ॥५॥

उपर्युक्त स्तुतिरचना करके श्री आम्बाजी स्वामी ने पोरबन्दर से श्री बा ब्र विनोदमुनि के संसारपक्ष के

पिताजी, वीराणी दुर्लभजीभाई और मणिबहन के ऊपर किसी सद्गृहस्थ के द्वारा, निम्नांकित सन्देश के साथ भेजी है।

सन्देश.

जैनधर्मानुरागी वीराणी श्री दुर्लभजीभाई और अ. सौ. मणिबहन,

आप सकुटुम्ब को, अत्र विराजित पू. जी आम्बाजी-स्वामी ने याद करके धर्म करणी करने का फरमाया है। साथ ही साथ, श्री विनोदकुमार मुनि का जीवनवृत्तान्त पढ़कर मालूम पड़ा कि यह घटना बड़े बड़े धीर वीरों का भी हृदय पिघला सकती है। उनकी आत्मा ससार की विचित्र माया में जरा भी लिप्त नहीं हुई; किन्तु कमल की भाँति निर्लेप रही– यही उनकी आत्मा की ज्वाजल्यमान रेखा गिनी जा सकती है।



बा. ब्र. श्री विनोद मुनिश्री की संसार पक्षीय माताजी की व्यथा–

अब तो वह रत्न चला गया! समाज का आशादीप बूझ गया! उदित होते ही अस्त हो गया!! अब वह दीप फिर से आ सकनेवाला नहीं है।

"आचार्य देवो भव"

मेरे परम उपकारी धर्महेतुभूत
परम पूजनीय शासनभूषण महाराज
श्री १००८ बालब्रह्मचारी पण्डितरत्न
महाप्रभावशाली प्रखर तत्त्वज्ञानी
ओजस्वी महात्मा,
मुनिश्री प्राणलालजी स्वामीजी को
अपने अन्तःकरण के शुद्ध भाव से
कोटि कोटि वन्दन हों।

ॐ शान्तिः ! शान्ति !! शान्ति !!!

गुणानुरागी,
दुर्लभजी शामजी चीराणी

प्रकरण १

भावना.

श्री देव, गुरु, और धर्मतत्त्व की स्तुति से लेखिनी का प्रारम्भः—

मङ्गलाचरण.

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो;
देवावि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो.

अर्थः—धर्म उत्कृष्ट मांगलिक है; अहिंसा, संयम और तप उसका स्वरूप है। शुद्ध धर्म में सर्वदा जिसका मन रहता है उसको देव भी नमस्कार करते हैं।

ऐसे शुद्ध धर्म में किसकी आत्मरमणता थी? पूज्य श्री १००८ तपस्वीजी लालचन्दजी महाराज के चरणसेवक और स्वयंबुद्धरूप दीक्षा ग्रहण करनेवाले बा. ब्र. श्री विनोदमुनि की। संसार पक्ष में श्री वीराणी कुटुम्ब के कुलदीपक श्री वीर विनोदकुमार की, कि जिन्होंने संसार में श्रावक व्रत धारण कर, संसारका परित्याग किया।

इस जीवनचरित्र का प्रारंभ करते हुए, लेखक को अत्यन्त आनन्द हो रहा है। क्यों कि जिन महापुरुष का जीवन लिखने का है उनका त्याग और वैराग्य, इस विषमकाल में अप्रतिम माना जा सकता है। मनचाहे बेजोड़ दीव्य सुख प्राप्त होते हुए भी, एवं भोग भोगनेलायक इक्कीस वर्ष की नववय होते

हुए भी, अन्यत्व माँ-बाप और कुटुम्ब का अनुपम स्नेह होते हुए भी यह ससार जिन्हें सपूर्ण दुखमय मालुम हुआ है।

कालके प्रमाण में जिसकी ऋद्धि सिद्धि उच्च कक्षा तक पहुँची हुई है, ऐसे कुटुम्ब में जन्म पानेवाला और महासुख स्वामी संसारका त्याग करता है; यह त्याग की सत्यता को आगम की मुहर लगने का द्योतक ही तो है।

लेखक ऐसे बालब्रह्मचारी साधु के गुणगान करने में अपना संपूर्ण आत्मकल्याण समझता है; और अपने एव बा प्र श्री विनोदमुनि के स्वधर्मन्याय से, गुरु और धर्मतत्त्व के तत्त्व का एक ही प्रकार होने से, इन तीनों महातत्त्वों का निर्णय करके अपनी लेखिनी शुरू करने की महती भावना रखता है। साथ ही साथ स्वधर्मियों से आग्रह करता है कि, इन तीनों महातत्त्वों की आराधना में संलग्न होकर, पाठकगण और लेखक बा प्र श्री विनोदमुनि के दर्शन करें। ऐसे भावनिग्रन्थ के दर्शन करने के लिए अनन्त पुण्य अपेक्षित है।

प्रथमत: इष्टदेव श्री अरिहन्त देव के गुणग्राम करते हुए इशानकोण की ओर मुख करके लेखक 'थयथुईमंगलम्' पाठ विशाल दृष्टि से शुरू करता है।

(नोट'-इस पाठका माहात्म्य, श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र के २९ वें 'सम्यग् पराक्रम' नाम के अध्ययन में, (जिसका दूसरा नाम 'तिहत्तर पन्नाफली' भी है) तिहत्तर में से १४ वें फल को निम्न किंचित प्रश्नोत्तरी का रूप दिया गया है।

श्री गौतमस्वामी भगवान से पूछते हैं कि-

प्र०- थयथुइमंगलेणं भन्ते! जीवे किं जणयइ?

उत्तरमें भगवान फरमाते हैं कि :-

थ० नाण दंसन चरित्त वोहिलाभं जणयइ। नाण दंसण चरित्त वोहिलाभ संपन्नेयणं जीवे अन्त किरियं कप्पविमाणो ववतिंग आराहणं आराहेइ।

भावार्थ यह है कि – श्री गौतमस्वामी श्री भगवान से पूछते हैं कि, हे भगवान! 'थयथुइ मंगलम्' पाठ की आराधना करनेवाले जीव को क्या लाभ होता है? इसके उत्तर में भगवान फरमाते हैं कि, इस पाठ की आराधना करनेवाले को ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और वोधवीज की प्राप्ति होती है; और परिणामतः कुछ जीव उसी भव में सिद्धगति को पा सकते हैं; और कर्म शेष हों, तो देवलोक को तो अवश्य गति करते हैं। इसलिए लेखक अन्तर्वृत्ति में अनन्त शान्तरस पैदा हो, इस भावना से पाठ के शब्दों का उच्चारण कर, अपनी आत्मा के भाव लेखिनी में उतारता है वह उत्कृष्ट मांगलिक पाठ यह है :–

प्रिय पाठक! द्वादशांग में उपर्युक्त 'थइथुइपाठ' का जो माहात्म्य–गौरवरूप–वताया गया है, वह पाठ देवादिष्ट है, ऐसा जैनदर्शन का मन्तव्य है।

जैनधर्म वताता है कि, तीनों लोगों में रहे हुए देव, अनेक मतवाले होने पर भी भगवत्स्तुति करते हैं और सभी देवों के लिए यह एक ही स्तुतिपाठ सर्वमान्य रूप से प्रवर्तमान है, अतः इस पाठकी आराधना करनेवाले को अत्यन्त विवेक पुरःसर प्रवृत्त होकर आराधना करनी चाहिए!

पाठ के मूल शब्दों के अर्थ जगत के सभी धर्मों की मान्यता के लिए भी अनुकूल हैं, अतः इस स्थल में लेखक मूल पाठ को, जैनदृष्टि को प्राधान्य देते हुए पेश करता है, और साथ ही साथ शब्दार्थ भी दे रहा है। वह महामंगल मूल्यवान पाठ निम्नांकित रूप से है :–

मूलपाठ : – नमोत्थुणं, अरिहन्ताणं, भगवंताणं, आइगराणं, तित्थयराणं, सयसंबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं, पुरिससिंहाणं, पुरिसवर पुंडरियाणं, पुरिसवरगंध हत्थिणं, लोगुत्तमाणं, लोगनाहाणं, लोगहियाणं, लोगपईवाणं, लोगपज्जोयगराणं, अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं, जीवदयाणं, बोहिदयाणं, धम्मदयाणं, धम्म देसियाणं, धम्मनायगाणं, धम्मसारहिणं, धम्मवरचाउरंत चक्कवट्टिणं, दीवोत्ताणं, सरणगइ पइट्ठा, अप्पडिहयवर नाण दंसण धराणं, वियट्टछउमाणं, जिणाणं, जावयाणं, तिन्नाणं, तारयाणं बुद्धाणं, बोहियाणं मुत्ताणं, मोयगाणं, सव्वन्नुणं, सव्वदरिसिणं, सिव, मयल, मरुय, मणंत, मक्खय, मव्वाबाह, मपुणरावित्ति सिद्धगई नाम धेय, ठाणसंपत्ताणं ॥

शब्दार्थ

नमस्कार हो अरिहन्त भगवन्त को। भगवत्स्वरूप कैसा है? आदिकर्ता, आदिनाथ, तीर्थकर्ता, स्वयंबुद्ध पुरुषोत्तम, पुरुषार्थकेसरी, सिंहस्वरूप पुण्डरिक-कमलरूप, गन्धहस्तिरूप, लोकोत्तम, लोकनाथ, लोकहितैषी, लोकदीपक, लोकउद्योत, अभयदाता, चक्षुदाता, मार्गदाता, शरणदाता, संजीवनीस्वरूप बोधि बीजदाता, धर्मदाता, धर्मनायक, धर्मरूप रथ के सारथी, धर्म चक्रवर्ती चेटसमान, दुःखहर्ता, अधोगमनशील जीवों के आधारभूत, अप्रतिहत ज्ञानदर्शन स्वरूप, श्री वीतराग, रागद्वेष जेता, और जीतानेवाले, तरणतारणत्राता, और ज्ञान देनेवाले सर्वकामयुक्त और छोड़ानेवाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, उपद्रवरहित, अचल, सपूर्णारोग्य, मरणरहित, क्षयरहित, बाधापीडारहित, और अवतारमोचक, सिद्धगति और स्थान प्राप्त करनेवाले—ऐसे सम्बोधन युक्त भगवान को सेवक बारबार प्रणाम करता है।

नमोत्थुणं अरिहन्ताणं भगवन्ताणं :—

अर्थः— कर्मरूपी शत्रु को मारनेवाले, रागद्वेषरहित श्री अरिहंत भगवान को नमस्कार हो।

अरहिन्त शब्द का अर्थ परमार्थतः 'वीर' होता है, और प्रभुस्वरूप धर्मवीरता में सन्निविष्ट होने से धर्मवीर को नमस्कार— यह अर्थ है।

दूसरे दुश्मनों की अपेक्षा रागद्वेष के ऊपरकी जीत प्राप्त करना दुर्जेय होने से, उन का क्षय करनेवाला ही सच्चा धर्मवीर माना जा सकता है। इस कर्मरूपी शत्रु को मारने का शस्त्र, ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तपरूप मार्ग ग्रहण करने में है।

इस मार्ग को ग्रहण करने का कार्य किसने किया?

श्री वीराणी कुटुम्ब के कुलदीपक श्री. विनोदकुमार ने! इससे धर्मवीर श्री विनोदकुमार को लेखक के वारवार नमस्कार हैं।

परमशुद्ध दृष्टि के न्याय से श्री तीर्थंकरदेव, उत्कृष्ट धर्मवीर हैं।

वे कौन?

जिनका पाचवें आरेमें धर्मशासन चलता है, वे चरम तीर्थंकर देव, श्री श्रमण भगवान महावीरजी, कि जिन्होंने राज्यवैभव छोड़-कर साढ़े वारह वर्षों और एक पक्ष तक तप किया, उसमें केवल दो घड़ियाँ ही निद्रा में बिताईं, और तीन सौ उनचास दिनों में ही आहार किया। इस प्रकार, कर्म का पराभव कर, कामक्रोधादि शत्रुओं के ऊपर जय प्राप्त कर, केवलज्ञान और केवलदर्शन को सिद्ध कर लिया, ऐसे श्री अरिहंत को लेखक का नमस्कार है।

आइगराणं :— सभी तीर्थंकरों के केवलज्ञान की प्राप्ति के समय के वाद, ही धर्म का आदि—प्रारंभ—माना जाता है, इसलिए हे भगवान्! आप को 'आदिनाथ' सम्बोधन दिया गया है।

(श्री तीर्थंकर देव का उपदेश शुरू होते ही तीर्थ की स्थापना हो जाती है।)

तित्थयराण :– जिस से तारण–तरण हो सकता है, वह तीर्थ है। हे प्रभो! आप के बताए हुए ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप के मार्ग में, आप के शासन में प्रवर्तमान होकर, साधु, साध्वियाँ श्रावक और श्राविकाएँ आदि लोग मोक्ष मार्ग की ओर गमन करते हैं इस से आपको 'तीर्थंकर' सम्बोधन दिया गया है, तीर्थंकर का अर्थ है–तीर्थकर्ता।

सयंसंबुद्धाणं :– हे प्रभो! आप को बोध देनेवाला कोई नहीं है। आप स्वयमेव बोध को प्राप्त हुए होने से आप को स्वयं बुद्ध सम्बोधन दिया गया है

(हे महाबल! इस स्तुतिपाठ में आपके अनन्त पराक्रम को जगत के जीव समझ सकें, इसलिए नीचे के चार सम्बोधन हैं, कि जिन में 'पुरिस' शब्द का प्रयोग हुआ है उस का अर्थ 'पराक्रम है।)

पुरिसुत्तमाण – उत्कृष्ट शुद्ध पराक्रमवाले पुरुषोत्तम को नमस्कार हो।

पुरिससिंहाण :– उपसर्ग परिषह में निर्भय, और कर्म का नाश करने में सावधान, ऐसे उत्कृष्टपुरुषार्थभाववाले नरकेसरी को नमस्कार हो।

पुरिसवरपुंडरियाणं :– हे पुण्डरिक! फूलों में कमल की भांति श्रेष्ठ मानी जाती है, जिसका धर्म पानी में रहते हुए भी पानी से अलिप्त रहनेका है। उन कमलपुष्पों में से भी लाख पखुरियों वाला पुण्डरिक कमल सर्वश्रेष्ठ है! आपका यह पुण्डरिक साम्य, आपकी मनुष्यों से पर रहनेकी वृत्ति को सिद्ध करता है, मनुष्य लोक में रहते हुए भी। इसलिए हे भगवन्, आप को पुण्डरिक कमल का सम्बोधन दिया गया है।

पुरिसवरगन्धहत्थिणं :- हे वलवान्! हाथियों में गन्धहस्ती की जाति महा पराक्रमशालिनी मानी गई है, जिसकी गन्ध मात्र से अन्य जातियों के हाथी डर कर भाग जाते हैं। ठीक उसी प्रकार आप जहाँ विराजमान होते हैं वहाँ विरोधाभास स्वरूप मिथ्यात्व-वादियों का मिथ्यात्व निगल-पिघलकर नष्ट हो जाता है! आपका स्वरूप ऐसा युगप्रधान है, इसलिए आप को नमस्कार।

निम्नलिखित सम्बोधनों का लोक अपेक्षा से वर्णन करनेमें आया है।

लोगुत्तमाणं :- लोक में श्रेष्ठ तत्त्व आप ही हैं, क्यों कि आप उत्तम प्रकार की आत्मिक ऋद्धि के धारण करनेवाले होने से आप को 'सर्वोत्तम' विशेषण दिया गया है।

लोगनाहाणं :- हे अनाथ के नाथ! आप में सभी जीवों के दुःख दूर करने की भावना, हमेशा प्रवर्तमान रहती है, इस लिए सारा जगत आप को 'त्रिलोकीनाथ' का सम्बोधन करता है।

लोगहियाणं:- हे परमहितैषी। आत्मकल्याणरूप आपका हितैषी गुण, इतना प्रबल है कि उस गुण का सम्पादन करने वाले को कभी अहित में परिणत होने का अवसर ही नहीं आता इससे आपको हे दयानिधि, हे करुणाकर, आदि सम्बोधन दिये जाते हैं।

लोगपईवाणं :-हे लोकदीपक! जिस प्रकार अन्धकार में सूर्य का प्रकाश होते ही, चक्षुदर्शन से, जो पदार्थ जैसा होता है, वैसा ही दीख पड़ता है, ठीक उसी प्रकार आपके आगम रूप दीपक से आप अनन्तज्ञान दर्शनस्वरूप हैं। हे भगवन्, मुमुक्षु लोग आपका उसी तरह का दर्शन करते है।

लोगपज्जोयगराणं :- हे लोक-उद्योत! ज्योतिचक्र तो अपनी अपनी मर्यादा के क्षेत्रमें ही प्रकाश करता है, जब कि

(श्री तीर्थंकर देव का उपदेश शुरू होते ही तीर्थ की स्थापना हो जाती है।)

तित्थयराणं :– जिस से तारण-तरण हो सकता है, वह तीर्थ है। हे प्रभो! आप के बताए हुए ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप के मार्ग में, आप के शासन में प्रवर्तमान होकर, साधु, साध्वियाँ श्रावक और श्राविकाएँ आदि लोग मोक्ष मार्ग की ओर गमन करते हैं इस से आपको 'तीर्थंकर' सम्बोधन दिया गया है, तीर्थंकर का अर्थ है-तीर्थकर्ता।

सयंसंबुद्धाणं :– हे प्रभो! आप को बोध देनेवाला कोई नहीं है। आप स्वयमेव बोध को प्राप्त हुए होने से आप को स्वयंबुद्ध सम्बोधन दिया गया है

(हे महाप्रभु! इस स्तुतिपाठ में आपके अनन्त पराक्रम को जगत के जीव समझ सकें, इसलिए नीचे के चार सम्बोधन हैं, कि जिन में 'पुरिस' शब्द का प्रयोग हुआ है उस का अर्थ 'पराक्रम है।)

परिसुत्तमाणं – उत्कृष्ट शुद्ध पराक्रमवाले पुरुषोत्तम का नमस्कार हो।

पुरिससिंहाणं :– उपसर्ग परिषह में निर्भय, और कर्म का नाश करने में सावधान, ऐसे उत्कृष्टपुरुषार्थभाववाले नरकेसरी को नमस्कार हो!

पुरिसवरपुंडरियाणं :– हे पुण्डरिक! फूलों में कमल की भांति श्रेष्ठ मानी जाती है, जिसका धर्म पानी में रहते हुए भी पानी से अलिप्त रहनेका है। उन कमलपुष्पों में से भी लाख पंखुरियों वाला पुण्डरिक कमल सर्वश्रेष्ठ है! आपका यह पुण्डरिक साम्य, आपकी मनुष्यों स पर रहनेकी अलिप्त को सिद्ध करता है, मनुष्य लोक में रहते हुए भी। इसलिए हे भगवन् आप को पुण्डरिक कमल का सम्बोधन दिया गया है।

पुरिसवरगन्धहत्थिणं :- हे बलवान्! हाथियों में गन्धहस्ती की जाति महा पराक्रमशालिनी मानी गई है, जिसकी गन्ध मात्र से अन्य जातियों के हाथी डर कर भाग जाते हैं। ठीक उसी प्रकार आप जहाँ विराजमान होते हैं वहाँ विरोधाभास स्वरूप मिथ्यात्व-वादियों का मिथ्यात्व निगल-पिघलकर नष्ट हो जाता है! आपका स्वरूप ऐसा युगप्रधान है, इसलिए आप को नमस्कार।

निम्नलिखित सम्बोधनों का लोक अपेक्षा से वर्णन करनेमें आया है।

लोगुत्तमाणं :- लोक में श्रेष्ठ तत्त्व आप ही हैं, क्यों कि आप उत्तम प्रकार की आत्मिक ऋद्धि के धारण करनेवाले होने से आप को 'सर्वोत्तम' विशेषण दिया गया है।

लोगनाहाणं :- हे अनाथ के नाथ! आप में सभी जीवों के दुःख दूर करने की भावना, हमेशा प्रवर्तमान रहती है, इस लिए सारा जगत आप को 'त्रिलोकीनाथ' का सम्बोधन करता है।

लोगहियाणं:- हे परमहितैषी। आत्मकल्याणरूप आपका हितैषी गुण, इतना प्रवल है कि उस गुण का सम्पादन करने वाले को कभी अहित में परिणत होने का अवसर ही नहीं आता इससे आपको हे दयानिधि, हे करुणाकर, आदि सम्बोधन दिये जाते हैं।

लोगपईवाणं :-हे लोकदीपक! जिस प्रकार अन्धकार में सूर्य का प्रकाश होते ही, चक्षुदर्शन से, जो पदार्थ जैसा होता है, वैसा ही दीख पड़ता है, ठीक उसी प्रकार आपके आगम रूप दीपक से आप अनन्तज्ञान दर्शनस्वरूप हैं। हे भगवन्, मुमुक्षु लोग आपका उसी तरह का दर्शन करते हैं।

लोगपज्जोयगराणं :- हे लोक-उद्योत! ज्योतिचक्र तो अपनी अपनी मर्यादा के क्षेत्रमें ही प्रकाश करता है, जब कि

आप का केवलज्ञान सो सभी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमें प्रकाश देता है। वह दिव्य प्रकाश, और किसीका नहीं, बरन आप ही का है।

(हे गुणसागर ! आपने उत्तमगुणों को सक्रान्त करनेवाले बहुमूल्य वस्तुएँ प्राप्त कर सकते हैं, इस न्याय से आप को निम्नांकित सम्बोधन दिय जाते हैं)

अभयदयाणं:– आपका स्वरूप ही, अभय को देनेवाला है, और उसका निमित्त कारण, सम्पूर्ण पट्काय जीवों की रक्षा स्वरूप आपका संपूर्ण आत्मधर्म है। और आप के अनुयायियों को भी आप पट्काय जीवों की रक्षा करने का, आगमों के द्वारा बोध देते हैं इसलिए आपको 'अभयदाता' का सम्बोधन दिया गया है।

चक्खुदयाणं:– आप ज्ञानरूप चक्षु के दाता हैं आप से प्राप्त हुए सूत्र ज्ञान रूपी चक्षु स जीव मोक्षप्राप्ति कर सकते हैं।

मग्गदयाणं–भगवन् ! आपको 'मार्गदाता का सम्बोधन है; क्यों कि ज्ञान, दर्शन चारित्र और तपरूपी मोक्षमार्ग आपके आगम भावों से ही प्राप्त हो सकता है।

सरणदयाणं:– हे अशरणशरण ! जन्म, जरा और मृत्युरूप संसार के भयसे त्रस्त लोगों को जब मदद की खोज में निकलना पड़ता है, ऐसे समय में आपकी ही शरण सही जाती है। इस विषय में सर्व लोकमतों की समान मान्यता है।

जीवदयाणं:–जन्ममरण पानेवाले संसारी जीव तो सर्वदा मरे हुए ही हैं। जब कि आप के आगम ज्ञान का स्पर्श कर, संयम–मार्ग का ग्रहण करनेवाले जीव तो शाश्वत मोक्षसुख का अनुभव करते हैं, कि जहाँ से फिर मरणप्राप्ति नहीं होती। इससे–आप का आगम स्वरूप, संयमरूप जीवन को देनेवाला होने से–आप को हे भगवन्, 'जीवदाता' का सम्बोधन दिया गया है।

बोहिदयाणं:– हे अनुपम बोधबीजदाता ! बोधबीज, वह सम्यक्त्व है, कि जिसकी प्राप्ति, आप के आगमज्ञान से ही होती है। उस स्थिति में आप को 'बोधिदाता' सम्बोधन है।

धम्मदयाणं:–हे धर्मदाता ! आप का अखण्ड स्वरूप, धर्म-तत्त्वमय ही है। अग्नि से ज्वालाएँ अलग नहीं रहतीं, उसी तरह आप से धर्मतत्त्व पृथक् नहीं किया जा सकता। इससे अनुभव सिद्ध शुद्ध आत्मधर्मद्वारा मोक्षमार्गरूपी धर्म के आप दाता हैं।

धम्मदेसियाणं :– आप पैंतीस प्रकार की वाणीरूपी दिव्य ध्वनि से जो दिव्यधर्म उपदेश दे रहे हैं, उसका श्रोताजनों के ऊपर यह परिणाम होता है कि सर्व देव मनुष्य तिर्यञ्च आदि अपनी अपनी भाषा में उसे समझ लेते हैं। इसीसे आप को 'धर्मोपदेशक' सम्बोधन लगाया गया है।

धम्मनायगाणं:–हे धर्मनायक ! आप एकान्त शुद्ध मोक्ष मार्ग में प्रेरणा देनेवाले होने से आप धर्म के नायक हैं।

धम्मसारहिणं :– हे धर्मरूपी रथ के सारथी ! जिस धर्म-रूपी रथ के आप सारथी हों, वह रथ कभी उन्मार्ग पर नहीं जाता। सीधा ही मोक्षमार्ग की ओर प्रयाण करता है।

धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टिणं:– हे धर्मचक्रवर्ती ! महाराज ! चतुर्गतिरूप संसार का अन्त करने में आपका स्वरूप इस लोक में अनन्त पराक्रमरूप होने से, आप को धर्म के विषय में प्रधान चक्रवर्ती महाराज का सम्बोधन दिया गया है।

दीवो :– हे द्वीपकल्पस्वरूप ! तूफानी सागर में फँसे हुओं को जिस प्रकार द्वीपकल्प का आधार होता है, उसी प्रकार, संसार सागर के तूफानों में फँसे हुओं को आपके बताए मोक्ष मार्ग रूप धर्मकी शरण का ही एक मात्र आधार है।

मयक्खय — हे अक्षय ! आप की, स्थिति और गुण सब अक्षय हैं— कभी नष्ट होनेवाले नहीं है।

मव्वाबाहं — हे सच्चिदानन्द ! आप के स्वरूप में किसी भी प्रकार से बाधाएँ या विघ्न नहीं आते हैं।

मपुणरावत्ति सिद्धिगई नामधेय ठाण संपत्ताण — हे काल के भी काल स्वरूप ! जहाँ से फिर अवतार नहीं लेना पड़ता ऐसी सिद्धगतिनामक स्थान को आप प्राप्त हुए हैं।

उपर्युक्त पाठ दूसरी बार पढ़कर लेखक श्री सिद्ध भगवान के गुनगान करता हैः और उसी तरह तीसरी बार पाठ कर के लेखक इस ग्रन्थ के नायक बा ब्र श्री विनोदमुनि को नमस्कार करता है।

अपूर्व गुरुत्व

शास्त्र के नियमानुसार गुरुपद निग्रंथ को है। अर्थात् जिसका दर्शनमोह दूर हुआ है ऐसी सम्यग्दृष्टि आत्मा सब नमस्कारार्ह है, लेकिन रत्नत्रय में सबसे बड़े ऐसे निग्रंथ को गुरुपद दिया जाता है।

सुत्ताणं मोयगाणं:- आप सभी कर्मबन्धनों से मुक्त हुए हैं, और आपकी आगमवाणी दूसरों को कर्मबन्धनों से मुक्त कराती है-अर्थात् मोक्ष प्राप्त करा सकती है।

(निम्नलिखित सम्बोधनों को सिद्धगति के साथ सम्बन्ध है, और इस पाठ के 'भगवन्त' शब्द के साथ समवन्ध है।

सव्वन्नुणं सव्वदरिसिणं:-हे सर्वज्ञ! हे सर्वदर्शन! लोकालोक स्वरूप के सर्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, और भावों को सभी अणु अणु मात्र, आप एक ही साथ जान और देख रहे हैं।

अन्तराल में बैठकर, कुछ भी करें जो वात;
मन में भी जो भाव हैं, सब जानत जगतात (दलपत)

सिव-हे कल्याणस्वरूप! आप का निवासस्थान, अनन्तसुख के धाम स्वरूप है, कि जहाँ संपूर्णतया उपद्रवराहित्य है; और उसी से जहाँ पूरे भावपूर्वक आपका कीर्तन करने में आता है, वहाँ अवश्य उपद्रव का नाश होता है। इसलिए हे सिद्ध भगवान्! आप को 'सिद्ध' का सम्बोधन दिया गया है।

मयलं:-हे अचल! आप के स्थान जैसा स्थान, लोक में दूसरी जगह नहीं है, जहाँ जन्म, जरा और मरण के लिए स्थान ही नहीं है।

मरुयं:-हे आरोग्यस्वरूप! सर्व संसार के स्वरूप विषय कषाय के प्रभाव में रोगमयता ही प्रवर्तमान रहती है। हे दीननाथ! आप का शुद्ध क्षेत्र ही केवल शुद्ध आरोग्यस्थान है; इसलिये हे भगवान् आप को 'परम आरोग्य' का सम्बोधन दिया गया है

मणंतं:-हे सिद्ध स्वरूप! आप के गुणों और स्थिति का अन्त नहीं है।

तार्णं :– हे भवदुःखभंजन ! जन्म, जरा और मरण के दुःखों का अन्त प्राप्त करने के लिए, आप के ध्येय को अग्रस्थान देना ही चाहिए। इसलिए एक भावाश से सभी के द्वारा आप, सबलोक दुःखहर्ता कहे गये हैं।

सरणगइपइट्ठा – हे भवमोद्धारक ! भवोगमन से जीव को बचानेवाले आपका नाम और गुण ही शरणरूप हैं।

अपडिहयवर नाण दंसण धराणं – आप के प्रधान-ज्ञान, दर्शन, गुण–अप्रतिहत हैं। प्रधानज्ञान से केवलज्ञान अभिमेत है। ऐसे ज्ञानदर्शनघाटक को नमस्कार हो।

वियट्टछउमाणं :– हे वीतराग प्रभु ! ज्ञान, दर्शन चारित्र और वीर्य के ऊपरके समस्त आवरणों का आपने नाश किया है; इस से छद्मस्त अवस्थारहित आप हैं; अर्थ आप 'वीतराग' सम्बोधन से विभूषित हैं।

जिणाणं जावयाणं :– हे अजित ! आप से प्राप्त वीतराग दशा में प्रवर्तमान होकर आपका भद्धावान् भक्त रागद्वेष का पराभव कर सकता है उसका अर्थ यह है कि आपने कर्मों के ऊपर जय प्राप्त की है, और अन्य को उसका उपाय बता रहा हैं, इसीसे आप को अजित सम्बोधन दिया गया है।

तिन्नाणं तारयाणं :– हे तारक ! आप अनन्तशक्ति सपन्न होकर ससारसागर पार कर गए; और बाद कर्मरूप नाव, भक्तजन के लिए कर गये। उस स्थिति में आपको 'तरण–तारक' सम्बोधन है।

बुद्धाणं बोहियाणं :– आप केवल ज्ञान से सर्व भावों को जानते हैं और केवल ज्ञानका भी आप के आगमोपदेशों से ज्ञान के अधिष्ठाप बन सकते हैं; इसलिए आप को 'बुद्ध बोहि' सम्बोधन दिया गया है।

मुत्ताणं मोयगाणं:—आप सभी कर्मबन्धनों से मुक्त हुए हैं, और आपकी आगमवाणी दूसरों को कर्मबन्धनों से मुक्त कराती है—अर्थात् मोक्ष प्राप्त करा सकती है।

(निम्नलिखित सम्बोधनों को सिद्धगति के साथ सम्बन्ध है, और इस पाठ के 'भगवन्त' शब्द के साथ समवन्ध है।

सव्वन्नुणं सव्वदरिसिणं:—हे सर्वज्ञ! हे सर्वदर्शन! लोकालोक स्वरूप के सर्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, और भावों को सभी अणु अणु मात्र, आप एक ही साथ जान और देख रहे हैं।

अन्तराल में बैठकर, कुछ भी करें जो बात;
मन में भी जो भाव हैं, सब जानत जगतात (दलपत)

सिव—हे कल्याणस्वरूप! आप का निवासस्थान, अनन्तसुख के धाम स्वरूप है, कि जहाँ संपूर्णतया उपद्रवराहित्य है; और उसी से जहाँ पूरे भावपूर्वक आपका कीर्तन करने में आता है, वहाँ अवश्य उपद्रव का नाश होता है। इसलिए हे सिद्ध भगवान्! आप को 'सिद्ध' का सम्बोधन दिया गया है।

मयलं:—हे अचल! आप के स्थान जैसा स्थिान, लोक में दूसरी जगह नहीं है, जहाँ जन्म, जरा और मरण के लिए स्थान ही नहीं है।

मरुयं:—हे आरोग्यस्वरूप! सर्व संसार के स्वरूप विषय कषाय के प्रभाव में रोगमयता ही प्रवर्तमान रहती है। हे दीननाथ! आप का शुद्ध क्षेत्र ही केवल शुद्ध आरोग्यस्थान है; इसलिये हे भगवान् आप को 'परम आरोग्य' का सम्बोधन दिया गया है

मणंतं:—हे सिद्ध स्वरूप! आप के गुणों और स्थिति का अन्त नहीं है।

मक्खय – हे अक्षय ! आप की स्थिति और गुण सब अक्षय हैं– कभी नष्ट होनेवाले नहीं है ।

मव्वाबाहं :– हे सच्चिदानन्द ! आप के स्वरूप में किसी भी प्रकार से बाधाएँ या विघ्न नहीं आते हैं ।

मपुणरावत्ति सिद्धिगई नामधेय ठाणं संपत्ताणं :– हे काल के भी काल स्वरूप ! जहाँ से फिर अवतार नहीं लेना पड़ता ऐसी सिद्धगतिनामक स्थान को आप प्राप्त हुए हैं ।

उपर्युक्त पाठ दूसरी बार पढ़कर लेखक श्री सिद्ध भगवान के गुणगान करता है; और उसी तरह तीसरी बार पाठ कर के लेखक इस ग्रन्थ के नायक वा ब्र श्री विनोदमुनि को नमस्कार करता है ।

अपूर्व गुरुतत्त्व

द्वादशांग के नियमानुसार, गुरुस्थान निर्ग्रंथ को है। अर्थात् जिसका ग्रन्थिभेद हुआ है, ऐसी समदृष्टि आत्मा पच महाव्रतधारी हो, सांसारिक बन्धनों से रहित हो, ऐसे निग्रन्थ को गुरुपद में माना जाता है ।

द्वादशांग की आकल्पना करनेवाले, श्री तीर्थंकर देवके पट्टशिष्य निर्ग्रंथ ही होते हैं ।

साधुवेष जीवों को वैराग्य का निमित्त बनता है; और साधु द्वादशांग वाणी का उपदेश करते हैं; इससे साधुपद गुरुस्थानीय माना जाता है ।

–पंचमहाव्रत का संक्षिप्त स्वरूप,

यह स्वरूप साधु का भाव जीन के प्रत्याख्यात रूप में होता है वह भी नौ कोटिवाला प्रत्याख्यान। अर्थात् जीव हिंसा न

करना, न कराना, न था उसमें अनुमोदन देना-मन, वचन और काया से (३ × ३=९)

पंचमहाव्रत.

(१) जीवहिंसा न करना, याने जीवदया का पालन करना (षट्काय जीवों की रक्षा) (२) असत्य भाषण न करना, एवं षट्काय आरंभ का निमित्त और ऐसी भाषा का प्रयोग न करना। (३) अचौर्य, यानी चोरी न करना। (४) ब्रह्मचर्य, अर्थात् मैथुन का सेवन न करना। (५) अपरिग्रह अर्थात् सचेत-अचेत परिग्रह न रखना।

ऐसे पंचमहाव्रतधारी साधुओं का जीवन आठ प्रवचन मात्रा यानी पांच समिति, और तीन गुप्तिपूर्वक का बना हुआ होता है। साधु गौचरी न्याय से भिक्षाचरी करते है, और सूझते हुए निर्दोष आहार, पानी और स्थानक ग्रहण करते हैं।

श्री महावीर स्वामी के शासन के सभी साधुओं को प्रथम देवलोक के शक्रेन्द्र महाराज ने पाँचवे आरा के अन्त तक क्षेत्र सम्बन्धी आज्ञा दी है। तदुपरान्त ऐसे साधुओं को धर्मदेव का सम्बोधन है, कि जिनके चरणों में देवेन्द्र नरेन्द्र पड़ते हैं।

धर्मतत्त्व.

धारण कर रखता है, वह धर्म है, अर्थात् जिससे जीवों की अधोगति न हो, और जीवों को आत्मभाव में धारण कर रखता है, उसका नाम धर्म है।

ऐसे शुद्ध धर्म का स्वरूप आगम प्रकरण ही है। आगम के आदेशानुसार, जहाँ षट्काय जीवों में से एक भी जीव की हिंसा न हो वही श्री श्रमण भगवंत महावीर का धर्म है।

देखिए श्री सुयगडांग सूत्र अध्ययन १, उद्देश ४, गाथा १०, निम्नलिखित है:-

एयं खु नाणिणो सारं, जंन हिंसइ किंचणं;
अहिंसा समयं चेव, एतावन्त वियाणिया ॥१॥

भावार्थः-आगमों म ज्ञानी का कहने का सार यह है कि यत् किंचित् हिंसा से भी दूर रहना चाहिए, क्यों कि समतारूप धर्म को अहिंसा के साथ बहुत सम्बन्ध है-यह आगमों के प्रकाशक का मत है।

मारना बन्द कर, मरना बन्द होगा।

(काव्य)

मत मारो रे जीवको, यह जिनवाणी सार;
एक वचन पालन करे, प्राप्त करे भवपार ॥

सुख देकर ही सुख लो; दुःख देकर सुख नहीं लिया जाता। पुण्य भी एक श्रृंखला है; क्यों कि पुण्य भी पाप के सिवा नहीं हो सकता। इसलिए भगवन्याय के साधुओं के लिए पुण्य का भी त्याग है।

ऐसा सूक्ष्म दृष्टिवाला धर्म, द्वादशांग बताता है, कि जिस में ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तपरूप मार्ग, जीवों को मोक्ष प्राप्त कराने के लिए बनाया गया है।

जहां त्याग वहां धर्म, और जहां भोग वहां संसार।

*

है नहीं और भुगतता नहीं-उसका चारित्र्य, 'चारित्र्य' नहीं है; पर प्राप्त सुखों को भी नहीं भुगतने वाले का चारित्र्य ही 'चारित्र्य' है।

प्रकरण २

वीर विनोदकुमार का जन्म और कुटुम्ब परिचय

'यथा नाम, तथा गुणः' वाले इस परम वैरागी पुरुष का जन्म, विक्रम संवत १९९२ में, अनार्यक्षेत्र पोर्टसुदान (आफ्रिका) में, कि जहाँ वीराणी कुटुम्ब का व्यापार, आज दिन तक था, हुआ था।

श्री विनोदकुमार के पुण्यवान पिताजी का नाम, सेठ श्री दुर्लभजी शामजी वीराणी, और गर्भधारिणी माहाभाग्यवान माताजी का बहन मणिबहन वीराणी है। दोनों का मूल निवासस्थान राजकोट (सौराष्ट्र) है। (नोट :- श्री विनोदकुमार की जन्मतारीख मिल नहीं पाती, क्यों कि वीराणी कुटुम्ब की कुलप्रथा के अनुसार, कुटुम्ब में जन्माक्षर आदि रखने की रूढि नहीं है।

(प्रस्तुत प्रकरण की रचना में लेखक का हेतु, श्री वीराणी कुटुम्ब की पहचान कराने का नहीं है और हो भी नहीं सकता; परन्तु श्री विनोदकुमार की जातिसम्पन्नता और कुलसम्पन्नता सिद्ध करने का ही हेतु है। वर्तमान युग के जन्मचरित्रों में प्रायः अतिशयोक्तिवाले भाव रहा करते हैं; किन्तु इस ग्रन्थ के लेखक को सिद्धान्तवाद के साथ सम्बन्ध है किसीभी हालत में सिद्धान्त का भोग देकर लेखक कलम नहीं चला सकता; क्यों कि वस्तु को यथास्थित समझाने की बजाय, कम, अधिक या विपरीत स्वरूप दिया जाय, तो मिथ्यात्व का दोष लगे, और सम्यग्दर्शन का ह्रास हो जाय।

समस्त प्रकरण में जो मात्र प्रदर्शित किये गये हैं, वे जग-विख्यात हैं। एक भी शब्द में जरा भी फर्क नहीं है। यह प्रकरण परमावश्यक तत्त्व से पूर्ण इसीसे बनता है, कि, आगमन्याय से श्री विनोदकुमार की आत्मा की पहचान देने का लेखिनी का प्रयास है, अतः श्री विनोदकुमार की पूर्वभव की उत्तम करणी के आगमन्याय से अनुमान बाँधकर लेखरचना करने की है; एवं इस महान् आत्मा की जरूर ही देवगति हुई होगी – ऐसे, आगम को स्पर्श करते हुए अनुमानों को बनाना है।

द्वादशांग का आदेश है कि, पूर्वभव में जिन जीवों ने 'मान' कषाय का मर्दन किया हो, 'मद' प्रमाद को छिन्न विच्छिन्न कर दिया हो महातपस्विता धारण की हो, अत्यन्त धर्मविचारणा की हो, शुद्ध धर्म की पहचान की हो, संयम के विषय में महापराक्रम फैलाया हो, 'हीनकर्मी' आत्मा बनी हो, जिनका, नजदीक में जघन्य तीन भव उत्कृष्ट आठ भव में मोक्ष साधने का हो, ऐसे कुछ जीवों के पास इतने शुभकर्म के दलिए हों, कि जिन के परिणाम से आगे आगे देवमनुष्यादि भवों का अनुभव करके फिर मोक्षगति पाएँ अर्थात् तपस्वी बनकर देवलोक में उत्पन्न होते हैं। जैसे सात आठ भव देवलोक और मनुष्यलोक में जाकर, जन्म लें, फिर मनुष्य हों, वहाँ भी ऐसी आत्माओं को संसारसुख प्रिय नहीं होते। प्राप्त सुखों को छोड़कर फिर दीक्षा लेकर देवलोक में अन्त में अवश्य सिद्धगति को प्राप्त करते हैं।

पूर्वभव के तपस्वी जब मनुष्य लोक में अवतार धारण करते हैं, तब सुखों के राशि के ऊपर उनका जन्म होता है। ऐसे सुख की प्राप्ति में उनको कुछ पाप–लेश भी पाप–नहीं करना पड़ता–सुख भी अनुपम होता है। आर्यक्षेत्र में जन्म लेते हैं विनोदकुमार का जन्म अनार्यक्षेत्र में है; तथापि माता की कुक्षि धर्मसहित आर्य है। ऐसे अनार्यक्षेत्र में माताजी आर्यक्षेत्र की क्रियाएँ किया ही करती हैं, इससे माता के गर्भ में ऐसे धर्मोद्यम

के बीच बाह्य अनार्यक्षेत्र की लेश भी हवा स्पर्श न कर सकी। इस का नाम 'स्थापना निक्षेप है।'

उच्च गोत्र में उत्पन्न होनेवाले के आठ लक्षण द्वादशांग में नीचे दिये अनुसार हैं:-

१ जातिसम्पन्नता-अर्थात् कुलवती माताजी के गर्भ में आना।
२ कुलसम्पन्नता-अर्थात् पिता का कर्मशूर होना।
३ बलसम्पन्नता-अर्थात् अपराजितता।
४ तपसपन्नता-अर्थात् समस्त जीवन धर्मानुष्ठान को अर्पित करना।
५ रूपसम्पन्नता-अर्थात् कोमलांगोपांगों का स्वामी-रूपवान-होना।
६ लाभसम्पन्नता-अर्थात् मातृगर्भमें आने के साथ कुल की लक्ष्मी का वृद्धि को प्राप्त होना।
७ सूत्रसम्पन्नता-अर्थात् शुद्धज्ञान को पढनेवाला होना।
८ अधिकार सम्पन्नता-अर्थात् राजाओं या सेठों (श्रेष्ठियों) के कुल में उत्पन्न होना।

तदुपरान्त दूसरे लक्षणों में देव, गुरु और धर्मतत्त्व का आराधक होना, माता-पिता आदि गुरुजनों को आदर करना, आदि हैं।

इन सभी लक्षणों से युक्त, श्री विनोदकुमार का जन्म है, उसे सिद्ध करते तत्त्वों को इस प्रकरण में बताया गया है, जिसके निमित्त से पाठकगण को पूर्वभव के अस्तित्व और मरकर गत्यन्तर के अस्तित्व में श्रद्धा उत्पन्न करनेवाला यह प्रकरण हो जाता है।

जिस प्रकार पुत्री ससुराल जाती हो, तब लग्न की तैयारी में, पूर्व भूमिका के रूप में, ससुराल में रचना होती है। लग्न

अपने दादा, सेठ श्री शामजी वेलजी वीराणी और दादी श्री कड़वीबाई वीराणी के जीवन की रूपरेखा देने के लिए आगे ही इस वीराणी कुटुम्ब की छःसात पीढियों का हम प्रथम प्रकाश में रखा गया है।

इस वीराणी कुटुम्ब की उज्ज्वलता की आत्मा के स्वरूप यदि कोई हो, तो, वे कि जिन्होंने अपने पूर्वजों को शोभा दी है, पूर्वजोंकी सम्यक् पर्याय को सिद्ध किया है, ऐसे आदर्श युगल रूप उत्तम प्रकारका संसारी-जीवन चलानेवाले सुश्रावक और सुश्राविका मानने योग्य, मूल रूप बने हुए, सेठ श्री शामजी वेलजी वीराणी और उनकी धर्मपत्नी श्री कड़वीबाई वीराणी। उनके उत्तम संसार का दिग्दर्शन करें।

श्री विनोदकुमार के दादा श्री शामजी वेलजी वीराणी और श्री शामजीभाई की धर्मपत्नी श्री कड़वीबाई वीराणी का संक्षेप में जीवन रहस्य

सेठ श्री शामजी वेलजी वीराणी मूलतः खीरसरा के निवासी थे। अपने दो भाइयो– श्री अम्बावीदासभाई और श्री देवराजभाई और अपनी बहन दूधीबहन के साथ खीरसरा में रहते थे; और व्यापार कपास का और धनविनिमय का अपनी शक्ति के अनुसार करते थे। पुण्यशालिता के ठाठ में आनन्दमय जीवन गुजारते थे। दैवयोग से अपने से छोटे भाई श्री अम्बावीदास भाई का बम्बई में उन्नीस वर्ष की युवान वय में अवसान हो गया; और श्री दूधीबहन का अच्छे घरमें विवाह कर दिया गया; पर उनकी आयु छोटी थी। मात्र दो वर्ष का संसार भोगकर कालधर्म उन्होंने प्राप्त किया।

श्री शामजी भाई में मतिराम व्यापारी पराक्रमके साथ धर्म भावना प्रवर्तमान थी, अतः संपूर्णतया व्यापारी कौशल होने

स्व. धर्मानुरागी पूज्य



श्री गामजी वेलजी वीराणी

होने के साथ ही पुत्री, माँ-बाप का देश छोड़कर (इतर लोक) श्वशुरदेशगामिनी होती है, उसी प्रकार विनोदकुमार के जन्म के लिए पूर्वभूमिका की रचना होती है, और फिर उनका जन्म होता है, उस यन्त्र को बतानेवाला यह प्रकरण बनता है, गुण गुणों का आकर्षण बनते हैं।

श्री वीराणी कुटुम्ब का पुण्यठाठ और उस के कारणः—

इस कुटुम्ब की पूर्वपर्याय, स्थानकवासी धर्म की परंपरा से चली आती है (यह अतिसमान्य है कि लम्बे अरसे की शुद्ध पर्याय में शुद्ध तत्त्वों के दर्शन किसी काल में जीवों को मिलते हैं। अर्थात् बहुत समय के अन्तराल में, बा ब्र श्री विनोदमुनि जैसे ज्ञानी उत्पन्न होते हैं।

धर्म की जहाँ शुद्ध पर्याय प्रवर्तमान हो, वहाँ संसारसुख खुद चलकर आता है—आना पड़ता है।

इस न्याय के अनुसार यह वीराणी कुटुम्ब आज भी काल के प्रमाण में महा ऋद्धि सिद्धि युक्त और ख्याति के साथ धर्मभावना को प्राप्त है। ऐसे विषमकाल में यशःकीर्तिनामकर्म धारी इस वीराणी कुटुम्ब का नाम समस्त सौराष्ट्र में, भारत के कुछ शहरों में और विदेश में मशहूर है।

राजकोट और आफ्रिका में इस कुटुम्ब के रहते हुए मनुष्यों के रूप, गुण, पुरुषार्थ आदि गुणों की समीक्षा यदि की जाय, तो निरीक्षण करनेवाला सच्चे दिलसे प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता।

इस कुटुम्ब में गुरुमनागत विनय विवेक के उत्तरोत्तर गुण ऐसे चले आते हैं कि वे गुण ऋद्धि सिद्धि को जरूर आकर्षण किए बिना नहीं रह सकते; अर्थात् खींच कर जरूर लाते हैं।

इस कुटुम्ब में रहे हुए सभी जीवों की व्यवहारदृष्टिसे धर्म श्रद्धा अगर देखी जाय तो इस लोक में उस की जोड मिलनी दुर्लभ है।

इस कुटुम्ब के वीर पुरुषों का वर्तमान युग की पृथक् पृथक् संस्थाओं में अग्रआपन सिद्ध करता है कि अनुकूल होने की कोई महाशक्ति उन में काम कर रही है; क्यों कि वीराणी कुटुम्ब के नाम से, वर्तमान युग के अनुसार अनेक संस्थाएँ समाज से अनुकूल प्रवर्तमान होकर लोकोपयोगी बन गई हैं। और दुर्बल दुबलेपतले जीवों के आशिर्वाद, यह कुटुम्ब ले रहा है।

वंशपरम्परा का उदारता का गुण इतनी प्रचुरमात्रामें उत्तम प्रकार से कुटुम्ब में प्रवर्तमान है कि, गरीब-भिखारी लोग कुछ न कुछ हमेशा ही यथायोग्य दान ले रहे हैं।

कुटुम्ब में सहकार, जगत के जीवों के लिए बोधप्रद है वैशिष्ठय तो यह है कि वर्तमान युग की शिक्षा का प्रचार कुटुम्ब में कालानुसार संपूर्णतया देखने में आता है; परन्तु पूर्वजों से प्राप्त हुई संस्कृति की लगाम कभी भी हाथ से नहीं छूटती।

समस्त कुटुम्ब में व्यापारी रक्त इतने जोश से वहता है कि स्वतंत्रता के सिद्धान्त के गुण की खबर इस वीराणी कुटुम्ब को मानो हो ही नहीं। अर्थात् समस्त कुटुम्ब व्यापारी कला में निपुण है; और व्यापार विकास की स्थिति इतने उत्तम प्रकार की है कि, जिस प्रकार कोई एक बड़ी नदी में से अनेक नहरें निकलकर अनेक क्षेत्रों को पानी देती है, उसी प्रकार इन व्यापारियों की कुशलता दूसरों के लिए भी लाभदायक सिद्ध हुई है।

समय समय पर संसार की प्रवृत्तियों में यह कुटुम्ब ओत प्रोत मालूम पड़ने पर भी धर्मक्रिया के नियमों का पालन मुख्यतया पाया जाता है।

काठियावाड़ जब समुद्र-पर्यटन से डरकर, देशाटन करने में पीछे रह रहा था, और कहाल आगे था, तब भी इस कुटुम्ब के पूर्वजों ने दूर आफ्रिका में प्रविष्ट होकर व्यापारी कुशलता को सिद्ध किया है, और नाम कमाया है। उस के प्रताप से यह बीराणी कुटुम्ब, आज बड़ी समृद्धि का उपभोग कर रहा है।

पुरजों और गुरुजनों की पुण्यशीलता के गुणग्राम, सदैव इस बीराणी कुटुम्ब के विनयवान पुरुषों की शीश के ऊपर सूर रूप से प्रवर्तमान होते रहे हैं, और साथ ही साथ धर्मभावना के अलंकार उसमें काम करते रहे हैं।

संतोंकी सेवा का महागुण समस्त कुटुंब में इतनी सुन्दर रीति से काम करता है, कि अनेक जीवों को यह गुण बोधपाठ रूप बन जाता है।

इस पुण्यवान् कुटुम्ब का ससार व्यवसाय इतना विस्तृविशाल है कि, पुरुषवर्ग को दुपहर की सामान्य-दो घड़ी की-निद्रा भी प्राप्त नहीं हो सकती। फिर भी कौशलपूर्वक सभी व्यवसायों की पहुँच जाने की अगाध ताक़त, इन विरल पुरुषों में देखने में आती है। व धर्मक्रिया के सभी समयों की रक्षा कर, प्राप्त सम्पत्ति के सुख का अनुभव भी करते हैं, और हरएक उत्तरदायित्व का समुचित पालन करते हैं।

पुरुषवर्ग जितना व्यवसाय, कुटुम्ब की अगुमा स्त्रियों का भी है, फिर भी, धर्म नियमों का पालन उत्तम प्रकारका करती

हैं। सामयिक, प्रतिक्रमण, पौपधव्रत आदि धर्मानुष्ठान, इन स्त्रियों के जीवनमें मुख्यतया कार्य करते हैं; और घर में संसारकी सुख सम्पत्ति के साथ धर्म भी सिद्धिरूप में प्रवर्तमान है।

इस महाभाग्यवान कुटुम्ब को सद्‌गति प्राप्त हो ऐसे साधु साध्वियों को पात्र में दान करने के उत्तम योग प्राप्त होते हैं; और घर के सभी जीव कृतार्थ होते हैं।

इस उज्जवल कुटुम्ब की सब से वडी विशेषता तो यह है कि मुखमुद्रा में वह रूपगुण के साथ सदाचारका भी दुनिया को दिग्दर्शन कराता है; अर्थात् यह कुटुम्ब सदा निष्कलंकता से प्रवर्तमान हो इसका समस्त कुटुम्ब में सम्पूर्ण ख़याल भी प्रवर्तमान है। ऐसे अनेक गुणों से युक्त इस वीराणी कुटुम्ब की आज हस्ती है, उसकी ऐसी भाग्यवत्ता के विशेष कारणों की ओर अब हम दृष्टि डालते है।

श्री वीराणी कुटुम्ब के पुण्यठाठ के मूल कारण

श्री विनोदकुमार के दादा सेठ श्री शामजी वेलजी वीराणी और उनकी धर्मपत्नी श्री कडवीवाई वीराणी का उत्तम प्रकार का धर्मानुरागी जीवन, इस पुण्यठाठरूप शरीर में आत्मा के रूप से काम कर रहा है, कि जिन्होंने समस्त कुटुम्ब में धर्मवारिसदारी प्रवृत्त कराके स्वर्ग की राह ली है। ऐसी प्रभावशाली धर्मिष्ठ आत्माओं के जीवन पर प्रकाश डालने की परम आवश्यकता दीख पडती है; क्यों कि लेखक सिद्ध करना चाहता है कि, धर्म की शुद्ध सम्यक्त्व रूप पर्याय में, इस दिव्यपुरुष श्री विनोदकुमार का जन्म हुआ है; और जरूर ही पूर्वभव से समक्ति के साथ इस आत्मा के माता के गर्भ में आने की घटना घटी हो, तो आश्चर्य की बात नहीं है।

अपने दादा, सेठ श्री शामजी वेलजी वीराणी और दादी श्री कडवीबाई वीराणी के जीवन की रूपरेखा देने के लिए आगे ही इस वीराणी कुटुम्ब की छ सात पीढियों का इस प्रथम प्रकाश में रखा गया है।

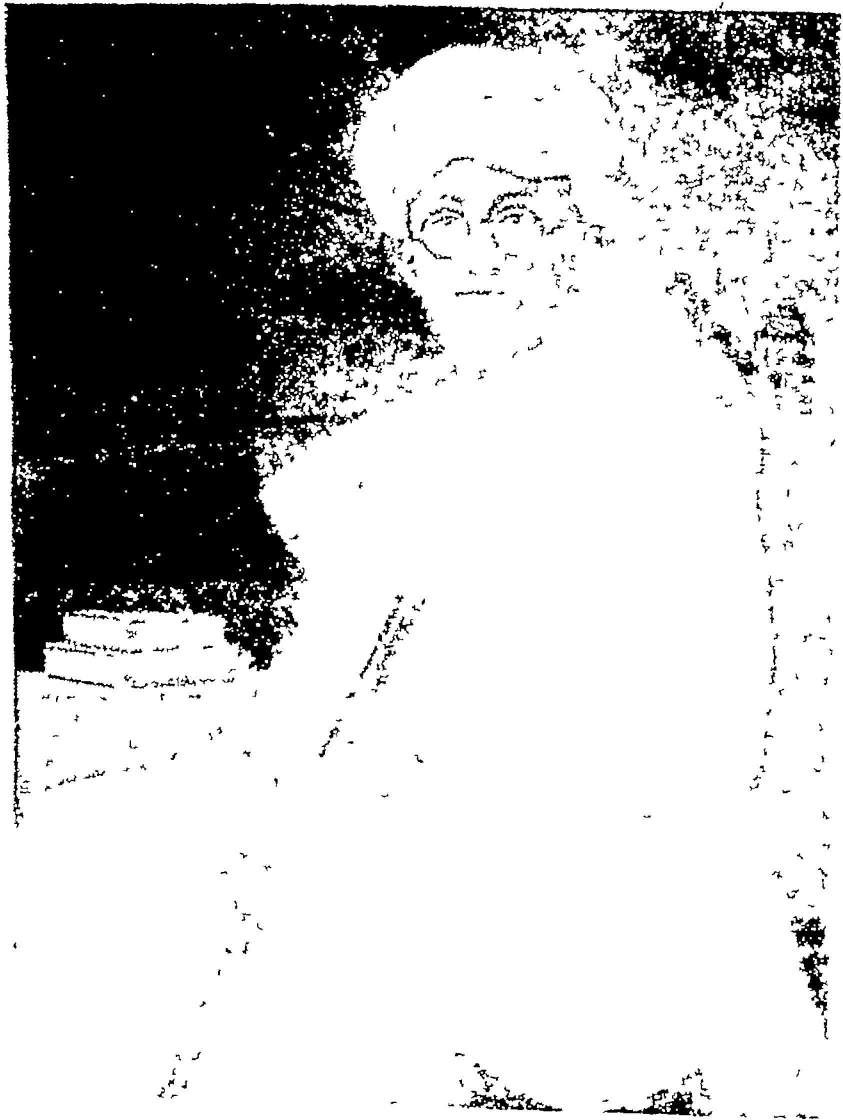
इस वीराणी कुटुम्ब की उज्ज्वलता की आत्मा के स्वरूप यदि कोई हो, तो, वे कि जिन्होंने अपने पूर्वजों का शोभा दी है, पूर्वजोंकी सम्यक् पर्याय का सिद्ध किया है, ऐसे आदर्श-युगल रूप उत्तम प्रकारका ससारी–जीवन चलानेवाले सुश्रावक और सुश्राविका मानने योग्य, मूल रूप बने हुए, सेठ श्री शामजी वेलजी वीराणी और उनकी धर्मपत्नी श्री कडवीबाई वीराणी। उनके उत्तम ससार का दिग्दर्शन करें।

श्री विनोदकुमार के दादा श्री शामजी वेलजी वीराणी और श्री शामजीभाई की धर्मपत्नी श्री कडवीबाई वीराणी का संक्षेप में जीवन रहस्य

सेठ श्री शामजी वेलजी वीराणी मूलतः खीरसरा के निवासी थे। अपने दो भाइयो– श्री अम्बावीदासभाई और श्री देवराजभाई और अपनी बहन दूधीबहन के साथ खीरसरा में रहते थे; और व्यापार कपास का और धनविनिमय का अपनी शक्ति के अनुसार करते थ। पुण्यशालिता के ठाठ में आनन्दमय जीवन गुजारते थे। दैवयोग से अपने स छोटे भाई श्री अम्बावीदास भाई का बम्बई में उन्नीस वर्ष की युवाल वय में अवसान हो गया; और श्री दूधीबहन का अच्छे घरमें विवाह कर दिया गया; पर उनकी आयु छोटी थी। मात्र दो वर्ष का संसार भोगकर कालधर्म उन्होंने प्राप्त किया।

श्री शामजी भाई में अविराम व्यापारी पराक्रमके साथ धर्म भावना प्रवर्तमान थी, अत संपूर्णतया व्यापारी कौटुम्ब होने

स्व. धर्मानुरागी पूज्य



श्री शामजी वेलजी वीराणी

अपने दादा सेठ श्री शामजी वेल्जी वीराणी और दादी श्री कडवीबाई वीराणी के जीवन की रूपरेखा इसके पूर्व लिख आगे ही इस वीराणी कुटुम्ब की छ सात पीढ़ियों का इस प्रयत्न प्रकाश में रखा गया है।

इस वीराणी कुटुम्ब की उज्ज्वलता की आत्मा के स्वरूप यदि कोई हो, तो, वे कि जिन्होंने अपने पूर्वजों का शोभा दी है, पूर्वजोंकी सम्यक् पर्याय का सिद्ध किया है, ऐसे आदर्श युगल रूप उत्तम प्रकारका संसारी-जीवन चलानेवाले सुश्रावक और सुश्राविका मानने योग्य, मूल रूप बने हुए, सेठ श्री शामजी वेल्जी वीराणी और उनकी धर्मपत्नी श्री कडवीबाई वीरागी। उनके उत्तम संसार का दिग्दर्शन करें।

श्री विनोदकुमार के दादा श्री शामजी वेल्जी वीराणी और श्री शामजीभाई की धर्मपत्नी श्री कडवीबाई वीराणी का संक्षेप में जीवन रहस्य

सेठ श्री शामजी वेल्जी वीराणी मूलतः जीरसरा के निवासी थे। अपने दो भाइयों- श्री अम्बावीदासभाई और श्री देवराजभाई और अपनी बहन दूधीबहन के साथ जीरसरा में रहते थे, और व्यापार कपास का और धनविनिमय का अपनी शक्ति के अनुसार करते थे। कुटुम्बीजनों के ठाठ में आनन्दमय जीवन गुजारते थे। दैवयोग से अपने से छोटे भाई श्री अम्बावीदास भाई का बम्बई में उन्नीस वर्ष की युवान वय में अवसान हो गया; और श्री दूधीबहन का अच्छे घरमें विवाह कर दिया गया; पर उनकी आयु छोटी थी। मात्र दो वर्ष का संसार भोगकर कालधर्म उन्होंने प्राप्त किया।

श्री शामजी भाई में मतिराम व्यापारी पराक्रमके साथ धर्म भावना प्रवर्तमान थी, अतः संपूर्णतया व्यापारी कौशल होने

स्व. धर्मानुरागी पूज्य



श्री शामजी वेलजी वीराणी

के साथ उन के हृदय में पूर्णतया नीति को स्थान था। प्रामाणिकता उनका मुद्रालेख था। हर रोज़ किसी न किसी प्रकारका धर्मानुष्ठान करना ही चाहिए—ऐसी उनकी उत्कृष्ट भावना हमेशा प्रवर्तमान थी। स्वभाव उन का शान्त और दयामय था।

श्री शामजी भाई अपने पिताजी के एक उच्च कोटि के सुपुत्र थे। उसका प्रमाण यह है कि एक समय पिताजी वेलजी भाई को अपने कपास (आड़) के व्यापार में बड़ी नुकसानी आई। उस को उन्होंने अपनी कमाई से पूरा कर दिया।

शामजी भाई व्यापारी साहस के लिए वराड़ में गये थे; और थोड़े समय में व्यापार में कुशलता प्राप्त की; पर उस क्षेत्र के साथ भाग्य की कामयाबी कम थी, इसलिए घटना ऐसी घटी कि काठियावाड में हैजे की बीमारी आई। और हैजेने उनकी माताजी का भोग लिया। नतीजा यह हुआ कि व्यापार छोड़कर अपने वतन में आना पड़ा।

श्री शामजी भाई और श्री कडवीबाई लग्नग्रन्थि से जुड़े जाते हैं।

घर में माताजी के अवसान के बाद, स्त्रियों में कोई नहीं। इस से शामजी भाई का उनके पिताजीने ब्याह कर दिया; और ग्यारह वर्ष की उम्र में, श्री कडवीबाई वीराणी, श्री शामजी भाई की धर्मपत्नी बन गई। इन कडवीबाई की सारी जिन्दगी सिद्ध करती है कि वे महालक्ष्मी रूप से श्री शामजी भाई की धर्मपत्नी बनी थीं।

कडवीबाई ऐसी सद्भाग्यवती थीं, कि घर में आने के साथ ही ऋद्धि—सिद्धि की दिनप्रतिदिन अभिवृद्धि होती चली जो अभीतक अनुपम रूप से चल रही है (ऐसा होना ही चाहिए दादा—दादी की परम शुद्ध परम्परा में श्री विनोदकुमार का आकर्षण होनेवाला होगा, वह भाविभाव)

श्री फड़वीबाईने, सद्भाग्य से अपने पति के साथ रहकर, ऐसी उत्तमता प्राप्त कर ली, कि पतिपत्नी की ऐसी समानगुण युक्त युगलता का दर्शन करने के लिए भी भाग्य होना चाहिए।

इन महालक्ष्मी का नाम था फड़वीबाई; पर सर्वांग अमृतरस मय जीवन समेत, ज्ञानध्यान स्वभाव की, कार्यकुशलतावाली, अनेक गुणसहित, ससुराल के और पितृपक्ष के कुल का उज्ज्वल करने वाली धमवृत्तिवाली थी कि जिनकी पुण्यशीलता के दर्शन करने वाले भी पुण्यवान बन जायें ऐसी थीं।

हमेशा के लिए सामायिक आदि व्रतों के नियमों का पालन करना, सो उनका मुख्य गुण था ही; साथ ही साथ अष्टमी, पाक्षी आदि के पौषधव्रत भी थे।

विशेष भाग्यवत्ता तो यह थी कि पुत्र भी मातापिता के भक्त उत्पन्न हुए, कि जो पुण्यशीलता में स्वहस्त से बहुत दानादि उदार गुणों से प्रसिद्ध हुए। उन महालक्ष्मी की पुण्य पत्ता का लाभ, अनेक जीवों को अनेक संस्थाओं के द्वारा सीधा ही या किसी के जरिये आज भी मिल रहा है।

पुत्रों ने फड़वीबाई माताजी के पुण्यार्थ के लिए, उनके यानी फड़वीबाइ के नाम से अनेक संस्थाएँ खड़ी की हैं कि जिन में श्री फड़वीबाइ कन्याविद्यालय का नाम राजकोट में प्रसिद्ध है। इस के अतिरिक्त अनेक धर्मकरणी के स्थानक (उपाश्रय) भी इन कुलीन महिला की पुण्यशीलता के स्मरण में खड़े किये गये हैं; और गौशालायें एवं दवाशालायें भी चल रही हैं।

इस पुण्यशीलता का नमूना सिद्ध करता है कि वीराणी कुटुम्ब की अभिवृद्धि की नींव में इन महालक्ष्मी स्वरूप श्री फड़वीबाईकी पुण्यपत्ता काम कर रही है। ऐसी उत्तम महिला का संसारसुख

स्व. धर्मानुरागी पूज्य



मातुश्री श्री कडवीबाई बीगाणी

श्री पड़वीबाईने, सद्भाग्य से अपने पति के साथ रहकर, ऐसी उत्तमता प्राप्त कर ली, कि पतिपत्नी की ऐसी समानगुण युक्त सुयोग्यता का दर्शन करने के लिए भी भाग्य होना चाहिए।

इन महालक्ष्मी का नाम था पड़वीबाई, पर सर्वांग अमृतरस भरा जीवन गमन, ज्ञानध्यान स्वभाव की कार्यक्षमतावाली, अनेक गुणसहित, सगरार के और जिनपथ के सुख का उज्ज्वल करने वाली धर्मनिष्ठावाली थी कि जिनकी पुण्यशीलता के दर्शन करने वाले भी पुण्यवान बन जायँ ऐसी थीं।

समता के लिए सामायिक आदि व्रतों के नियमों का पालन करना, तो उनका मुख्य गुण था ही; साथ ही साथ अष्टमी, पाक्षी आदि के पौषधव्रत भी थे।

विशेष भाग्यवत्ता तो यह थी कि पुत्र मा मातापिता के भक्त उत्पन्न हुए, कि जो पुण्यशीलता में स्वहस्त से बहुत दानादि उदार गुणों से प्रसिद्ध हुए। उन महालक्ष्मी की पुण्य प्रभा का नाम, अनेक तीर्थों का अनेक संस्थाओं के द्वारा सीधा ही या किसी के जरिये आज भी मिल रहा है।

पड़वीबाई माताजी के पुण्यार्थ के लिए, उनके पे नाम से अनेक संस्थाएँ खड़ी की हैं कि कन्याविद्यालय का नाम राजकोट में दिये अनेक धर्मकरणी के स्थानक की पुण्यशीलता के स्मरण में रहें पर दवाशालाएँ भी चल रही हैं।

नमूना सिद्ध करता है कि बीरानी कुटुम्ब में इन महालक्ष्मी स्वरूप श्री पड़वीबाईजी रही है। ऐसी उत्तम महिमा का भंडारसुख

स्व. धर्मानुरागी पूज्य



मातुश्री श्री कडवीबाई वीराणी

प्राप्त करने वाले, श्री शामजीभाई के अनेक सद्गुणों को अब हम विशेषता से देखेंगे। खीरसरा में हरएक मनुष्य की श्री शामजी-भाई की ओर संपूर्ण ममता थी। गाँव के लोगों के साथ अधिकारी वर्ग की भी उनके प्रति पूर्ण ममता थी। उनकी कुशलता का श्रेष्ठ प्रमाण यह है कि गाँव के प्रमाण में वे अव्वल नम्बर के साहसिक व्यापारी माने जाते थे। इस साहसिकता के गुणने यह काम किया कि उन्होने अपने छोटेभाई देवराज भाई को ऋद्धिसिद्धि की अभिवृद्धि के लिए दूर कसाला सुदान (आफ्रिका) भेजा कि, जब काठियावाड़में समुद्रयात्रा के साहस के लिए भय था।

श्री देवराज भाई अपने गुरुबन्धु, शामजी भाई की आज्ञाको अत्यन्त विवेक और विनयपूर्वक मानते थे; और अपने मातृपक्ष, कि जिस की पीढी कसाला में चलती थी, जिसका वतन कालावड़ (शीतला) था, और रवाणी कुटुम्ब के नाते जो 'वल्लभजी सुन्दरजी के नाम से प्रख्यात था, उस पक्ष के नेताओं की कसाला की पीढ़ी में व्यापार के लिए गये; और पीढ़ी में तीन साल तक नीतिपूर्वक प्रवर्तमान होकर, एक कुशल व्यापारी बन गये। तब से इस वीराणी कुटुम्ब की अभिवृद्धि का वृक्ष निरूपित हुआ।

श्री देवराज भाई की व्यापार में अभिवृद्धि और स्वतन्त्र पीढ़ी की स्थापना.

श्री देवराज भाई कसाला में अपने मातृपक्ष में काम करते थे, वह काम, आज्ञांकितता से प्रवर्तमान होकर पूर्ण सहकार से छोड़ा; और कसाला में एक छोटी सी दूकान शुरू की। व्यापारी पराक्रम विकसित किया।

इन देवराज भाई के नीतिगुण को मध्य कर अगर करें, या उदारता के गुण के मुताबिक करें, या मिम्नसार स्वभाव के गुण से करें–दिनमदिन व्यापार, वृद्धि को प्राप्त होता गया कि जिस का महालाभ, उन्होंने अपने बड़े भाई श्री शामजी भाई वीराणी के कुटुम्ब को बहुत अच्छी तरह से दिया।

देवराज भाई का यह गुण सिद्ध करता है कि, व पूरे उदार दिल के पुरुषार्थी–और व्यापारी रक्त धारण करनेवाले थे।

श्री रामजी भाई वीराणी, पीढ़ी के अधिष्ठाता बनते हैं।

श्री देवराज भाई विवाह करने के लिए आफ्रिका से स्वदेश में आये, और पीढ़ी का कारोबार, श्री शामजी भाई वीराणी के बड़े पुत्र रामजी भाई वीराणी को सौंपा; और श्री देवराज भाई के हाथों में रहकर, तालीम प्राप्त किये हुए, रामजी भाईने पूर्ण निपुणता से पीढ़ी की कार्यवाहीको सम्हाल लिया। इस समय में इन दोनों भाइयों का कारोबार देश और विदेश-में संयुक्त था।

श्री देवराज भाई विदेश के व्यापार से निवृत्त होते हैं

श्री देवराज भाई तो सतोषी पुरुष थे। धर्मिष्ठवृत्तिवाले भी थे। लग्न करने के बाद, सिर्फ दो वर्षों के लिए वापिस कसाला गये। श्री रामजी भाई के हाथोंवाले कारोबार से उनका बहुत संतोष हुआ; और वापिस अपने वतन में आये; और हमेशा के लिए, परदेश से वियुक्त हुए।

वे निवृत्त हुए। बाद में कसाला की दूकान का कारोबार श्री रामजी शामजी वीराणी के नाम से चालू हुआ। श्री देवराज भाई की आयु की लेनदेन कम थी, अतः वतन में आने के बाद, सवत् १९७५ में आए इन्फ्ल्यूएन्जा की बीमारी

का भोग बन गए। इतना ही नहीं, पर बदनसीब से उनके दो पुत्रों में बडे पुत्र अमृतलाल भाई का भी इस बीमारी में अवसान हुआ। तब छोटे पुत्र श्री. रसिकभाई की आयु केवल एक ही वर्ष की थी।

श्री शामजी भाई का स्वाश्रयी जीवन इतना सरस और सुंदर था कि, अपने भाई देवराज भाई को व्यापारनिपुण बनाया, पर उनकी– ओर से एक पाई भी प्राप्त करने की कभी इच्छा नहीं की।

विदेश से अपने बडे पुत्र रामजीभाई को अपने वतन में बुलाकर, भायावदर में मोदी श्री. मोतीचन्द धरमसी की सुपुत्री दूधीबाई के साथ उनका विवाह किया।

इन गुणवान पुरुष शामजी भाई ने वंशपरम्परा से चली आती हुई धर्मदृष्टि की ओर आत्मा को ले जाने के लिए, संवत् १९७२ में, व्यापार से, अपनी आत्मा को निवृत्त बनाया। धर्म कार्य की सिद्धि के लिए उन्होंने ग्रामीण जीवन छोडा; और बडे शहेर में निवास करने का निश्चय कर लिया। फिर जब अपने दूसरे पुत्र श्री दुर्लभजी भाई, लग्न करने के लिए, स्वदेशमें १९७४ में आये, तब उनके लग्न के बाद, संवत १९७५ में राजकोट में आकर अब, जहाँ श्री दुर्लभजी भाई वीराणी रहते हैं, इस जमीन को खरीद किया। यह ४७५ वार की जमीन, रू० ७ के भाव से, दरबार श्री के पास से खरीद की गई थी। १९७७ में धर्मकरणी के लिए बाँधे हुए विचारों को अमली बनाने के लिए, खीरसरा छोडा; और राजकोट में निवास किया।

कम समय में अनेक गुणों के परिणाम से राजकोट के संघ में वे आदरणीय बन गये। उन का इतना बडा उदार

स्वभाव था, कि दान देने की वृत्ति के परिणाम से समाज में भी स्थान प्राप्त कर सके। उनकी वाणी ऐसी अमृतरसयुक्त थी कि, सुननेवाले के ऊपर जादू हो जाय, और उन के प्रति सभी ममतापूर्ण व्यवहार रखें। जोर से यदि कुछ कहने का मौका आ जाय, तो पश्चात्ताप उन्हें होता था; और जिस को बुरा लगा हो, उसकी माफी माँगने के सिवा उनको चैन नहीं होता था। और क्लेश के अन्त को लाने के बाद ही उन्हें आनन्द होता था।

उदारता का गुण इतनी मात्रा में था—और बढ़ता चला जाता था कि घर के आगे कोई कुछ लेने आनेवाला—माँगने वाला निराश होकर वापिस नहीं जाता था।

इस उदारता के गुण की प्रशंसा, पोरबन्दरनिवासी वेपरिया श्री लक्ष्मीदास पिताम्बर, यहाँ तक करते थे कि, शामजी भाई जैसे उदार वृद्धपुरुष के दर्शन करने के लिए भाग्य चाहिए। माँगनेवाले को कुछ न कुछ देना, उनका प्रधान गुण था। श्री लक्ष्मीदास भाई कहते थे कि, शामजी भाई में उदारता के अगाध गुण को देखकर, मैं बहुत सन्तुष्ट हुआ हूँ।

संसार में साधुभावरूप जीवन

एक समय ऐसी घटना बनी कि, उन के दवाखाने के मकान को बनाने का काम चल रहा था। उस में रात को भी काम चलता था। उस समय किसीने पेट्रोमेक्स बत्ती की चोरी की। मजदूरों ने सुबह में चोर को खोज निकाला, और श्री शामजी भाई के पास हाजिर किया। अगर वे आज्ञा दें, तो पुलिस को स्वाधीन करने की याचना भी की गई।

मजदूरों की इस क्रिया के उत्तर में श्री शामजी भाई ने बताया कि बत्ती तो मिल गई। पुलिस को सौंपकर इस

मनुष्य को क्यों परेशान किया जाय? पैसों की ज़रूरत होगी; इसलिए उसने यह काम किया होगा; अतः उसको छोड़ दिया जाय। मैं उसके दुःख को समझता हूँ।

इतना कहकर उन्होंने चोर को अपेक्षित कपड़े और अन्नादि चीज़ें दीं।

धन्य है शामजी भाई को, कि जिन के ऐसे सद्गुणों के प्रभाव से ही उन्हें सुखरूप कालधर्म की प्राप्ति हुई। उनकी कालधर्मगति केवलसुखरूप थी, उस में कोई सन्देह नहीं। अक्षरशः सत्य घटना है। उसको प्रकाशित करने का अपूर्व अवसर लेखक को प्राप्त हुआ है। अवसर निम्नलिखित रूप से है :—

बीमारी की शुरूआत के साथ एक ज़ोरदार झाड़ा आया, और शरीर में सामान्य अशक्ति ज्ञात हुई। बाद में तीन दिनों तक जीवित रहे। उस समयान्तराल में एक बार भी टट्टी नहीं गये। केवल दो चार बार पेशाब जाना पड़ा। मरते तक केवल प्रवाही पदार्थ खुराक में लिए; और धर्म के वातावरण में ही ज़िन्दगी के अन्तिम श्वासों की मूल्यवती घड़ियाँ चलती थीं, उस समय, गोण्डल निवासी श्री दामजीभाई आये थे कि जिन्हों ने उनकी मृत्यु पर्यन्त सज्जाय स्तवनरूप धर्म सुनाया था। हर्ष-पूर्वक इस का श्रवण कर, बीमारी के तीसरे ही दिन, सभी की उपस्थिति में कुछ भी दुःख विना भोगे ही स्वच्छ शरीर से काल-धर्म को प्राप्त हुए। चेहरा ज्यों का त्यों—जरा भी मुरझाया हुआ नहीं—था। कोई नहीं कह सकता था कि उनका अवसान हुआ है।

सेठ श्री शामजी वेलजी वीराणी और उनकी पत्नी श्री कड़वी-बाई वीराणी का धर्मानुरागी जीवन, कि जो संक्षेप में ऊपर कहने में आया है। इस महा भाग्यवान युगल का पुत्रपरिवार भी दया धर्म के अधिष्ठाय से कुलाचारी प्रवर्तमान होता रहा कि, जिसके फल में दिव्य पुरुष श्री विनोदकुमार का अवतरण हुआ।

प्रकरण-३

वैराग्यज्योतिस्वरूप श्री विनोदकुमार की बाल्यावस्था, शालाकीय अभ्यास और व्यापारी कौशल ।

इस प्रतापी पुरुष के जन्म के साथ ही, गर्भ में आगमन के साथ ही श्री धीराणी कुटुम्ब की-ऋद्धि सिद्धि इतनी वृद्धि को प्राप्त होती गई कि, श्री विनोदकुमार की ओर सभी का सद्भाव स्वाभाविक ही था। नौकर चाकरों और कुटुम्ब परिवार के सुख में बालक की लाडभरी परवरिश हो, ऐसी स्थिति, पुण्यप्रताप से प्राप्त हुई थी।

जैसे श्री सुयगडांग सूत्र में आर्द्रकुमार के अध्ययन में, आर्द्र कुमार अनार्य क्षेत्रमें से आर्यक्षेत्र में आते हैं, और श्री भगवान महावीर से दीक्षा लेते हैं, वैसे ही श्री विनोदकुमार, बिल्कुल छोटी उम्र में माता-पिता के वतन-राजकोट-में माता के साथ रहकर धर्मव्रत धारण करते हैं।

माताजी को तो धर्म प्रिय था। हमेशा नित्यनियमानुसार सामायिक वे करती, प्रतिक्रमण करतीं, पौषध, उपवास आँबेल आदि तपश्चर्याओं के साथ ज्ञानाभ्यास भी करती थीं।

माताजी की यह धुन पुत्र को भी एकाएक लग गई। और वह भी यहाँतक कि, माताजी की धर्मक्रियाओं का इतनी छोटी वय में भी विनोदकुमार खयाल रखने लगे। अगर माताजी कदाचित् धर्म-क्रिया के समय को भूल भी जातीं, तो विनोद कुमार स्मृति देकर धर्मकरणी कराते थे।

पुत्र के लक्षण पालने में से।

माता जी के धर्मानुष्ठान के परिणाम से, श्री विनोदकुमार

में धर्मभावना ने निवास किया। उनकी ज्ञानलाभ करने की आसक्ति यकायक ही बढ़ने लगी। जैन पाठशाला में जाकर पढ़ना शुरू किया; साथ ही साथ शालाकीय पढ़ाई भी शुरू की।

शालाकीय अभ्यास में, प्रारंभ से ही मैट्रिक तक का अभ्यास किया उस समय तक, इतने नियमित थे कि उनके गुरु की उनके ऊपर प्रसन्नता उतरी थी। वारवार गुरु विनोदकुमार के पिताश्री दुर्लभजी भाई से मिलते थे तब श्री विनोदकुमार की अभ्यास सम्बन्धी चौकसी के लिए और विनय, नम्रता आदि गुणों के लिए तारीफ़ करते थे। बीच में सांसारिक शिक्षा के साथ उनकी धर्मभावना इतनी ज़ोरदार बनने लगी कि, धर्मज्ञान करने की अभीप्सा म, शालाकीय शिक्षा का लक्ष्य घटता चला। इससे वे राजकोट में 'नोन-मैट्रिक' तक की शिक्षा प्राप्त कर सके।

वीराणी कुटुम्ब का व्यापार, विदेश में ज़ोरों के साथ चलता था, इसलिए, उनके पिताजी श्री दुर्लभजी भाईने अपने व्यापार में प्रवीण बनाने के लिए, श्री विनोदकुमार को विदेश भेजने की इच्छा की; और उनको संवत् २००७ के वैशाख मास में श्री दोलत भाई के साथ सुदान जानेके लिए, भेजा भी। इस समुद्र की सफर में उनके साथ श्री दोलत भाई (श्री छोटालाल भाई के साढु भाई के पुत्र) थे, कि जिन्होंने श्री विनोदकुमार का बहुत परिचय किया; और स्वभाव पहचानने का बहुत लाभ प्राप्त किया, कि जो दोलत भाई के शब्दों में श्री विनोदकुमार की धर्मभावना के सम्बन्ध में पाठक वर्ग को उपयोगी हो सकता है, वह निम्नलिखित है :-

सफर में, खुराक के सम्बन्ध में शहद, मक्खन, कन्दमूल आदि पदार्थ, कि जिनको खाने से धर्मभावना नष्ट होती है-ऐसे पदार्थ, श्री विनोदकुमारने कभी नहीं लिए-नहीं खाये-; और धर्मनियमों का सख्ती से पालन किया। इस समय, श्री दोलतभाई पोर्ट सुदान के आफिस में मुख्य कार्यकर्ता के नाते थे।

सुदान पहुँचने के बाद श्री विनोदकुमार, पीढ़ी के काम में नियुक्त हुए; और अपने चाचा छोटालाल भाई की आज्ञा में प्रवर्त मान होकर कार्यकुशलता प्राप्त कर ली; और चाचाजी का अच्छा प्रेम सम्पादित किया।

संसार में भी वे प्रमादरहितता से बरतते थे उस के प्रमाण के लिए निम्नांकित घटना ही पाठकों के लिए पर्याप्त रहेगा।

राजकोट में मैट्रिक का अभ्यास अपूर्ण रहा था—यह विनोद कुमार के दिल का दु ख था; क्योंकि उनका स्वभाव, ऐसा बना हुआ था कि जो कार्य आरम्भ हुआ उसे पूरा करना ही चाहिए। अतः अपूर्ण अभ्यास पूर्ण करने के लिए व्यापार में नियुक्त होते हुए भी पोर्टसुदान के कम्बोनी हाईस्कूल में दाखिल हुए; और पीढ़ी के काम के साथ अभ्यास भी आगे बढ़ा लिया। इस प्रकार दुगुनी मेहनत, कार्यसिद्धि के लिए उन्होंने स्वीकृत कर ली।

(नोट :— कम्बोनी हाईस्कूल यानी अमरिकन मिशन हाइस्कूल, कि जहाँ अंग्रेजी पढ़ने से, अंग्रेजी भाषा का ज्ञान अच्छा प्राप्त हो सकता है। इसके परिणाम से विदेशगमन में भाषा के सम्बन्ध में उन को कुछ कठिनाई न पड़ी।)

कम्बोनी शाला में मैट्रिक तक का ज्ञान पूर्ण कर लिया और उनकी इच्छा फिर से स्वदेश में आने की हुई। संवत् २००८ में वे स्वदेश में आये; और पंजाब युनिवर्सिटी की मैट्रिक का आवेदन-पत्र प्राप्त कर, परीक्षा देने के लिए पटियाला गये।

विनोदकुमार की चमत्कारिक जिन्दगी की अद्भुत घटना—कश्मीर की यात्रा और सन्त दर्शन। (लुधियाना)

पटियाला में परीक्षा देने के बाद श्री विनोदकुमार का दिल कश्मीर के प्रवास के लिए आकर्षित हुआ। इस समय, कश्मीर में 'परमीट' के सिवा दाखिल नहीं हुआ जा सकता था; और 'परमीट'

की प्रथा की, श्री विनोदकुमार को जान नहीं थी। वे निर्दोष भाव से कश्मीर देखने की भावना में सीमा में प्रविष्ट हुए। सीमा के ऊपर उन को कायदे के मुताबिक, रोक लिया गया। अधिकारियों ने 'परमीट क्यों नहीं ली', इसका खुलासा माँगा। विनोदकुमार ने अपनी निर्दोषता ज़ाहिर की; परन्तु उनको बाकायदा ज्ञात किया गया कि, आप को 'एरेस्ट' किया जाता है, यानी आप पकड़ लिए जाते हैं। अधिकारियों ने 'एरेस्ट' कर के, उन्हें बस-मोटर में बिठाया। इस समय मोटर में-बस में एक बड़े अधिकारी भी थे। चलते हुए मोटर में, इन बड़े अधिकारी के साथ श्री विनोदकुमार को बातचीत का प्रसंग आया। श्री विनोदकुमार ने इन बड़े अधिकारी से कहा कि, मैं मैट्रिक की परीक्षा देने के लिए पतियाला गया था; और वहाँ मेरी ऐसी इच्छा हुई कि, कश्मीर यात्रा करूँ; और वहाँ से लुधियाना में हमारे पूज्य आचार्य महाराज श्री आत्मारामजी महाराज के, जो कि वहाँ विराजित हैं, दर्शन करूँ। इस भाव से पतियाला से मैं वहाँ आया हूँ।

मेरे पास 'परमीट' नहीं है, सो क्या मुझे कश्मीर में नहीं प्रवेश करने देंगे?

विनोदकुमार के इस प्रामाणिक और सरल उत्तर ने बड़े अधिकारी का दिल पिघला दिया; और उनकी प्रेमधारा श्री विनोदकुमार की ओर बरसी। बातचीत में बड़े अधिकारी ने कहा-चिन्ता करने की कोई ज़रूरत नहीं; आप के लिए व्यवस्था हो जाएगी। इस प्रकार बड़े अधिकारी साहब, श्री विनोदकुमार के मित्र बन गए; और उन के हृदय में इस भावमुनि रूप श्री विनोदकुमार के अधिष्ठाय देव ने स्थान ले लिया था; अतः अधिकारी, श्री विनोदकुमार के वक़ील बन गए; और अफसरों के पास उन्हों ने बातें कीं कि, ये एक विद्यार्थी हैं। वे पतियाला में मैट्रिक की परीक्षा देने के

- तदुपरान्त शास्त्र की उपमान दृष्टि से देखें, तो सत्य साथ इमशा शासनदेव कार्य करते हैं; और सम्पूर्ण-दर्शन तीर्थ का बखान किया ही करते हैं, उसकी ममाणता में उत्तराध्ययनजी सूत्र का द्वादशअध्ययन, 'श्री हरिकेशी' मुनि है, उसको समझ लेने के लिए पाठकगण से लेखक अनुराध करता

श्री विनोदकुमार, मुनि के दर्शन के लिए ।

श्री विनोदकुमार की कश्मीर देखनेकी तमन्ना पूरी हु कश्मीर के खूबसूरत और आकर्षक तत्त्वों का अवलोकन करके वापिस आए; और अपने निश्चित कार्यक्रम के मुताबिक, प आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज के दर्शन करने के लि लुधियाना (पंजाब) आए ।

(नोट:-पाठक गण को विचार करने के लिए यह पक बहुत महत्त्व रखता है, जो सिद्ध करता है कि श्री विनोदकुमा कश्मीर की यात्रा की; पर उनकी आत्मा, वहाँ केवल दृष्टान्तरूप ही थी। कश्मीर के किसी भी मादक पदार्थ ने उनकी आत्मा ऊपर लेश भी आक्रमण किया नहीं था, उसकी ममाणता य कि कश्मीर से लुधियाना आकर, श्री विनोदकुमार उच्च कोटि महात्मा के दर्शन करते हैं; और वैराग्य का बोध सुनते हैं जिस के परिणाम से कश्मीर का अवलोकन देखा न देखा बन ज है; और वहाँ से अपने वतन राजकोट में आते हैं।



स्वाध्याय का फल

स्वाध्याय करने से ज्ञानावरणीय कर्म क्षीण होते हैं, ज्ञानावरणीय कर्म क्षीण हो तब स्वयं आत्मविकास होता है।

आत्मा अपने स्वरूप में रहने से सभी दुःखों से छूट जाती

प्रकरण ४

श्री विनोदकुमार कोन्टीनेन्ट (योरप) की यात्रा में

संवत २००९ के वैशाख मास, (१९५३) में, लंडन में रानी एलिज़ावेथ के राज्यारोहण का प्रसंग था, जो क्रिया बृटिश राज्य के महान ठाठमाठ रूप से होनेवाली थी। संसार की अनेक भाग्यवान आत्माएँ इस प्रसंग पर वहाँ एकत्र होनेवाली थीं। दुनिया के बड़े बड़े राजद्वारी, इस महोत्सव में भाग लेने के लिए पधारने वाले थे। बृटिश राज्य की बड़ी ऋद्धि सिद्धि का अनुभव करने का यह प्रसंग था; और साथ ही साथ श्री दुर्लभजी भाई के सुपत्र भाई श्री शान्तिलाल भाई (श्री विनोदकुमार के सगे भाई) वहाँ (लंडन में) वार-एट-लो का अभ्यास करते थे-उनसे मिलने की उनकी वहुत उत्कण्ठा हुई थी- इस प्रकार 'एक पन्थ दो काज' के नाते वहाँ जानेकी- लंडन जाने की उनकी इच्छा हुई। पिताजी की आज्ञा प्राप्त की और तारीख ८-५-१९५३ के रोज़ हवाई जहाज़ (एरोप्लेन) में वम्बई से लंडन जानेके लिए रवाना हुए। लंडन में रहनेवाले श्री शान्तिलाल भाई की भी भाई से मिलने की तीव्र इच्छा थी; और ऐसे आनन्दोत्सव के प्रसंग पर भाईके आनेका समाचार जानकर शान्तिलाल भाई वहुत आनन्दमें आ गये थे। भाई को भेंटने के लिए एरोड्राम पर वे उपस्थित रहे। दोनों भाई पूर्ण प्रेम से एक दूसरे से मिले, और दोनो के वीच आनन्द छा गया।

दूध में शक्कररूप वहाँ एक दूसरा प्रसंग यह प्राप्त हुआ कि इस राज्यारोहण के महोत्सव का अनुभव करने, और आनन्द अनुभव करने, पोर्टसुदान से, श्री छोटालाल भाई के पुत्र, चि० ललितभाई और दोलतभाई भी वहाँ आए थे कि जिन को कोन्टीनेन्ट के अनेक स्थलों में घूमने की भावना भी साथ साथ थी। उनके साथ रहकर

आनन्द का अनुभव करने का प्रसंग प्राप्त हुआ। कुटुम्ब का मेला जमा।

उन्होंने एकसाथ मिलकर युनाइटेड किंग्डम प्रदेश का अवलोकन किया; तदुपरान्त अनेक स्थलों में – फ्रांस; बेल्जियम, हॉलेन्ड जर्मनी, स्विट्झर्लेन्ड, इटाली आदि में– प्रवास किया। उसके बाद घटना एसी बनी कि, श्री विनोदकुमार भाई की सुदान की 'परमीट' का समय पूरा होता था, अत वे रोम से खर्तून आनेके लिए रवाना हुए।

सावीधार यारप में ज्यादा समयतक रुके, अत साथ छोड़कर श्री विनोदकुमार राम से अलग हुए। ससार के मोहजाल में फंसे हुओं के लिए, ऐसे भव्य मले अत्यन्त आनन्द के प्रसगरूप बन जाते हैं; पर रुक्षपरिणामी श्री विनोदकुमार को ऐसे आनन्द के साथ कुछ भी लेन देन न थी। इस के प्रमाण में निम्नांकित बात, पाठकगण को श्री विनोदकुमार की आत्मा की पहचान के लिए जरूरी खेंच पड़ती है।

श्री दासमभाइ के कहने के अनुसार और अनुभवानुसार इस भव्य यात्रा यानी योरप की यात्रा में, श्री विनोदकुमारने सपूर्णतया अपने मन्तव्यानुसार सिद्धान्तगत नियमपालन किया था, और नाट्य, सिनेमा आदि सांसारिक सुखों से भी व असपृष्ट रहे थे।

धन्य है इन वीर पुरुषकी श्रद्धा को, कि जो श्रद्धा उच्च कोटिकी आत्मा के परिणाम को सिद्ध करती है। जैन सिद्धान्त में ऐसे परिणाम वाली आत्माको उच्च लेश्या का स्वामित्व दिया गया है कि जिस लेश्या का नाम 'तेजोलेश्या' है। उसके लक्षण, श्री उत्तराध्ययन जी सूत्रों ३८ में लेश्या अध्ययन में दिए गए हैं। वे निम्नप्रकार से हैं –

नम्र स्वभाव, अचपलता, कपटरहित्य, कौतुहलराहित्य, विनयपणा, इन्द्रियदमन, उपधान, तप, योगित्व, प्रियधर्मित्व, दृढ धर्मिता और वज्रलेप पापों से भयरुचि।

उपर्युक्त लक्षणों के स्वामी श्री विनोदकुमार की आत्मा में इस भव्य यात्रा के सुख का ज़रा भी असर न पड़ा। उसके प्रमाण में अनेक मुद्राएँ, इस जोवन चरित्र में से शोधक को प्राप्त हो सकती हैं; और उसकी प्रमाणता में निम्नांकित वात लेखक पेश करता है:-

संवत् २००९ के भाद्रपद मास में, ता. ३०-७-५३ के दिन, वे खर्तुम आए, और खर्तुमसे पोर्टसुदान आकर आफिस के काम में संलग्न हो गए; पर धर्मको कभी भूलते नहीं थे। भोजन के समय पर घर पर आते, और भोजन कर लेते। और भोजन के बाद, आफिस में अगर काम न हो तो वे सामयिक करने बैठ जाते थे। प्राप्त सुखोंको अभोग्य समझनेवाले मनुष्य मोक्ष या तो देवलोक को वरण करते हैं ऐसी उनकी दृढ़ मान्यता थी। अतः यह वीराणी कुटुम्ब का कुलदीपक किसी भी प्राप्त सुख का आस्वादन नहीं लेता था। उस के प्रमाण में उच्च कोटि की शय्याओं का त्याग कर, हमेशा सोने के लिए केवल एक कम्बल, एक उसीसा और चटाई का ही उपयोग करते थे।

श्री विनोदकुमार का यह जीवन, उनकी आत्मा के वैराग्य का प्रमाण देता है। उस के समर्थन में, जैन आगम के मूलरूप श्री उत्तराध्यनजी सूत्र का २९ वाँ, श्री सम्यक्त्व पराक्रम नाम का अध्ययन साक्षीभूत है कि, जिसका दूसरा नाम तिहत्तर फालाफली है, ये तिहत्तर वचनो में से तीसरे वचन के साथ इस महातत्त्व का सम्बन्ध है। वह वचन निम्मलिखित है:-

श्री गौतमस्वामी का प्रश्न और भगवान का उत्तर:-

प्र. धम्मसद्धाए णं भन्ते। जीवे किं जणयइ?

उ. धम्मसद्धाएणं सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जई। आगारधम्मं च णं चयइ। अणगारिए णं जीवे सारीर-

माणसार्णं दुक्खाण छेयणभेयण सजोगाईणंवोच्छेयं करेइ।
अव्वायाहं च सुहं निव्वत्तेइ ॥

भावार्थ प्र हे भगवन ! धर्म–श्रद्धा से जीव को क्या लाभ होता है?

उ (भगवान आदेश देते हैं कि) धर्मश्रद्धावान जीव को शुभ कर्म के उदय में प्राप्त सुख भुगतना प्रिय नहीं लगता। ऐसा जीव श्रावक के व्रत अंगीकार करने के लिए तैयार होता है; और उन के क्रम में ऐसे जीव को साधुत्व प्राप्त होता है; और साधुत्व में रहकर ऐसा उत्थान धर्म बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम फैलाता है कि शारीरिक और मानसिक दुःखों का नाश हो जाता है; और अव्याबाध यानी विकाररहित मोक्षसुख प्राप्त करता है।

इस प्रकरण के समर्थन में पाँचवाँ प्रकरण अति रसमय रीति स समझने के लिए लेखक पाठकगण से प्रार्थना करता है।



वियोगी विनोद।

रे विनोद तू विशेष मानवियों से,
  ससार छोड़ने लगा तू जोर से।
मन में रटन आत्म की लगी,
  किन्तु काया न तेरी डिगी।
जीवन धन्य बना है तेरा,
  ससार के वैराग्य से भरा।
मनमन्दिर के द्वार खोल कर,
  जैन शासन की शान बढ़ाई।
फिर भी हमारे हृदय दुःखमय,
विषम वियोग औ अति छोटी वय,
  पार न पाए मनुज ज्ञानमय।
गति उच्च गये होंगे सिधार,
  वन्दन करो सब बार बार।
शान्तिः ! शान्तिः !! शान्ति !!!

प्रकरण ९

अभिवृद्धिरूप धर्मभावना और उसका फल

श्री विनोदकुमार की धर्मभावना सुदान में ही वृद्धि को प्राप्त होती गई। अष्टमी और पाखी के दिनों में, अगर उन्हें कोई काम नहीं होता,था तो पौषध करते थे;और मात्रु परठाने के लिए संडास का उपयोग नहीं करते थे, किन्तु बाहर जंगल में जाते थे। संक्षेप में श्रावक के द्वादशी व्रतों का कड़ाई से पालन करते थे। श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र के महा वैराग्य से भरपूर चौथे "असखय" अध्ययन का प्रथम चरण, "असंखयं जीविय मा पमायए" सूत्र उनकी जीभ पर महामन्त्र के रूप में सदैव प्रवर्तमान रहता था। परमार्थ उसका यह है कि वे अपनी आत्मासे बार बार कहा करते थे कि, हे जीव! तू एक क्षण के लिए भी प्रमादी मत बन क्यों कि एक बार विच्छिन्न हुई आयु फिर से जोड़ी नहीं जा सकती। मतलब यह कि मरण के लिए एक दिन ज़रूर निश्चित ही है। इस सत्य को समझकर हमेशा के लिए वे जाग्रत रहते थे।

इस जाग्रति का आगम–कथित नवतत्त्वों में से छठे संवर तत्त्व के साथ सम्बन्ध है। आगम के नियमानुसार 'समकित वह संवर' अर्थात् बिना प्रत्याख्यान के समकित का स्वरूप शुद्ध होने से, किसी भी प्रकारकी सांसारिक स्थिति में भावनिर्ग्रन्थ का सम्बोधन प्राप्त होता है। संवर तत्त्व के सतावन भेद हैं। उन भेदों में से बारह भावनाएँ संवर की प्राणस्वरूपाएँ हैं। प्रथम भावना 'अनित्य भावना' है। श्री विनोदकुमारने 'अनित्य भावना का सदा ही सेवन किया है अर्थात् संसार को सदा अनित्य देखा है। वह भावना :–

माणसाणं दुक्खाण छेयणमेयण सजोगाईणंवोच्छेयं करेइ। अव्वायाइ च सुह निम्वत्तेइ ॥

भावार्थ प्र इ भगवन ! धर्म–श्रद्धा से जीव को क्या लाभ होता है?

उ (भगवान आदेश देते हैं कि) धर्मश्रद्धावान जीव को शुभ धर्म के उदय में प्राप्त सुख भुगतना प्रिय नहीं लगता। ऐसा जीव श्रावक के व्रत अंगीकार करने के लिए तैयार होता है; और उन के पक्ष में ऐसे जीव को साधुत्व प्राप्त होता है; और साधुत्व में रहकर ऐसा उत्थान धर्म बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम फैलाता है कि शारीरिक और मानसिक दुःखों का नाश हो जाता है; और अव्याबाध यानी विकाररहित मोक्षसुख प्राप्त करता है।

इस प्रकरण के समर्थन में पाँचवाँ प्रकरण अति रसमय रीति से समझने के लिए लेखक पाठकगण से प्रार्थना करता है।



वियोगी विनोद।

रे विनोद तू विशेष मानवियों से,
समार छोड़ने लगा तू जोर से।
मन में लग्न आत्म की लगी,
किन्तु कलगा न तेरी डिगी।
जीवन धन्य बना है तेरा,
समार के वैराग्य से भरा।
मनमन्दिर के द्वार खोल कर,
जैन शासन की शान बढ़ाई।
फिर भी हमारा हृदय दुःखमय,
विषम वियोग औ अनि छोटी वय,
पार न पाए मनुज ज्ञानमय।
गनि उच गये होंगे सिधार,
वन्दन करो सब बार बार।
शान्ति ! शान्तिः !! शान्ति !!!

प्रकरण ९

अभिवृद्धिरूप धर्मभावना और उसका फल

श्री विनोदकुमार की धर्मभावना सुदान में ही वृद्धि को प्राप्त होती गई। अष्टमी और पाखी के दिनों में, अगर उन्हें कोई काम नहीं होता,था तो पौषध करते थे;और मात्रु परठाने के लिए संडास का उपयोग नहीं करते थे, किन्तु बाहर जंगल में जाते थे। संक्षेप में श्रावक के द्वादशी व्रतों का कड़ाई से पालन करते थे। श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र के महा वैराग्य से भरपूर चौथे "असखय" अध्ययन का प्रथम चरण, "असंखयं जीविय मा पमायए" सूत्र उनकी जीभ पर महामन्त्र के रूप में सदैव प्रवर्तमान रहता था। परमार्थ उसका यह है कि वे अपनी आत्मासे बार बार कहा करते थे कि, हे जीव! तू एक क्षण के लिए भी प्रमादी मत बन क्यों कि एक बार विच्छिन्न हुई आयु फिर से जोडी नहीं जा सकती। मतलब यह कि मरण के लिए एक दिन ज़रूर निश्चित ही है। इस सत्य को समझकर हमेशा के लिए वे जाग्रत रहते थे।

इस जाग्रति का आगम–कथित नवतत्त्वों में से छठे संवर तत्त्व के साथ सम्बन्ध है। आगम के नियमानुसार 'समक्ति वह संवर' अर्थात् विना प्रत्याख्यान के समक्ति का स्वरूप शुद्ध होने से, किसी भी प्रकारकी सांसारिक स्थिति में भावनिर्ग्रन्थ का सम्बोधन प्राप्त होता है। संवर तत्त्व के सतावन भेद हैं। उन भेदों में से बारह भावनाएँ संवर की प्राणस्वरूपाएँ हैं। प्रथम भावना 'अनित्य भावना' है। श्री विनोदकुमारने 'अनित्य भावना का सदा ही सेवन किया है अर्थात् संसार को सदा अनित्य देखा है। वह भावना :–

अपूर्व अवसर ऐसा रे। कब आयगा,
कब रे। होंगे बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जो।
सर्व सम्बन्ध कुबन्धन तीक्ष्ण विदार के,
विचरेंगे कब महत्पुरुष के पथ जो।

इस मन्त्रकी आराधना के फल में धर्मभावना बढ़ती चली; और जब भी फुरसत का समय प्राप्त होता था, उसे वे व्यर्थ नहीं जाने देते थे; और उस समय वे सामयिक, काउस्सग, आनुपूर्वी या धर्म-पुस्तक का वाचन– कुछ न कुछ करते ही रहते थे। अर्थात् समय समय की प्रवृत्तिमें उनका ध्येय तो आराधना के ही लक्ष्य में था।

आराधना सच्चे अरिहन्त के शिष्य को मोक्षमार्ग की ओर मोड़ती है

ससार व्यवसाय स्वाभाविक रीति से छूटता जाता है; और मोक्ष मार्ग की सड़क की रचना होती जाती है।

संवत् २०११ के माघशुक्ल ५, ता २८–१–'५५ के दिन, पिताजी दुर्लभजी भाइ को सहकुटुम्ब, वतन को छोड़कर, सुदान (आफ्रिका) जानेका प्रसग प्राप्त हुआ। साथ ही अ सौ चि मंजुलाबहन और उनके तीन बच्चे एवं उनके पति, (श्री दुर्लभजी भाई के जामाता श्रीभूपतराय शेठ) तदुपरान्त अ सौ चि सुशीला बहन और चि राजेन एव अ सौ चि मृदुला (चि हसमुखराय भाइ की धर्मपत्नी) और श्री विनोदकुमार की माताश्री (श्री दुर्लभजी भाइ की धर्मपत्नी) श्रीमती मणिबहन– य सब वतन छोड़कर बम्बइ आये; और संवत् २०११ के माघ शुक्ल ११, ता ३–२–'५५ और गुरुवार क रोज स्टीम–शीप स्पयद में बम्बई से रवाना हुए; और सुखपूर्वक पोर्ट सुदान में, ता ८–२–'५५ के रोज पहुँच गए। इसके दरम्यान, श्री विनोदकुमार, पोर्टसुदान में ही थ।

सुशीलाबहन सुदान में तीन मास रहीं; और उन को अब स्व देश में आने का था, अतः उन्हें देश में पहुँचाने के लिए श्री

विनोदकुमार को, पिताजी दुर्लभजी भाईने उन के साथ भेजा। ता. १६-५-'५५ (संवत् २०११ वैशाख कृष्ण ९, सोमवार) के रोज़, ओमदूरमान से हवाई जहाज़ में एडन रवाना हुए। एडन में उन का छः दिनतक निवास रहा। उस समय में एडन में, श्री विनोदकुमार को सख्त बुखार-एक सो चार डिग्री-आया; किन्तु उनकी धर्म की ओर बहुत स्थिर श्रद्धा होने से ज़रा भी घभराहट के सिवा अटल रहे-पथारी में सोये तक नहीं। केवल दो दिन तक डॉकटर की सलाह के मुताबिक नियमपालन किया। बुखार में से मुक्त हुए, और वहाँ से अेरोप्लेन में बम्बई आये। अन्त में दिनाङ्क २८-५-'५५ के रोज राजकोट आ पहुँचे।

श्री विनोदकुमार की सुदान की यात्रा इस समय की, एक वर्ष और नौ महीने की हुई थी; और उस के बाद उनका स्वदेश में आगमन हुआ था, जिस समय में पीढी के कामों में उन्हों ने बहुत ध्यानपूर्वक काम कर के गुरुजनों को संपूर्ण संतोष दिया था।

वीराणी कुटुम्ब में धर्मभावना पूर्वपर्यायसे ही ऐसी चली आ रही थी कि बहुत-कुछ अंशों में धर्मानुरागिता कुटुम्ब के छोटे बडे सभी जीवो में प्रवर्तमान थी। और उसी न्याय से, श्री विनोदकुमार के बड़े भाई केशवलाल भाई भी बहुत धर्मानुरागी हैं। इन केशवलाल भाई के सहवास में रहनेका श्री विनोदकुमार को बहुत भाता था; और परिणामतः धर्म-भावनारूपी वृक्ष अत्यन्त अभिवृद्धि को प्राप्त हुआ।

"सवी जीव करूँ शासन रसी"-की भावना के साथ आफ्रिका की तीसरी यात्रा।

दिव्य पुरुष को देव सहाय।

श्री विनोदकुमार आफ्रिका की दूसरी यात्रा करके स्वदेस में आए। बाद में धर्म का सत्संग इतना बढ़ गया कि व्यापार से निवृत्ति प्राप्त करके केवल धर्मपरायण जीवन बीताने के

भावों के परिणाम से, धर्मभावना विस्तृत होती गई। अनेक जीव उनके उपदेश से धर्मपरायण बनकर सद्गति को प्राप्त करें, ऐसी उपदेश शैलीरूप जीवन शुरू किया। जो आप उसके साथ धर्म की ही बात करते थे। ऐसा उत्तम जीवन बीताते थे। ऐसे समय में विक्षेपकारी एक घटना घटी।

पिताजी की भावना, उनके जीवन का एक आदर्श व्यापारी बनानेकी थी। अत श्री विनोदकुमार का पोर्टसुदान आनेकी आज्ञा दी। इस आज्ञा को मान्य करने में उनका कोई अनुठा संकेत था। पिताजीने खास तो सफर करने की इसलिए आज्ञा दी थी कि, श्री विनोदकुमार की परमीट की समयमर्यादा पूरी हो रही थी; और 'रिन्यू' करवाने की परम आवश्यकता थी। साथ ही साथ व्यापार में जाकें जायँ ता अच्छा हा-ऐसी भी पिताजी की इच्छा थी।

इस स्थल पर दूसरी यात्रा में श्री विनादकुमार, जब पोर्टसुदान थे, तब एक बनाव बना था, वह जानने लायक होने से, लेखक पूर्ण प्रेम स उसे पेश करता है; क्योंकि उस घटना को तीसरी यात्रा के सांकेतिक बनाव के साथ सम्बन्ध है कि जिस घटना का स्वरूप दिव्य देव सहाय जैसा है।

उच्च कक्षा के अधिकारी के साथ सम्बन्ध।

दूसरी यात्रा के समय, जब पाट सुदान में काम करते थ, तब उनके हाथों कस्टम का माल 'क्लियर' करवान का काम था। अत यह काम ता यन्द्र ऊपर का ही था! एक समय ऐसा हुआ कि इजिप्त के उच्च अधिकारी कि जिनका नाम कर्नल माहमद अब्दम्मार था, उनके साथ सम्बन्ध, सयागवशात् हो गया।

इन अधिकारी साहब को पार्टसुदान में घूमन की इच्छा थी, यह बात श्री विनादकुमार का जानने में आई। अत उनके पास जाकर बहुत विवेकपूर्वक उनस कहा कि, साहब! आप चाहते हैं,

उस कार्य में मैं मदद कर सकता हूँ। अगर आप को कुछ हरकत न हो, तो पधारें। अधिकारी साहबने आनन्दपूर्वक श्री विनोदकुमार की इस भावना का स्वीकार किया; और श्री विनोदकुमारने उन को अपने मोटर में लिया, और सारा गाँव बताकर, उनकी भावना को पूरा किया। अपने घर पर भी उन्हें ले आये, और प्रेमपूर्वक नाश्ता (जलपान) कराया। इतना ही नहीं, उन्हें विदा करने के लिए बन्दर पर श्री विनोदकुमार गये।

इन अधिकारी के साथ एक दूसरा व्यक्ति भी था– दोनों का प्रेम सम्पादित किया। इन अधिकारी के ऊपर श्री विनोदकुमार के विनय–विवेक-गुण की उच्च प्रभावपरम्परा पड़ी। वे बहुत खुश हुए। विनोदकुमार की शुद्ध हृदय से तारीफ़ की। इजिप्त आनेका हार्दिक आमन्त्रण भी दिया, कि जो आमन्त्रण, श्री विनोदकुमार के पासपोर्ट में ही लिख दिया। ये दोनों आदमी इजिप्त के बन्दरी विभाग के अधिकारी थे, कि जो श्री विनोदकुमार को निम्नलिखित सन्देश देकर विलग हुए। वह अंग्रेजी में इस प्रकार है :–

Caps M El Mallah,

Best wishes for you, and hope to see you at our country Egypt D 12-3- 54

अर्थः– मै कर्नल महमद–अल–मलाह, शुभेच्छा के साथ आशा करता हूँ कि, हमारे देश में आप आएँ; और हमारा देश देखें.

(इजिप्त केरो ता. १२–३–'५४)

इजिप्तकी सांकेतिक यात्रा, और देवसहाय।

इस तीसरी यात्रा का खास कारण ऊपर कहे हुए एक उच्च अधिकारी के नये सम्बन्ध से, श्री विनोदकुमार को प्राप्त हुआ। आमन्त्रण के अनुसार पहले इजिप्त में इन अधिकारी साहब की मुलाक़ात लेकर, बाद में पोर्टसुदान में प्रविष्ट हो कर पिताजी से कहने का निश्चय उन्होंने कर दिया था कि–"अब मुझे व्यापारी

व्यवसाय से निवृत्त होकर अपना जीवन धर्ममय बनाना है; और मैं वापिस स्वदेश जाने की इच्छा रखता हूँ" संकेत के अनुसार वतन से बम्बई आये। पहले कर्नल साहब से मिलने के लिए केरो (इजिप्त) का टिकट लिया, और बम्बई से प्लेन (अेरोप्लेन) में केरा पहुँचे। कर्नल साहबने दिये हुए पते के अनुसार, केरो के परोग्राम के ऊपर उतरकर, वे आलेक्झान्ड्रिया की गाड़ी पकड़कर आलेक्झाण्ड्रिया आय।

स्थल अज्ञात था, और इजिप्त का सफर प्रथम बार ही था, अत: यहाँ स मेजर साहब के निवासस्थान तक पहुँचने के लिए टेक्सी वाले के साथ, वे उस के सम्बन्ध में बातचीत करते थे। यह बातचीत, एक अन्य अधिकारी साहबने सुनी, और श्री विनोदकुमार स पूछा कि आप का कहाँ जाने का है। इन अधिकारी को, श्री विनोदकुमार ने पासपार्ट के ऊपर लिखा हुआ निमन्त्रण और साहब का पता पढ़ाकर यहाँ जाने की इच्छा प्रदर्शित की।

इन अधिकारी साहब ने बताया कि कर्नल साहब अभी यहाँ नहीं हैं; परन्तु यहाँ स साठ मील दूर दूसरे स्थल पर हैं। श्री विनादकुमार असमंजस में पड़े कि, अब क्या किया जाय? उनको यह कहाँ से पता हो सकता था कि, अपने जीवन में दैवी सहायता काम कर रही है?

साकेतिक घटना।

घटना ऐसी घटी थी कि, इन अधिकारी साहब को बुलाने के लिए कर्नल साहब महमद अल-मलाह का मोटर आया था कि जिन स मिलने क लिए, श्री विनोदकुमार को जाना था।

मानो मोटर श्री विनोदकुमार के लिए देव ने भेजा हो, इस तरह अधिकारी ने श्री विनोदकुमार क आश्चर्य के बीच बताया कि, "आप को असमंजस में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। कर्नल साहबकी गाड़ी बुलाने के लिए यहाँ आयी है, मुझे

भी वहीं जाना है, अगर आप को भी वहाँ आना हो, तो मेरे साथ गाड़ी में चलिए"।

श्री विनोदकुमार मोटर में बैठे, और भावना से अनुसार कर्नल साहब से मिले।

यह घटना साधारण आश्चर्यकारक नहीं है, क्यों कि ऐसे अनजान आरब मुल्क में संयोग ऐसे थे कि, श्री विनोदकुकमार की भावना कभी पूरी हो सकने वाली नहीं थी; फिर भी देवसहाय मिल गई, और भावना पूर्ण हो गई।

इस फलसर्जन के भीतर श्री विनोदकुमार की कौन सी भाव-शक्ति ने कार्य किया था? इसका सही कारण यह है कि, श्री विनोद-कुमार, स्वदेश में से इस मुलाकात के लिए रवाना हुए, तब उनकी भावना, इस अनार्य देश के आरब को 'अहिंसा धर्म' समझाने की थी।

श्री विनोदकुमार की आत्मा तो भाव से षट्काय जीव की पूरी रक्षक बन गई थी। उनके रोम रोम में अहिंसा धर्म का रक्त बहता था; अतः मित्र से मिलने की भावना भी परिपूर्ण हुई, और भावनानुसार इन आरब मित्र के पास अहिंसा धर्म का अद्वैत स्वरूप पेश किया। इन अधिकारी महाशय के साथ बहुत धर्मचर्चा की। धर्मचर्चा के अलावा एक क्षण तक व्यर्थ गँवाया नहीं।

इस समय इजिप्त म बहुत ठण्ड थी, फिर भी ये भावसाधु उस ठण्ड की परवाह तक नहीं करते थे। उन के पास तो केवल सादे सूती कपड़ों में लहँगे, कफ़नी और कब्जे के सिवा, इस ठण्डे देश की शीतलता में शरीररक्षक एक भी कपड़ा नहीं था।

कर्नल साहब का प्रेम, श्री विनोदकुमार की ओर इतना बढ़ा कि एक गरम स्वेटर, उनकी अनिच्छा होते हुए भी पहनाया। कर्नल साहबने इन दिव्य पुरुष का बहुत सत्कार किया। ध्यानपूर्वक उनकी धर्मभावना की बातें रसपूर्वक सुनीं, और दोनों मित्र प्रेम की अत्यन्त वृद्धि करके विलग हुए।

श्री विनोदकुमार यहाँ से सुदान आने के लिए आदिसआबिया आए और अरोप्लेन का टिकट लिया और खर्तुम आए। उस समय पिताजी अमदुरमान (सुदान) में ही थे।

इस सुन्दर मुल्क में नाइल नदी बहती है। इस नदी का पट बहुत विशाल है। एक किनारे अमदुरमान नामका शहर है, कि जहाँ वीराणी कुटुम्ब का व्यापार है, और दूसरे किनारे खार्तुम शहर है। दृश्य अद्भुत सौन्दर्ययुक्त मालूम पड़ता है।

विनोदकुमार से मिलने के साथ ही पिताजीने पूछा कि, भाई! तुम को केरो क्यों जाना पड़ा था? उत्तर में श्री विनोदकुमार भाईने बताया कि 'मैं ईजिप्त में कर्नल साहब से मिलने के लिए गया था। इस मुलाकात का मेरा हेतु मित्रभाव से कर्नल साहब से मिलकर अहिंसा धर्म समझाने का था। मित्र की ओर जो फर्ज होना चाहिए, मैंने बजाया। मेरी आत्मा इससे कृत कृत्य हुई। केरा जानेका यही कारण था।"

पिताजी की इच्छा थी कि, विनोदकुमार व्यापार में काम करें, तो बहुत अच्छा हो; किन्तु श्री विनोदकुमार ने विनय से पिताजी की इच्छा का अस्वीकार किया। और आगे बताया कि, "धर्मशास्त्र का मेरा अध्ययन, अभी अपूर्ण है–अभी अध्ययन चालू है।" साथ ही साथ निवृत्त होने की भावना का निर्देश भी किया। उसके बाद पचीस दिनों तक सुदान में रहे, और उन दिनों का सभी समय धर्मध्यान का समर्पित किया। व्यापारी कार्यवाही का लेश स्पर्श भी उन्होंने नहीं किया। इतने में पिताजी को वतन में आनेकी जरूरत उपस्थित हुई; अतः उनके साथ वतन में आए। सवत् २०१२ के चैत्र शुक्ल ३, ता १३-४-५६ और शुक्रवार के दिन, स्टीमर 'एशिया' से वे बम्बई उतरे।

नोट :– इस प्रकरण की घटना, लगभग के हाथों में जब लेखन के लिए सुपुर्द की जाती है, तब श्री विनोदकुमार के पिताजी

दुर्लभजी भाई वीराणी साश्रु नयनों से निम्नलिखित नोट देते हैं:-

"श्री विनोदकुमार की धर्माभ्यास की तमन्ना मेरे अनुभवानुसार, जब अपने अन्तःकरण में श्री विनोदकुमार के दर्सन कराती है, तब मुझे अपार दुःख होता है।

मैं शुद्ध अन्तःकरण से स्वीकार करता हूँ कि बार बार मैं श्री विनोदकुमार के धर्माभ्यास की अडचनों का निमित्त बनता था। मेरी इस गलती की जब जब मुझे स्मृति आती है, तब अश्रुपात के साथ मेरा हृदय अपने से कहता है- **अपने घर पर अवतरित इस दिव्य पुरुष को मैने नहीं पहचाना और प्राप्त पारसमणि को यों ही फेंक दिया-** इन शब्दो की स्मृति में कभी कभी गहरे निःश्वासरूप से अन्तःकरण में से चित्कार बाहर निकलता है।

*

श्री विनोदमुनि का सांसारिक अवस्था में मनोमन्थन ।

१ जैनागमों की ओर (शास्त्रों के प्रति) अप्रतिम श्रद्धा

२ दीक्षांगीकार के अधिकारी होने के लिए ज्ञान अभ्यास की कहाँतक ज़रूरत?

३ कम से कम कितने भवों में मोक्षप्राप्ति हो सकती है? इसी भव में क्यों नहीं?

मुनि श्री विनोदकुमार के समस्त जीवन में प्रवर्तमान जाग्रत् दशा या आगे के सभी प्रकरणों का रहस्यदर्शन।

पूर्व-भव की उपसयमकरणी के फल में, इस संसार के बेमोड़ सुख प्राप्त करानेवाले संयोगों में माता के गर्भ से उत्पन्न विनोदकुमार, जब माता के गर्भ में आते हैं, वह साल १९९२ का था। उस समय इटाली एबीसिनियन युद्ध शुरू हुआ था। युद्ध के कारण व्यापारी वर्ग की ऋद्धि-सिद्धि में वृद्धि हुई थी। उस काल में इस उत्तमलक्षणयुक्त महापुरुष का इस लोक में आगमन होता है। इन संयोगों से सिद्ध होता है कि, कोई कर्मशूर माता के गर्भ में आया है, या धर्मशूर आया है। किन्तु ऐसे उत्तम शास्त्रोक्त लक्षणों से देखने की बुद्धि का, जड़वाद के कालने लोप कर दिया है। पुरुष की बोहत्तर कलाएँ और स्त्रियों की चौसठ कलाएँ जिस समय में प्रवर्तमान थीं वह-काल से दो-ढाई हजार वर्षों का काल महाविज्ञान स्वरूप था। अगर उस दिव्यकालमें ऐसे दिव्य पुरुष का जन्म हुआ होता, तो प्रज्ञापूर्ण माँ-बाप ने गर्भ में आने के साथ ही लक्षणों से शुभ के गुणों को समझ लिया होता। यह जरूर प्रतीति की जा सकती है कि, शास्त्र न्याय से, यह पुरुष जब गर्भ में आया, तब माताजी को कोई उत्तम स्वप्न भी आया होगा; किन्तु युगप्रभाव से माता पिता इस बात का पहचान न पाये। फिर भी सयोग सिद्ध करते हैं कि, युद्ध के युग में कर्म के साथ लड़ने के लिए इस दिव्यपुरुष का इस लोक में अवतरण हुआ था।

बिलकुल छुटपन से ही पूर्वभव के इस महातपस्वी ने धर्म के साथ प्रेम जोड़ दिया, जब कि उम्र उसकी केवल चार ही साल

की थी। तत्सम्बन्धी लक्षण, आगे कहे गए हैं। इन संयोगों के बीच, लेखक यह सिद्ध करना चाहता है कि श्री विनोदकुमार का संसारी जीवन तो नामगोत्र कर्म के ऊपर ही अवलम्बित था, जब कि उन की आत्मा तो संसार से पर साधुभाव से भाव-निर्ग्रन्थरूप से प्रवर्तमान थी।

माता की कुक्षि में आने के साथ एकमूत्रभाव–टूटी आयु कभी जुड़ती नहीं, अतः हे जीव! तुम्हें प्रमादी बनना उचित नहीं है–धारण कर के अवतार लेने वाले इन महर्षि को, केवल आगम प्रवचनों के अतिरिक्त कोई भी पदार्थ आकर्षित नहीं कर सकता था। इस के प्रमाण में बाद के प्रकरण जब लिखे जाएंगे, तब पाठकगण को जरूर ही विनोदकुमार का अद्भूतरसमय जीवन आकर्षित करेगा। उस पुरुष का व्यापार धर्मकथाएं थीं, और कुछ नहीं। बचपन से स्वर्गवास पर्यन्त समस्त समय, सम्यग्दर्शन के लक्षणरूप पर्याय के विना टूटे ही चलता रहा। उस स्थिति को श्री आवश्यक सूत्र के दंसण समक्ति के पाठ के साथ सम्बन्ध है, उस में समक्ति के लक्षण निम्नांकित रूप से दिए गए हैं। (देखिए प्रतिक्रमण)

"परमथ्थ संथवो वा सुदिट्ठ, परमथ्थ सेवणा वावि;
वावन्न कुदंसण वज्जझणा य, संमत्त सद्दणा।

भावार्थ :– समक्ति जीव, भली दृष्टि से परमार्थ का ही समागम करता है; परमार्थज्ञ की ही सेवा करता है; सम्यग्दर्शन रहित या कुत्सित दर्शनवाले का त्याग करता है–ये चार सम्यक्त्व की श्रद्धाएँ हैं।

क्रमशः जीवन ऐसा बन गया कि, मोक्षमार्ग के अलावा कोई भी बात उन्हें पसन्द नहीं थी; संसारी जीवों का परिचय उन्हें अच्छा नहीं लगता था। किन्तु धर्मकथा करनेवाला संसारी हो या साधु–उसीका सत्संग उन्हें अच्छा लगता था। भगवान के प्रवचनों

में अनुरक्त यह पुरुष सचमुच ही पूरा धर्माराधक था। उस धर्म का दिग्दर्शन, आवश्यक सूत्र यानी प्रतिक्रमण के पाँचवें सूत्र में किया गया है। सक्षेप में उसका रहस्य नीचे दिया जा रहा है :–

"नमो चउवीसाए तित्थयराण, उसभाइमहावीर-पज्जवसाणाण, इणमेव निग्गंथ पावयणं सच्चं, अणुत्तरं, केवलिय, पडीपुन्न, नेयाउय, संसुद्ध, सल्लगत्तण, सिद्धि मग्ग, मुत्तिमग्ग, निज्जाणमग्गं, निव्वाणमग्गं अवितहम-विसंधि सव्वदुक्खप्पहीणमग्ग, इत्थं ठिआ जीवा सिज्झंति बुज्झंति, मुच्चंति, परिनिव्वायति सव्वदुक्खाणमतं करेंति त धम्मं सद्दहामि, पत्तियामि, रोएमि फासेमि पालेमि अणुपालेमि

भावार्थ :– श्री० ऋषभदेव भगवान से लेकर महावीर भगवान तक के चौबीस जिनों की मैं पर्युपासना करता हूँ कि जिनके प्रवचन आगमरूप से प्रसृत हैं, वे निर्ग्रन्थ प्रवचन सही हैं, अनुत्तर हैं, केवली भाषित हैं, परिपूर्ण हैं। यही न्याय का मार्ग है विपरम शुद्ध हैं, शल्य के काटनेवाले हैं, सिद्धि के मार्गरूप हैं मुक्ति के मार्गरूप हैं, निर्वाण के मार्गरूप हैं। उनमें मेरी आत्मा का बिल्कुल संशय नहीं है। मुझे पूर्ण प्रतीति है कि सभी दुःखों से मुक्त बनानेकी महाशक्ति के ये स्वरूप हैं। उस धर्म में रहे हुए जीव सीझते हैं, बूझते हैं, कर्म से मुक्त होते हैं, और शीतल बन जाते हैं। उस धर्मकी मेरी आत्मा श्रद्धा करती है–प्रतीति करती है।

उपर्युक्त महत्त्व से पूर्ण पाठरूप

श्री विनोदकुमार का समस्त जीवन ।

बचपन से शालाकीय अभ्यास तो करते ही थे, पर मुख्यतः जैन पाठशाला में सूत्र पढ़नेकी, साधु–साध्वियों के शेषकाल चातुर्मासों में व्याख्यान सुननेकी परमासक्ति थी। साथ ही साथ पूर्ण परिचय करके विद्याभ्यास करना, नित्यनियमानुसार

सामायिक प्रतिक्रमण और अन्यान्य धर्मानुष्ठानों की सेवना करते रहना, जहाँ तक वन सके, तपस्या करना—इस रीति से छोटी उम्र से ही यह कुलदीपक पुरुष धर्मानुरागिता से अपनी आत्मा को ज्ञात कराता था।

समस्त गोंडल सम्प्रदाय के साधुओं और साध्वियों के बार बार दर्शन करने के लिए निकलते थे, और वहाँ जा कर ज्ञानाभ्यास की वृद्धि करते थे। शास्त्राभ्यास के लिए सुप्रसिद्ध राजकोट के डॉ. एन. के गाँधी का तो वहुत ही संपर्क किया था। गुरुके नाते उन्हें माननेवाली और विनयपूर्वक उनसे शास्त्राभ्यास करनेवाली महासतीजी श्री. झवेरवाई स्वामी और महासतीजी श्री. मीठीवाई स्वामी की ओर उनका वहुत अनुराग था। अेक समय कुछ दीक्षाभिलाषी वहनों के साथ महासतीजी श्री. झवेरवाई स्वामी के दर्शन करने गए थे, और उन्होंने विदुषी महासतीजी के व्याख्यान का वहुत ही लाभ उठाया था। महासतीजी श्री. समरतवाई स्वामी के पास से भी ज्ञान लेने के लिए प्रयास किया था। बोटाद संप्रदाय के पू. आचार्य श्री. १००८ माणेकचन्द्रजी महाराज की ओर उनका धर्मानुराग सुन्दर रीति से प्रवर्तमान था। मुनिजी के आगमप्रवचन श्री. विनोदकुमार को अतिप्रिय लागते थे। पतियाला की मेट्रीक की परीक्षा के वाद, लुधियाना (पंजाव) में मुनि श्री. १००८ आत्मारामजी महाराज अपने शिष्यगण के साथ विराजमान थे, उनके दर्शन करके व्याख्यान वाणी का भी लाभ लिया था।

एक वार वम्वई में संवत् २०११ के वर्ष में श्री. धर्मदासजी सम्प्रदाय के श्री. लालाचन्द्रजी महाराज का सत्संग हुआ। उस समय महाराजश्री चींचपोकली में शिष्यगण के साथ विराजमान थे। श्री. लालचन्द्रजी महाराज उत्तम कोटि के साधु थे। उनके समस्त

कुटुंबने दीक्षा का अंगीकार किया था। एक स्वय, तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ इस प्रकार छः भव्य आत्माओंने संयम अंगीकृत किया था। वे समस्त जीवन ज्ञानाभ्यास में बीताने की तमन्नावाले थे। अन्तमें खीचन (राजस्थान) में ये महापुरुष, अपने तीन शिष्यों के साथ शास्त्र के प्रखर अभ्यासी श्री समरथमलजी महाराज के पास अभ्यास करने के लिए गए थ। इससे सिद्ध होता है कि इन मुनिका आहार व्यवहार आगमों के पूरे कायदों के अनुसार ही होना चाहिए। क्योंकि पू श्री समरथमलजी महाराज की आत्मा का स्वरूप भी सुयगडांगजी सूत्र में परिज्ञाका स्वरूप बताया है उसके न्याय से इस विषम काल में जरूर आगमविहारी है। और भी स्थानकवासी, सम्प्रदाय में वे उच्च कक्षा में हैं।

बम्बई में इन योगी पुरुष के सत्सग के परिणाम स उनके स्वभावगत आकर्षण स भी विनोदकुमार को आकर्षित किया और धर्मस्नेह की गाठ इस तरह सम्पन्न हुई कि, श्री विनोदकुमार के दीक्षा के भाव उत्तरोत्तर बढते ही चले। एतत्सम्बन्धी ज्यादा हकीकत, आगे के प्रकरण में दी जाएगी।

प्रखर निश्चयी पुरुष।

उपर्युक्त जीवन सचमुच ही वेनोद माना जा सकता है।

गाथा :— सुत्तेसु यावी पडिबुद्ध जीवी,
न वीससे पंडिए आसुपन्ने
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं,
भारंडपक्खी व चरेऽपमत्तो ॥

भावार्थ — द्रव्यनिद्रा की साथी हुई, पर भावनिद्राकी जाग्रत् आत्मा, जो 'असखयं जीविय मा पमायए' मत्र की आराधक हो, वह पडित कहलाने योग्य है। (पडित विनोदकुमार) ऐसे पण्डित जीव, क्षणिक आयु का जरा भी विश्वास नहीं करते हैं, और आत्मा को एक पल भी धर्म से वंचित नहीं रहने देते, व सिद्ध गामी

कहे जाते हैं। (श्री विनोदकुमार सिद्धज्ञानी) ऐसे पंडितों और सिद्धज्ञानियों को संपूर्ण ज्ञान है कि मरणकाल एक घोर मुहूर्त है, कि जब जीवन रहित शरीर बन जाता है। (मरणकाल सिद्ध करता है कि जीवन और शरीर अलग अलग हैं) अतः पंडित लोग मरण-पर्यन्त भारण्ड पक्षी के दृष्टान्त से पाप से शंकित होकर सदा अप्रमत्त दशा में प्रवर्तमान होते हैं। श्री विनोदकुमार का विचरण, इस लोक में बिल्कुल पाप से शंकित था; उस के समर्थन में, इस अध्ययन में दर्शित भारंड पक्षी का दृष्टान्त अतीव योग्य है। वह निम्नलिखित है।

जिस प्रकार भारंड पक्षी (यह पक्षी मनुष्यलोक से बाहर है) जब अपने स्थान से निकलकर आकाश की ओर उड़ता है, तब यह चतुर पक्षी दशों दिशाओं में अवलोकन करके बाहर निकलता है कि जिससे शिकारियों का भोग न बनना पड़े, उस प्रकार पंडित लोग कभी दुःखपूर्ण मृत्यु से नहीं मरते।

प्र० सच्चा सुखी कौन है?

उ० हसते मुँह से सुखसमाधि से मरण को भेंटता है, वही सच्चा सुखी है।

श्री विनोदकुमारने छोटी सी चौदह वर्ष की आयु में विदेशगमन किया; पर विदेश में या वतन में आकर इस आध्यात्मिक पुरुष ने धर्म को एक पल भी विस्मृत नहीं किया। इतना ही नहीं, पर योरप की असाधारण शीत में मामूली कपड़े हमेशा नियमानुसार धारण करके आवश्यक क्रियाएँ कीं। प्रमाणपत्र इसका श्री दोलतभाई द्वारा कथित, आगे कहा जायगा।

अन्तिम जीवन में जैन धर्म के साधु के लिए निश्चित, कठिन बाईस परिषह हैं—कि जो परिषह अग्निपरीक्षा स्वरूप हैं—वे जीतने लगे; और कर्मों का पराजय कर, दीक्षा के लिए सभी तैयारियां करने लगे। संसार के मोह में फँसे हुए मातापिता, इन परम-

पुरुष के आत्मअध्यवसायों को पहचान न पाये। कहाँ से वे समझ भी सकते थे। श्री विनोदकुमार की आत्मा सपूर्ण शुद्ध थी, और मातापिता का क्राष्ट शुभ का पर था। इस अन्तर को जाँचने के लिए लेखक पाठकगण स अनुरोध करता है कि, छदशांग न्याय का, छेदग्रस्वरूप 'दशाश्रुतस्कन्ध' नामका ग्रन्थ है, उसे सूक्ष्मदृष्टि से देखकर पाठकगण निणय करें। क्यों कि नियाणा के अधिकार से इस महान् ग्रन्थ के दशमस्कन्ध म जगत में अद्वितर्णरूप श्री श्रमण भगवत महावीर का अपन शिष्यगण स उपदश है; और यह उपदेश चारों तीर्थों को समझ लेने योग्य है, कि जिस में अपनी आत्मा का दर्शन होता है। भगवान का यह बोध दर्पण–आदर्श–रूप है। दर्पण में जैसा पदार्थ हो, वैसा ही दीख पड़ता है।

अन्त में तीसरी यात्रा खत्म करके वतन में आए। बाद में आज्ञाव्यवहार को अधीन रहकर मातापिता के समक्ष दीक्षा की आज्ञा प्राप्त करने के लिए अनेक प्रयत्न किए; पर मातापिता ने मोहावेश में ध्यान नहीं दिया। वे कहाँ से ध्यान दे सकते थे? वे असाधारण ऋद्धिसिद्धि के मोह में संसारसुखों का आस्वादन करने में मग्न थे। अतः उन्हें तो श्री विनोदकुमार दीक्षा लेने स पहले प्राप्त ऋद्धिसिद्धि का आस्वादन करने के बाद दीक्षा लें, ऐसी भावना हो सकती थी। संसार का धर्म यही है। अतः विनोदकुमार के अनुराध के उत्तर में पिताजी का यही कहना स्वाभाविक था कि, अभी दीक्षा का समय आया नहीं है भाई, धर्माभ्यास किया करो। इस प्रकार बार बार मनाही उन्हें सुननी पड़ी, परन्तु श्री विनोदकुमार की आत्मा तो दीक्षा की ओर प्रयाण कर रही थी। घटना घटने की ही थी। भावि की प्रबलता के आगे किसीका भी बल नहीं चलता। अतः श्री आचारांगसूत्र में भगवान आदेश करते हैं कि,

"दीक्षा लेने तैयार होनेवाले को मातापिता की आज्ञा प्राप्त करनी मुश्किल होती है; पर वैरागी वैराग्य से विचलित नहीं होता। वैराग्य की ओर सतत आकर्षण।

श्री विनोदकुमार को उपर्युक्त प्रकार से सत्संग के सिवा कोई भी चीज प्रिय नही थी। अतः साधु सन्तों के दर्शन तो उनका प्रधान कर्तव्य बना था।

एक समय पिताजी समस्त कुटुम्ब के साथ, बोटाद सम्प्रदाय के पू. महाराज साहब १००८ श्री माणेकचन्दजी महाराज, पालियाद में अपने शिष्यगण के साथ विराजमान थे, उन के दर्शन के लिए गए। तब श्री विनोदकुमार पिताजी के साथ थे। और होना ही चाहिए उन्हें। इस प्रसग पर इस परमवैरागी आत्मा को, इन महावैरागी महात्मा की अपूर्व वाणी सुनने का लाभ प्राप्त हुआ। वाणीश्रवण के साथ सातवें अप्रमत्त संयति गुणस्थान को स्पृष्ट हो गए।

कुटुम्बने वापिस राजकोट आने की तैयारी की, तब श्री विनोदकुमारने मातापिता से अनुरोध किया कि, मुझे तो इन महामुनि की सेवा में ही रहना है, आप सब आनन्द से लौट सकते हैं। परन्तु मातापिता इस भेद को नहीं समझ पाए; और श्री विनोदकुमार से आग्रह किया कि, तुम्हें हमारे साथ ही आना चाहिए।

संसार की ओर उदासीन दृष्टिसे मातापिता के आग्रह को स्वाधीन वे हो गए, और समस्त कुटुम्ब वापिस राजकोट आ गया। उस समय, श्री विनोदकुमार की वय केवल चौदह साल की थी। इस अप्रमत्त संयति गुणस्थान के भाव समझने के लिए पाठकगण के पास, गुणस्थानद्वार की श्रेणी की आभास लेखक पेश करता है। क्यों कि ये गुणस्थान, इस ग्रन्थ के प्राणस्वरूप हैं।

द्वादशांग, अनेक चमत्कृतियों से पूर्ण महारसमय शास्त्र हैं। कालप्रभाव से जैसे सूर्य के आगे बादल छा जाते हैं, उस प्रकार

इन महासूत्रों का ज्ञान विषम काल के बहुकर्मी जीवों को प्राप्त होने में अनेक अन्तराय खड़े हुए हैं। ऐसे द्वादशांगों की अनेक चमत्कृतियों में से जीवों के कोठे बताता हुआ यानी (स्टेजिज़ STAGES) अवस्था मत बताता एक महतत्वरूप ज्ञान है। उसे गुणस्थानक कहा गया है।

द्वादशांगों में से सुनकर कृपालु आचार्योंने मुमुक्षुओं को प्रसादी रूप में ज्ञान दिया है। जिस ज्ञान को 'चौदह गुणस्थान' कहा जाता है।

द्वादशांग, लोकों का स्वरूप, अनादि, अनन्त शाश्वत न्याय से प्रकाश में लाते हैं, और इस से लोकरचना दो भदों से समझने में आती है – (१) सिद्धलोक, (२) संसारलोक।

संसारलोक का हमेशा विषय कषाय अग्निरूप प्रज्वलन; जब सिद्धलोक का स्वरूप सदा परम शान्ति के अनुभव स्वरूप।

ऐसे लोक के स्वरूप को समझने के लिए इन चौदह गुण स्थानों का ज्ञान बहुत मूल्यवान है। अतः लेखक संक्षेप में निरूपण करता है।

चौदह गुणस्थानों में से प्रथम गुणस्थान को मिथ्यात्व गुण स्थान कहा गया है। संसार के सदैव रहनेवाले अनादि अनन्त भाव को सिद्ध करनेवाला यह गुणस्थानक है। उसका लक्षण प्रश्नोत्तरी खड़ी करके द्वादशांग प्रकाश में लाते हैं। वह निम्नरूप से है।

शिष्य पूछता है कि–'हे भगवान्। प्रथम मिथ्यात्व गुण स्थानक का लक्षण क्या है?

उत्तर में श्री भगवान फरमाते हैं कि, हे शिष्य। श्री वीतराग देव की वाणी से कम–अधिक, विपरीत श्रद्धा रखने को मिथ्यात्व कह सकते हैं।

इस प्रश्नोत्तरी में ही द्वादशांगों की अविसंवादता शामिल है। प्रश्नोत्तरी सिद्ध करती है कि, द्वादशांग शुद्ध न्यायस्वरूप हैं।

मिथ्यात को गुणस्थान सम्बोधन दिया गया है. अतः यह सिद्ध होता है कि, मिथ्यात यानी असत्य – ऐसा अर्थ नहीं हो सकता। तात्पर्य यह है कि, मिथ्यात शब्द अपमानजनक नहीं है, परन्तु तत्त्व को स्पर्श करता हुआ शब्द है। उसका सबल कारण यह है कि, यह संसार रचना गुणदृष्टि के घरमें, "जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि" रूप से निर्भर है, और वह स्थायी है। एक पक्ष, अपने प्रतिपक्ष को अपनी दृष्टि से उल्टी दिशा में खडा हुआ देखता है। मिथ्यात शब्द को दूसरा 'पाखण्डी' सम्बोधन है। सभी अपने अपने न्याय से प्रतिपक्ष को मिथ्यात्ववादी या पाखण्डी ही कहते हैं। इसका शुद्ध-न्याय निरंजन निराकार भगवान के स्वरूप में स्थित है। अर्थात् रागद्वेषरहित श्री वीतराग भाव में सत्य की पहचान है।

सांसारिक जीवों का स्वरूप सदा अपूर्ण है, भाषा नययुक्त है। अर्थात् कहने के साथ दो पक्ष आ ही जाते हैं

शब्द संख्याता हैं। और ज्ञान घर अनन्त है। ऐसे संयोगों के बीच संसार के ऐसे स्वरुप को पहचानने में कभी ही कुछ ही आत्माओं को सफलता मिलती है।

ज्ञानी लोग संसार के विषम स्वरूप को भी दोष की दृष्टि से देखने के लिए तैयार नहीं है। वे मानते हैं कि, ऐसा मिथ्यात लोक होना ही चाहिए, जिस के निमित्त से ज्ञान करके करके जीव सिद्धि को प्राप्त करते हैं।

इस प्रथम मिथ्यात गुणस्थानक की व्याख्या करते हुए आगम बताते हैं कि जहाँतक जीव को परा दशा प्राप्त नहीं होती; वहाँ तक ज्ञान तरतम भावसे ही रहेगा। अर्थात् अवस्थाभेद से ही रहेगा। कम–अधिकता को तो स्पर्श किया ही करेगा। अतः अनन्त संसार में पर्यटन करानेवाली विपरीत प्ररूपणा ही है। जैसे कोई अगर कहे कि, पंचभूतों से आत्मा उत्पन्न हुई है, उनके विनाश से जीव भी नष्ट होता है, जड़ से चैतन्य की उत्पत्ति या विनाश हो,

उस मन्तव्य को विपरीतमरूपणा कर सकते हैं। इस प्रकार नवों तत्त्व यानी, जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध मोक्ष की विपरीतता का ही मिथ्यात्व कह सकते हैं।

ऐसे विपरीतभाषी जीवों का भाषालक्षण :–

यह लोक नहीं है परलोक नहीं है, खाओ, पीओ, मजा उड़ा लो, यह मत अच्छा है, पर मत किसने देखा है?–इस मिथ्यात्व गुणस्थानक की व्याख्या से निश्चित होता है कि–मिथ्यात्व का पहचानना जरूरी है। अतः द्वादशांग, "स्वमत"को जानकर, जगत के सभी मतों को जाननेका अधिकार देता है। परमत को स्पष्ट करनेका अधिकार नहीं देता। क्यों कि द्वादशांग में, परमत के ज्ञान का शामिल करने में आया है।

द्वादशांगों की संपूर्णताको सिद्ध करता हुआ एक ही दृष्टान्त पर्याप्त है। द्वादशांग न्याय से आत्मा अकृत्रिम, अखंड, नित्य और अविनाशी है। शरीर मात्र व्यापक है। तात्पर्य कि, यदि कोइ कहे कि–संसारी आत्मा कितनी?, तो निर्भयता से उत्तर देना चाहिए कि–शरीरपरिणामी!

इस प्रकार प्रथम गुणस्थान स्वरूप संपूर्ण हुआ कि–जिसका सदा स्वरूप 'संसरतीति संसार' ऐसा है।

"सदा अनादि अनन्त संसार का स्वरूप वह खुद ही मिथ्यात्व गुणस्थानक है" यह और तृतीयातिरिक्त बारह गुणस्थानों को प्रतिपन्ने सम्यक्त्व गुणस्थान में शामिल किया है। उन बारह में से दूसरा स्थान उन्नति के लिए दूसरा नहीं है, पर पड़कर गिरने की अपेक्षा से दूसरी भूमिकारूप है।

तीसरा गुणस्थानक सम्यक्त्व का दर्शन करता है। सम्यक्त्व का स्पर्श नहीं होता। इन दो गुणस्थानों में जीवों की दशा मोक्ष गमन की प्रतीति से युक्त होनेपर भी बहुकाल तक जन्म मरण करने के बाद ही अवश्य मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है।

दूसरे गुणस्थान (उपर्युक्त) के लक्षण निम्नलिखित हैं :—

दूसरे गुणस्थानक का नाम 'सास्वादान गुणस्थानक' है, क्यों कि उस गुणस्थानक का लक्षण समकित वमन कारक जीवों की पहचान करानेवाला है। क्यों कि अनेक जीव सम्यक्त्व प्राप्त कर के भी मोह में फँसकर समकित रूपी रत्न गँवा देते हैं। उसके लिए नीचेका दृष्टान्त अनुरूप है :—

जीवरूप आम का पेड़ है, परिणामरूप शाखा है, समकितरूप फल मोहरूपी वायु से टूटा। मिथ्यात्वरूप धरती में आया नहीं है—अभी बीचमें है, वहाँ तक सास्वादान अर्थात् दूसरा गुणस्थान। आ पड़ा अर्थात् मिथ्यात—प्रथम गुणस्थान।

तीसरा मिश्र गुणस्थान श्रीखण्ड के दृष्टान्त से स्पष्ट होता है। श्रीखण्ड खट्टा और मीठा होता है। संसार प्रियता खट्टापन है और धर्मप्रियता मीठापन है।

चौथे गुणस्थानक का नाम 'अविरति सम्यग्दृष्टि' है। अर्थात् धर्म का रंग हड्डी—हड्डी में लगा हुआ होनेपर भी पूर्व कर्म के उदय के बल से, छोटे से छोटे धर्मकार्य को भी नहीं कर सकता है, ऐसा जीव समक्ति पर्याय अगर न टूटे, तो उत्कृष्ट पंद्रह भवों में मोक्ष प्राप्त कर लेता है, और देवलोक की गति की ओर जाता है।

पाँचवाँ देशविरति गुणस्थानक है। अर्थात् वह श्रावक का गुणस्थानक है। उस गुणस्थान में संसार में श्री विनोदकुमार का विचरण था। एक प्रत्याख्यानसे लेकर श्रावक के बारह व्रत, श्रावक की ग्यारह पडिमाएँ यावत्संलेखणा सहित जो आराधन करता है, उसकी गति अवश्य ही देवलोक की होती है।

गुणस्थान की श्रेणी रचना ऐसी है कि पाँचवें से छठे गुणस्थान में नहीं जाया जा सकता। अर्थात् सातवें गुणस्थानक में स्पृष्ट हुए बिना छठे गुणस्थानक में प्रवर्तनरूप साधुत्व अंगीकृत नहीं किया जा सकता। अतः सातवें गुणस्थानक का कि जिसका नाम अप्रमत्तसंयति गुणस्थानक है, प्रथमतः लक्षण दिया जाता है।

पाँच प्रमाद – मद, विषय, कषाय, निद्रा, विकथा–इन पाँच प्रमादों से रहित अवस्था को 'अप्रमत्त संयति' सम्बोधन है। (श्री विनोदकुमार के जीवन में इस गुणस्थान का बहुत अनुभव होता है।)

छठे गुणस्थानक को साधुवेष के साथ सम्बन्ध है। बाकी के आठ से लेकर चौदह गुणस्थान, वर्तमान विषम युग में प्राप्त नहीं हो सकते। उनका वर्णन गुरुगम से जानना जरूरी है; क्यों कि उपर्युक्त गुणस्थानों को प्राप्त करने के लिए इस काल में शरीर सपत्ति नहीं है।

उपर्युक्त सातवें गुणस्थान के न्याय से श्री विनोदकुमार, पू० श्री माणेकचन्द्रजी महाराज का बोध सुनकर, उत्कृष्ट वैराग्य में आए। उपर्युक्त सात गुणस्थानों के बाहर आकर आठवें गुणस्थानक का स्पर्श करने के लिए अनन्त सिद्धिबल होना जरूरी है। पहले तो वज्रऋषभनाराचसंघयण का स्वामी हो, वही इस गुणस्थान को प्राप्त कर सकता है। (आठवें से चौदहवें गुणस्थान तक चन्द्रमा के प्रकाश जैसा शुक्ल ध्यान महत्त्व है) ऐसा उत्तम आठवाँ गुणस्थानक, सातवें गुणस्थान में धर्मध्यान में मस्त पुरुष ही पा सकता है कि जहाँ तीव्र वैराग्य की दशा में जीव ने रमणता की हो। जिन जीवों ने पूर्वभवमें बारबार वैराग्य में मगन होकर बाह्य–आभ्यन्तर तप से आत्मा का बहुत हीनकर्मी बनाया हो, ऐसे जीव ही आठवें, गुणस्थानक का स्पर्श कर सकते हैं। इस आठवें गुणस्थान को ऊपर के गुणस्थानों का निकटका सम्बन्ध है। अत: आठवें से चौदहवें गुणस्थान की समझ के लिए यथातथ्य व्याख्याएँ लेखक पेश करता है।

आठवा गुणस्थान :– यथा नाम तथा गुणरूप इस गुणस्थान के दो नाम हैं। 'नियट्टिबादर' यानी निवृत्त है बादर कषाय से (सूक्ष्म कषायका किला भिन्न नहीं हुआ है) बादर संपराय क्रिया से (अर्थात् मोक्षमार्ग के आवरणरूप कर्म पुद्गलों

के बादर स्वरूप को भेदने की क्रिया) हेतुको अन्तर में रख-कर श्रेणी कराए यानी आत्मा को विचार के घर में प्रविष्ट करा के आभ्यान्तर तप से आत्मा को स्थिर कर के बादर का चपलता से निवृत्त होना–उसे 'नियट्टिबादर गुणस्थानक' कहा गया है। परन्तु, सूक्ष्म किलेका भवन होगा या नहीं–वह अभी आशंका ही है। अतः यह नियट्टिबादर गुणस्थानक का स्वरूप उन्नतिअवनति का आश्रित है।

इस गुणस्थान का दूसरा नाम अपूर्वकरण गुणस्थान है। उसका अर्थ यह होता है कि, आगे के अनन्तकालमें किसी भी समय पर जीव का उदय नहीं हुआ था, ऐसा पडितवीर्य का आवरण–क्षय–करणरूप ही करण परिणामधारा वर्धनरूप श्रेणी करता है। जैसे :– चक्रवर्ती महाराज सुखपूर्वक छः खण्डों की प्राप्ति कर सकते हैं, उनके सामने कोई कुछ नहीं कर सकता। चौदह महारत्नों से दुश्मन का पराजय करते हैं इस तरह क्षायक समक्तिरूप दिव्य खड्ग से उत्तरोत्तर गुणस्थानों को चढ़-नेकी महाशक्ति प्राप्त कर के नवें और दशवें गुणस्थान में, मोहराजाको कैद करके बारहवें गुणस्थान में ले जाकर, सर्वथा पराजय करके, तेरहवें गुणस्थान के प्रथम समय में आत्मा का केवलज्ञान, केवलदर्शनस्वरूप बनना, और धर्मध्वजाका लहराना ही यह गुणस्थान है।

इस अपूर्वकरण गुणस्थान का स्वरूप ही 'शाश्वत जय'। इस प्रकार दो नामका कारण अब सरलता से समझा जा सकता है कि, दो प्रकार के जीवों का इस गुणस्थानमें प्रवेश है।

कुछ जीव बाहर से रागादि के ऊपर की जय तो प्राप्त कर सकते हैं; परन्तु अन्तर की माया और वेद की पीड़ा का उपशमन करते हैं, नाश नहीं कर सकते। अर्थात् विषय भोगने की आग आच्छन्न हो जाती है, नष्ट नहीं होती। ऐसे जीवों के लिए नियट्टिबादर

गुणस्थान सम्बाधित किया गया है। जैसे सीढ़ी के दो प्रकार होते हैं, एक कोयला उठाया जाता है, और एक छाटी से हीरा उठाया जा सकता है। उसे 'समानी' कहते हैं। इस नियम के अनुसार 'नियट्टिबादर गुणस्थान' कोयला उठाने का साधन है, और अपूर्व करण गुणस्थान हीरा उठाने का साधन है।

विशेष स्पष्टीकरण

कर्मराशि के दो प्रकार हैं:-(१) बादर कर्म राशि, (२) सूक्ष्म कर्म राशि। बादर कर्म राशि के ऊपर तो उपशम समकित से जय प्राप्त की जा सकती है कि जिस स्थिति का 'नियट्टिबादर' गुणस्थान सम्बाधन है। परन्तु सूक्ष्म कर्म राशि के ऊपर जय प्राप्त करने के लिए कषाय समकितरूप खड्ग अवश्य होना चाहिए।

कुछ जीव आठवें गुणस्थानक की धर्मकी लड़ाई में शस्त्र को कची सजावट के परिणाम से एक कदम भी आगे नहीं चल सकते, और कर्मनीति की सभी मेहनत निष्फल बना कर, फिर से सातवें या छठे गुणस्थान में नीचे उतार देते हैं, और कोई सतेज समकितरूप हथियार से नवें-दसवें गुणस्थान पर पहुँचता है। अब यदि सूक्ष्म का किला भिन्न न हो तो कर्म उसे वापिस हटाकर नीचे के गुणस्थान के ऊपर रख देते हैं। परन्तु राग के ऊपर जय प्राप्त करने की पूरी शक्ति धारण करा जाता है, पर अन्तर में से विषयकषाय की सूक्ष्म रूपसे रही हुई आग बूझ नहीं गई होती, अतः मोक्ष प्राप्त हो, ऐसा बारहवाँ गुणस्थान पकड़ नहीं सकते; परन्तु ग्यारहवाँ वीतरागगुणस्थान जरूर पकड़ सकते हैं कि जहां से मोक्षका मार्ग मिल नहीं सकता। अब यदि शुभ कर्मों के उदय में आयु पूर्ण हो जाय, तो अनुत्तर देवगति प्राप्त हो जाती है, और तीसरे भव में मोक्ष हो, ऐसा झीलरूप यसियवनामा प्राप्त कर लेता है। ग्यारहवाँ गुणस्थान प्राप्त करने में उपशम श्रेणी

का आलम्बन लिया हुआ होता है। अगर उस गुणस्थान में से गिरकर आठवें गुणस्थान पर जा कर कषायभाव का प्रयत्न करे, तो उपशम भावमें से परिवर्तन होकर आत्मा का स्वरूप क्षायकभावरूप वन जाय तो फिरसे चढ़ते चढ़ते दशवें गुणस्थान पर आकर वाहरवें गुणस्थान को पकड लेता है। किन्तु यदि उपशम भावरूप ही आत्मा रहे तो दशवें गुणस्थानमें सूक्ष्म लोभ का उदय होता है। शरीर के ऊपर ममत्व होता है, और अन्त में गिरते गिरते विषयकषायरूप आग प्रकट होती है। इस प्रकार सूक्ष्म लोभरूप एक स्फुल्लिंग दावानलरूप वन जाता है, और कर्म, सभी मेहनत को धूल में मिला देते हैं। वह भी यहाँ तक कि सीधे ही जीव प्रथम गुणस्थानमें चला जाता है। विषमकाल में फल ऊंची श्रेणी में से भी जीवको नीचे गिराकर सभी ऋद्धि बलात् लेकर जीवका केवल कंगाल स्वरूप वना देता है ऐसे विषयकषाय के खराब फल को कौन समझा? श्री वीराणी कुटुंब का वीर विनोदकुमार, कि जिसने मुनिव्रत धारण करके आत्मा का कल्याण कर लिया।

उपर्युक्त सिद्धान्त को सिद्ध करता हुआ श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र का तेरहवाँ अध्ययन चित्तसंभूति का है, वह इस तत्त्व को समझाने में अति सहायभूत है। ब्रह्मदत्त अपने पूर्वभव के मित्र चित्त को सम्बोधित करके कहता है कि, हमने आगे पाँच भवों में अनुरक्त भाव से एक दूसरे में परिणत होकर भव किये हैं। प्रथम भवमें दशान देश के राजाके दास रूप से हम दोनों भाई थे। वहाँ से च्युत होकर हम दोनों स्नेह की ग्रन्थि से पूर्णतया जुडे हुए कालींजर पर्वत में मृगरूप में थे। वहाँ से स्नेह बढ़ने से गंगा नदी के किनारे हम दोनों हंस रूप में थे। चौथे भव में हम एक जीवभाव रूप से काशीभूमि में—वाराणसी नगरी में—अंत्यज के कुल में उत्पन्न हुए। वहाँ हमें उत्तम प्रकार के साधुओं का योग हुआ। धर्मश्रवण कर प्रव्रज्या धारण कर, यथातथ्य

संयमपालन किया; और मरण समय में 'संथारा' किया। अन्त घड़ी में, हम लोगों के दर्शनार्थ चक्रवर्ती और उनकी पटरानी रत्न, महावैभव के साथ आई। हे चित्त! उस समय इस जोड़ी के उत्कृष्ट सुख के दर्शन से मेरी आत्मा आकर्षित हुई। मैं अपने मुख से इस सुख की प्रशंसा करने लगा। ऐसे निदानरूप भावों को देखकर तूने मुझे प्रायश्चित्त करने के लिए बहुत आग्रह किया; परन्तु मैंने माना नहीं, और संसार के चक्रवर्तित्व के सुख के लोभ में, मैं कालधर्म को प्राप्त हुआ। उसी समय तू भी निर्लेपता से कालधर्म को प्राप्त हुआ। हम दोनों देवलोक में महाऋद्धि के स्वामी देव हुए। इस प्रकार अनुरक्त भाव से हम दोनों के पाँच भव हुए, और इस छठे भव में हम अलग हुए हैं।

मैंने साधुता में कठिन तप किया था, उस के फल में निदान कर के एक काच के टुकड़े के बदले में अमूल्य रत्न रूप तप में हार गया, और इस कारण से मैं इस भव में संसार छोड़कर प्रव्रज्या धारण करने के लिए बिल्कुल असक्त हूँ। पूर्वभव के मित्र चित्तने इस चक्रवर्ती को बहुत समझाया। यहाँ तक कि, "अन्ततः तू शराब और मांस का त्याग कर तब भी तू देवलोक की गति को प्राप्त होगा।" यह महाऋद्धिमान् चक्रवर्ती यह भी नहीं कर सका। और चक्रवर्तिता के अनुपम सुख भोग कर, महापुरुष के रूप में सातवीं नरकयातना के 'अपईठाण' नरकवास में भव तीस सागार की स्थिति में उत्पन्न हुआ। बिन्दु के सुख से सिन्धु का सुख लुटा गया, और चित्त अनुपम चारित्र्य का पालन कर के सिद्ध गति को प्राप्त हुए।

यह उत्तम प्रकार का कथानुयोग गुणस्थानद्वार को समझने में बहुत मूल्यवान है। ब्रह्मदत्तने निदान कर, आत्मा का अहित किया, और चित्त का समकित चालू रहा, उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणी का कोष्ठ इस रीति से समझने लायक है अतः भगवान्,

श्री आचारांगजी सूत्र में कहते हैं कि जहाँ जहाँ आसक्ति होती है, वहाँ वहाँ कर्म वन्ध होते हैं।

उपशमश्रेणी यानी जिस प्रकार रोगी को रोग उपशान्त करने में औषध आधाररूप है, उस प्रकार आठवें गुणस्थान को उपाशमश्रेणी में प्रवेश करने के लिए शुभकर्म का आधार है, जो आलम्वन अन्तःकरण में रही हुई विषयकषायरूप आग का छीपना है। जब अपूर्वकरण की स्थिति में आठवें गुणस्थान में आत्मा, विना आलम्वन से, अनन्त पुरुषार्थ प्राप्त कर क्षायकसमक्तिरूप खड्ग से कर्म का पराजय करती है।

अब नवाँ अनियट्टिवादर' गुणस्थान है। इसका लक्षण, क्षपक श्रेणीन्याय से निर्विकार, अमायी, अविषयी, निर्वांछा स्व-रूप से है। जव उपश्रमश्रेणी न्याय से अब वादरका क़िला भी विजित नहीं हुआ है।

दशवें गुणस्थान का नाम 'सूक्ष्म संपराय' गुणस्थान है। वह चारित्र गुणस्थान है। इस गुणस्थान का कार्य श्रेणी में रहे हुए जीव को मार्गदर्शन देनेका है। उपशमश्रेणी वाले जीव को, ग्यारहवें गुणस्थानका मार्ग वताता है, कि जहाँ से मोक्ष की ओर जाने का रास्ता नहीं है, और क्षपकश्रेणी वाली आत्मा को वारहवें गुणस्थान का मार्ग बताता है कि, जहाँ पराजय कभी नहीं होता। अर्थात् अवश्य केवलज्ञान प्राप्ति। सूक्ष्म संपराय का अर्थ यह है कि, विल्कुल थोड़ा संसार बाकी है।

ग्यारहवें गुणस्थान का नाम 'उपशांतमोह' गुणस्थान है। लक्षण उसका यह है कि, मोह की सर्व प्रकृति का उपशम करके ही यह गुणस्थान प्राप्त किया जा सकता है। "भस्मान्च्छन्न अग्निवत्"—ऐसे इस गुणस्थान की विशेष समझावट, आठवे गुण-स्थान की श्रेणी के योजन में समझाने में आयी है।

बारहवें गुणस्थान का नाम 'क्षीणमोह' गुणस्थान है; यानी मोह का नाश किया है, और अन्तर्मुहूर्त काल में अनन्त पराक्रमी आत्मा, बाकी के तीन घाती कर्मों का बिल्कुल नाश करके तेरहवें गुणस्थान के प्रथम समय में ही केवलज्ञान, केवलदर्शन की ज्योतिरूप बन जाता है।

तेरहवें गुणस्थान का नाम 'सयोगी केवली' गुणस्थान है। अर्थात् इस मनुष्यलोक में आयु के अन्त तक केवली भगवान् स्वरूप से प्रवर्तमान रहना।

सयोगी केवली गुणस्थान किसे कहा जाय ?

मन, वचन और शरीर के शुभयोग सहित हैं; बाह्य चला पकरण हैं; गमनागमनादि क्रियाएँ शुभचेष्टा सहित हैं; केवल ज्ञान और केवल दर्शन का उपयोग समय अन्तर अविच्छिन्न सासे शुभ प्रणत होता है, अतः 'संयोगी केवली' कहा जाता है।

परमार्थ–

इस गुणस्थान के भाव अन्तरमें उतारने के लिए अत्यन्त अभ्यासी जीवन की आवश्यकता है। नाम, गोत्र कर्म के स्वरूप का अच्छा जानकार, समझ सकता है कि, केवलज्ञान प्राप्त करने के बाद विचरनेवाले महर्षियों की सभी क्रियाएँ सहज स्वरूप से रहती हैं।

जिस प्रकार चक्रवर्ती का चक्ररत्न, आगे चलता है, उस प्रकार नाम, गोत्र कर्म, केवली भगवान को विचरण करने में स्वभावगत सानुकूल बन जाते हैं कि जिन कर्मों का सम्बन्ध शरीर के साथ है, और शरीर का सम्बन्ध, वेदनीय और आयुकर्मों के साथ है।

चौदहवाँ अयोगी केवली' गुणस्थान है। यह गुणस्थान, जीवकी सिद्धगति होनेका आश्रयभूत है। गुणस्थान की भव्य रचना, उत्तम भक्तिरस स्वरूपमें है। इस ग्रन्थ की आराधना

में आत्मा को महागुण की प्राप्ति होती है। पाठक गण को इस चौदहवें गुणस्थान के स्वरूप को समझने के लिए आधुनिक ज्ञान-सागरका या तो पुराने छपे, या हस्तलिखित ग्रन्थों का अभ्यास करना चाहिए।

अयोगी यानी मन, वचन और शरीर के योगरहित केवल ज्ञान सहित हैं। मुक्तिगमन के एक समय को अनन्तर सिद्ध कह सकते हैं, जिस समय को केवल ज्ञान के साथ सम्बन्ध है, और 'सिद्ध' में प्रणत होने के दूसरे समय को परम्परासिद्ध कह सकते हैं, कि जिसको केवलदर्शन के साथ सम्बन्ध है। इस प्रकार दूसरे समय से लेकर गत अनन्त काल के सिद्ध को परम्पम्परा सिद्ध कह सकते हैं।

श्री विनोदकुमार के उत्तम वैराग्य के सम्बन्धमें श्री दोलतभाई का प्रमाणपत्र।

इस प्रमाणपत्र को श्री विनोदकुमार की आफ्रिका पोर्टसुदानकी प्रथम यात्रा के साथ सम्बन्ध है। जब कि बाल्यावस्था ही थी। और श्री दोलत भाई के साथ यात्रा की शुरूआत हुई थी।

सन् १९५१ का वर्ष है। राजकोट से आफ्रिका जाने के लिए दोनों बम्बई आते हैं। स्टीमर खुलनेकी देरी थी। अतः मौके का लाभ लेने के लिए दोलत भाई और विनोद भाई माथेरान की सहेलगाह करने के लिए गए। वहाँ इस पुण्यवान जीव को मराठा कॉलेजियनों की भेंट हुई। ये कॉलेजियन घुड़सवारी में प्रवीण थे, और उत्पादित वुद्धि के स्वामी श्री विनोदकुमार भाई भी घुड़सवारी जानते थे, अतः समान मित्रों के साथ घुड़सवारी का संपर्क हुआ। कॉलेजवालों को श्री विनोदकुमार भाई का स्वभाव बहुत पसन्द आया, और मराठा भाइयों को सौराष्ट्र के भूतपूर्व नौजवानों का परिचय हुआ। इस प्रकार सहेलगाह करके बम्बई आ गए।

ता. १५-८-'५१ के रोज स्टीमर 'जहाँगीर' में पोर्टसुदान

में जानेके लिए रवाना हुए। स्टीमर में भी धर्मक्रिया तो चालू ही थी। रात्रिभोजन का त्याग ही था। स्टीमर का टिकट WITH FOOD (खुराक के साथ) था, फिर भी मक्खन और कन्दमूल का लेश मात्र भी लिया नहीं था। क्यों कि उनका यह मत था कि, जहाँतक अतिक्रमण न आ जाय, वहाँतक तो अवश्य यह वस्तु त्याज्य माननी चाहिए। लम्बी यात्रा में खाने पीने का कष्ट भुगत कर क्षुधा परिषह के ऊपर जय प्राप्त किया।

श्री दामजीभाई के मुख से, श्री विनोदकुमारके उत्तम गुणोंकी तारीफ उल्लेखनीय है। उसे यहाँ लिखने में आनन्द होता है।

श्री विनोदकुमार सदैव सामायिक करते हुए रहते थे। उसे कभी छोड़ा नहीं था। फिल्म नाटक आदि स्थलोंमें कभी गए नहीं थे।

श्री विनोदकुमार भाई के परिचयमें आनेवाले हरएक व्यक्ति के ऊपर उनका धार्मिक प्रभाव पड़ता था। उनके पवित्र जीवन से सब कोई परिचयान्वित था। सभी उनकी प्रशंसा करते थे। और उनके जीवन को धन्यवाद देते थे।

उनके जीवन में गरीबों की सेवा और मूक प्राणियों की सेवा करने की अनुपम वृत्ति थी। मायरान गए थे, तब उनका संडास में पेशाब करने का प्रसंग आया, परन्तु पेशाब किए बिना तुरन्त प्रतिनिवृत्त हुए, अत शंका हुई कि ऐसा क्यों हुआ? यह प्रश्न मैंने पूछा, तब उत्तर मिला कि, संडासमें बहुत चींटियाँ हैं अत अब तो यह कार्य मायेरान जा कर ही किया जाएगा। यह एक जीवदया का प्रसंग है।

गरीबों की सेवा का एक और प्रसंग है कि सन् १९५५ में जब मैं स्टेशन में था, तब सुबह के साढ़े ग्यारह बजे एक साधु मुनिराजका गोचरी के लिए पुना जाए। उस समय उनके पैरों में जूते या और कुछ नहीं था। अत मेरी पू. माताजी ने उनसे कहा कि–'तुम मोटर में घूमनवाले आजके ऐसे ताप

में खुले पैरों से क्यों आए ? तब उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया। पर जब बाहर आए, तब मैंने कहा कि ऐसी धूप में चप्पल पहनकर आना चाहिए। मेरी बात सुनकर उन्होंने कहा कि, मैं चप्पल पहनकर आता था, तब रास्ते में एक भिखारिन बाई का पुत्र खुले पैरों में था। और धूप में वह चल नहीं पाता था, बेचारा रोता था, यह दृश्य देखकर मेरा हृदय पिघल गया, और मैंने तुरन्त ही अपनी चप्पल निकालकर उस भिखारिन के लड़के को दे दी है।

धन्य है उनकी मानवसेवा को। जब जिस वस्तु की जिसको ज़रूरत है, तब उसको देना ही सच्ची कीमत और सच्चा दान है। ऐसे तो बहुत प्रसंग बने होंगे, जो हमारे जानने में भी नहीं हैं।

तात्पर्य यही है कि, उनके जीवन में ग़रीबों की और मूक प्राणियों की सेवा और धर्मपरायणता प्रतिदिन बढ़ती ही थी।

श्री विनोदकुमार की मोहरहित दशा का अनुभव कराता हुआ, श्री दोलत भाई का प्रमाणपत्र बहुत मूल्यवान है कि जिससे पाठकगण को इस ग्रन्थ को रूपरेखा की सत्यता की प्रतीति मिल सकती है, और एसे उच्च कोटि के जीव की भावनाओं का दर्शन होता है।

*

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह अन्तुणो।
माणुसत्तं सुइ सद्धा, संजमम्मि य वीरियं॥

भावार्थ :– संसार में इस जीव को मनुष्यत्व, श्रुतिधर्म का श्रवण, श्रद्धा और संयम में पुरूपार्थ, इन चार अंगोंकी प्राप्तिका होना बहुत कठिन है

(उ. सूत्र)

प्रकरण ७

हरएक जीव अपनी वर्तमान क्रिया में अपना भविष्य बना रहा है।

उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार वर्णित सभी प्रकरण श्री विनोदकुमार के लिए एक ही भव में दो भवस्वरूप बनने वाले हैं—उस न्याय से अब बाकी के प्रकरणों में श्री विनोद कुमार "अणगारभाव" के रूप में उत्पन्न होनेवाले हैं, अर्थात् अणगार के यानी साधु के कुल में उत्पन्न होनेवाले हैं, उसका रसमय बयान आनेवाला है। अतः लेखक, पाठकगण से आग्रह करता है कि कथित प्रकरणों का पूर्ण सूक्ष्म दृष्टि से अभ्यास करना चाहिए, क्यों कि श्री विनोदकुमार का जीवन, इन प्रकरणों में सिद्ध करता है कि, शरीर और जीव बिल्कुल भिन्न तत्त्व हैं। श्री विनोदकुमारने बिल्कुल छोटी उम्र में ऐसा जीवन बनाया कि, कोई पुरुष शास्त्रमें अभ्यास कर वकील बनता है; कोई एन्जिनियर बनता है कोई डाक्टर बनता है, और कोई सिविलियन बनता है, उस प्रकार श्री विनोदकुमारने संसार में रहकर शरीर संसारियों के पास रक्खा, और आत्मा के भाव, साधुता ग्रहण करने के लिए निर्ग्रन्थ प्रवचन की आज्ञा का अर्पण किए, और दीक्षा लेनेकी पूर्ण योग्यता संपादित की। आगमानुसार साधु के बाईस परिषह जीतने के लिए संसार में रहकर ही केवल्य सहज बना दिये। जैसे यहा 'परिषह विभक्ति' श्री उत्तरा ध्ययनजी सूत्र की दूसरा परिषह अध्ययन की साक्षी है।

समुद्रयात्रा से लम्बी यात्रा तक से अभक्ष्य त्याग कर, क्षुधापरिषह के ऊपर काबू प्राप्त किया। उसी प्रकार पौषध, उपवास आदि धर्मानुष्ठानों का सेवन कर के भी क्षुधा परिषह

के ऊपर जय प्राप्त किया। क्षुधा परिषह का सम्बन्ध, तृषा परिषह के साथ तो है ही। अतः क्षुधा परिषह के विजय में उस का भी समावेश हो ही जाता है। तदुपरान्त, चतुर्विहार के प्रत्याख्यान से भी जीव तृषा परिषह के ऊपर विजय प्राप्त कर सकता है। श्री विनोदकुमार सदैव यह तप करते थे।

योरप की असाधारण ठंड में और मीसर जैसे ठंडे प्रदेश में भी यात्रा वे सामान्य सूती कपडों में ही करते थे। धर्मानुष्ठान वहाँ भी छोडा नहीं था। सामायिक, प्रतिक्रमण आदि क्रियाएँ चालू रखकर शीत-परिषह के ऊपर उन्होंने जय प्राप्त की थी।

गरमी के मौसम में, ग़रीब का दुःख दूर करने, अपनी चप्पल निकालकर गरीब के पैरों में रख दी! शाबास विनोदकुमार शाबास!!

जननी! दो तुम भक्तजन, या दाता या शूर;
वन्ध्या रहना उचित पर, नहीं गँवाना नूर॥

यह उष्णपरिषह की जय है। दर्शन परिषह के सम्बन्ध में लेखक को कोई बात अभी तक मिली नहीं है।

थोड़े वस्त्रों से संसार में जीवन बिताया, यह अचेल परिषह की जय है। खीचन (राजस्थान में रेत भरे ऊसर प्रदेश के पास, ऐसे सुकुमार जीवने असाधारण गर्मी में विचरण किया, वह अरतिपरिषह के ऊपर विजय माना जा सकता है।

स्त्री परिषह

जे विन्नवणाहिऽजोसिया, सन्तिन्नेहिं समं वियाहिया;
तम्हा उड्ढंति पासहा, अदक्खु कामाइ रोगवं ॥२॥

भावार्थ :– श्री सूयगडांग सूत्र के दूसरे अध्ययन के तीसरे उद्देश की इस दूसरी गाथा में भगवान आदेश देते हैं कि, जिस पुरुपने इस ससारमें जन्म लेकर स्त्री भोगने की भावना नहीं की, वह पुरुष संसार को पार कर ही गया। उस पुरुष को देवलोक या

सिद्धगति ही प्राप्त होती है, क्यों कि काम भोग का रोगसदृश वह देखता है।

उपर्युक्त सिद्धांत के अनुसार, इस वीर पुरुषने अपने कुटुंब की स्त्रियों को भी ठीक तौर से देखा नहीं था। घर की स्त्रियों के साथ कभी घूमने तक नहीं गए थे; आधुनिक जमाने के नाट्य-फिल्म-आदि में अपना पैर रखा नहीं।

धर्मानुष्ठान के लिए वाहन हो तो भी क्या, और न हो तो भी क्या? कार्यसिद्धि ही उनका एकमात्र मन्त्र था। सारे दिन धर्माभ्यास के लिए घूमना, और किसी के नेश्रा न स्वीकारना इस चरिया (चर्या) परिषह के ऊपर विजय माना जा सकता है (फलौदी से लीचन तक पैदल प्रवास किया था, सो आगे कहा जायगा)

धर्मध्यान में योगी पुरुष की तरह ध्यान जमाकर स्थिर चित्तसे एकासन पर बैठना हो बैठने के परिषह का विजय है।

शय्यापरिषह :- अपूर्व सम्पत्ति के स्वामीने शय्यासन छोड़ कर छोटी उम्र से ही पृथ्वी आसन का स्वीकार किया। सोने में एक पटाइ उसीसा ही था। पारस की सख्त शीत में भी यही व्यवहार! कमाल कर दिया!!

आक्रोशवचन के विषय म एवं वध, याचन, और अलाभ परिषह को पूरी साधुतासे बहुत सम्बन्ध है।

इतने परिषह सहन करने पर भी किसी भी समय उन्होंने चित्त की प्रसन्नता को गँवाया नहीं और निम्नलिखित न्यायानुसार, संसार में योगी जीवन बिताया।

अलख हमारा देश न्यारा है, अलख हमारा नामा है;
सिद्ध स्थान है सत्य हमारा, आश्रय आतमरामा है।१।
अलख फकीरी अलख वेश, मैं सदा चित्त मस्ताना हैं;
अलख धुनी से हम रँगाए, ज्ञानी हम गुलतामा है।२।

अलख दशा में दर्द गया सब, आना नहीं अब जाना है;
नामरूप से न्यारे हम हैं, सत्य अलख फरमाना है ।३।
नरनारी या नहीं नपुंसक, चिदानन्द सुख प्यारा है;
रत्नत्रय में हम हैं राते, पुद्‌गल हम से न्यारा है ।४।
ज्ञानज्ञेय और ज्ञाता हम हैं, चैतन्य सुखकारी है;
संसार त्याग भावना रूप में, ध्यान सिद्ध लगाऊँ मै ।५।

स्त्री परिषह को तो ये पुरुष इतने पार कर गए कि संसार का कोई भी पदार्थ इस पुरुष को आकर्षित नहीं कर सका। संसार में रहकर अप्रतिबन्ध विहार स्वरूप जीवन गुजारा नहीं । न वा कश्मीर के रमणीय स्थानों ने उन्हें आकर्पित किया, या न तो इजिप्त के बगीचों ने, न वा इजिप्त की रमणियों के रूपने आकर्षित किया, या न तो रानी इलिजाबेथ के महोत्सवने आकर्पित किया-ये महापुरुष सचमुच महायोगी थे ।

गर्भ में आने के साथ, आगमानुकूल भाव ऋद्धिवाली आत्माओं को तो सदा संसार का स्वरूप आगम उववाय में श्रमण भगवंत महावीरने कहा है ऐसा ही दीख पडता है। ऐसी आत्माएँ तो पापभीरुता से प्रवर्तमान होती हैं। अतः इस स्थल में लेखक श्री उववावसूत्र में वर्णित इस संसार का भयानक स्वरूप पाठकगण के इसलोक और परलोक के हित के लिए बताता है ।

यह वर्णन, श्री अमोलख ऋषिजी महाराजने शास्त्रोद्धार किया है, उस में से यथास्थित अनुवाद अक्षरशः पेश किया है ।

संसार का विषम स्वरूप

जिस संसार के भय से उद्वेग पाये, वह समुद्र कैसा है ? तो कि, जन्म, जरा मृत्यु के गंभीर दुःख से क्षोभित हुआ, प्रचुर पानी से भरा है। विचित्र प्रकार के संयोग रूप प्रसंग कर वह पानी

विस्तारित है। ससार के सब बन्धनादिरूप बहुत कल्लोलें उठती हैं। विलापादि करुणाजनक महाशब्द, लाभवश में जीव करते हैं खिझाना होना (सुश्रामन्‍ करना) पर की निन्दा करना ही तरंगें हैं। अत्यन्त वेदना कर पराभव पाना ही समुद्रकी महावायु है, कठिन वचन कर्दम है, कठिन कर्म रूप बड़े बड़े पथ्थर हैं। सदैव मृत्युरूप पानी का हलन-चलन है। चार कषाय (क्रोध, मान, माया, लाभ) रूप चार पाताल कलश हैं। सहसयरूप ससारजल का समुद्र में संचय हुआ है। भयरुप जल्पात है। अमविम महच्छा कलुषता रुपी महावायु का वग है। उम वायु स पानी ऊपर उछलता है। तृष्णारूप महा अन्धकार है। मधुर आशा-तृष्णारूप श्वेतवर्णी फेन है, मोहरूप आवर्त है, विषयभोग रुपी भँवरियाँ उठती हैं। मनाव्याकुलतारूप पानी उछलकर पड़ता है। प्रमादरूप प्रचड पानी के निवासी श्वापद जीव, महा उद्वेग कर उछलते हैं। आक्रन्दरूप अजगर है, अज्ञानरूपी मत्स्य भ्रमण करते हैं। पाँचों इन्द्रियों क अनिग्रहरूप महामगर है। कार्य की चपलता स भ्रमण करने रूप पानी क्षाभित होता है। चपलता-चपलता रखना, यह पानी का समूह है। आर्त्तता, भय, विषाद, मिथ्यात्वरुप सँकरे मार्ग को करनेवाले पर्वत हैं। अनादि काल क सताप स कर्मों का बन्धन होना, वह चीकना कदम है, जा पार हाना मुश्किल है। दयता, तिर्यञ्च, मनुष्य नरक गतिगमन रूप कुटिल वक्रगतिवाली विपुल वल है। चारों गति में पसरा हुआ अन्तर्रहित भयंकर ससारसमुद्र रूद्रदर्शन है।

लखक को प्रतीति हा चुकी है कि, विनादकुमार का सदैव ससारका ऐसे दुःखमय स्वरूप समझमें आ गया था। अतएव ससार में रहकर, भावनिर्गन्थ स्वरुप आगमानुसार जीवन व्यतीत किया। इस जीवन को आगम आचारांग की साक्षी आवश्यक है; अतः इस स्थल पर भी आचारांग सूत्र क प्रथम अध्ययन में भी भगवान ने जो बोध दिया है, उसे धन्यवादपुरःसर लेखक पेश करता है।

श्री. आचारांगसूत्र, प्रथम अध्ययन

"शस्त्र परिज्ञा" (उद्देश प्रथम)

शस्त्र=हथियार, परिज्ञा=आरपार ज्ञान
परिज्ञा के दो भेद

१ 'ज्ञ' परिज्ञा से षट्काय जीव का स्वरूप जान सकते हैं।
२ प्रत्याख्यान परिज्ञा से आरंभ परिग्रह का त्याग करते हैं

(दश लाख सैनिकों को संग्राममें जीतने की अपेक्षा अपनी आत्मा के ऊपर विजय प्राप्त करना अनन्त पराक्रम का परिचायक है)

समस्त अध्ययन का सार

मारो नहीं रे जीव को, यह जिनवाणी सार;
एकवचन पालन करे, प्राप्त करे भवपार ॥

इस अध्ययन में श्री भगवान फरमाते हैं कि इस जगत के कुछ जीवों को यह पता नहीं है कि, मैं कौन सी दिशा से आया हूँ ? पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ईशान, अग्नि नैर्ऋत्य, वायव्य उच्च या नीच। और उन्हें पता नहीं है कि, मेरे शरीर में यह जीव किसी भिन्न महत्त्वयुक्त है। वह उसी को मालूम पड़ता है कि, जिसे जातिस्मरणज्ञान हो, या तो भगवानकी वाणी के ऊपर श्रद्धा हो, उसे भगवान् आत्मवादी, कर्मवादी, क्रियावादी और लोकवादी कहते हैं।

कर्मबन्ध के सत्ताईस कारण हैं।

षट्काय जीवों की हिंसा करना, कराना अनुमोदन देना, (३×३ मन वचन और काया से गुन ने से) इस प्रकार, नव कारण रूप आत्मा का भूतकाल, नव कारण रूप वर्तमानकाल, और नव कारण-रूप भविष्यकाल मिलकर कुल सत्ताईस कारण (कर्म बन्धन के) आगमने बताए हैं।

पाठकगण, श्री विनोदकुमार के जीवन से समझ गया होगा

कि, उपर्युक्त श्री श्रमण भगवान् महावीर के आगम ज्ञानरूप, श्री विनोदकुमार की जिन्दगी के विचार बन गए। अतः बिल्कुल छोटी उम्र में निवृत्त होकर धर्मभावना के उत्तम विचार रखने के लिए उनकी आत्मा में स्थान हो गया।

श्री विनोदकुमार का संसारजीवन सिद्ध करता है कि ऊपर वर्णित आगमरूप आत्मा श्री अरिहंत की अनुयायिनी—पाँचवें गुण स्थानक पर, यानी श्रावक के गुणस्थानक पर व्रतधारी होकर विचरण करती है, और उत्तम विचारों की श्रेणी से बार बार सातवें अप्रमत्त संयति गुणस्थान पर जाकर साधुलिंग धारण करनेकी भावना रखती है। यह बात आगे के प्रकरण में महात्मा श्री माणेकचन्दजी महाराज के दर्शन प्रसंग से सिद्ध हो चुकी है।

उपर्युक्त शस्त्रपरिज्ञा अध्ययन के न्याय से इस उत्तम पुरुष का, सम्यग्दर्शन के प्रकार—आत्मवादी, कर्मवादी, क्रियावादी और लोकवादी प्राप्त हो चुके हैं। पूर्ण पापभीरुता इन महापुरुष की अन्तरात्मा में जाग्रत हो चुकी थी। अध्ययन और अध्यापन से भव्य शुद्ध आचार्यपद की प्राप्ति के लिए विनोदकुमार का जीव तड़प रहा था। संसार में ही उपदेशक के गुण उन्होंने प्राप्त किए थे। साथ ही साथ विनयविवेकादि गुण भी दृष्टिगत हुए थे कि, जिनसे साधु होते ही गुरुप्रसाद प्राप्त हो जाए।

इन गुणवान पुरुष की वैराग्य-दशा की तुलना, आगमकथा नुसार, अतिमुक्तकुमार या गजसुकुमार के साथ हो सकती है; क्यों कि अति छोटी वय में वैराग्यभावों की उनकी आत्मा में जाग्रति आई है। भावतुलना तो हो सकती है, पर द्रव्य, क्षेत्र काल से अलग पड़ते हैं, क्यों कि कर्म राशि का अनन्त फर्क है, पुण्य का फर्क है। अतिमुक्तकुमार और गजसुकुमार तो चरमशरीरी यानी उसी भव में मुक्तिगामी आत्माएँ थीं। मोक्ष गमन की सभी ऋद्धिसिद्धि उन्हें प्राप्त थी। मोक्षगमन में महा

सहायभूत वज्रऋषभ नाराच संघयण के वे स्वामी थे। काल चतुर्थ, आरा था कि जब आगमव्यवहार था। प्रज्ञावान् जीवों का काल प्रवर्तमान था। इस प्रकार द्रव्य, क्षेत्र कालकी दृष्टि से देखें तो बहुत फर्क है; पर भाव की दृष्टि से एक कोटि के जीव मालूम पड़ते हैं। हालाँकि चतुर्थ आरा में इन महापुरुष का जन्म होता, तो उनकी बाल्यावस्था ही दीक्षायुक्त होती; किन्तु इस काल में दीक्षा लेने के लिए आज्ञाव्यवहार रूढ़ बना हुआ है। अतः दीक्षा को विलम्ब हुआ है, उसका यही कारण है कि माँबाप का मोह है, कि जिन्होंने दर्शनमोह की तीन प्रकृतियों में से समकित मोहरूप कार्य किया है। अतः इस स्थल पर लेखक श्री. विनोदकुमार के मातापिता के गुणों का वर्णन आवश्यक मान कर प्रकट करता है।

श्री. विनोदकुमार के पिताजी का शुभ नाम सेठ श्री. दुर्लभजी शामजी वीराणी है। श्री. विनोदकुमार के जन्म के समय, उनकी उम्र चालीस वर्ष की थी। अपने परिवार के साथ, उस समय वे पोर्टसुदान में व्यापार में तल्लीन थे. क्यों कि, पुत्र के पुण्य प्रभाव से ऋद्धिसिद्धि बढ़ने लगी थी। अपने पिताजी शामजीभाई के अनेक गुण, जिनका वर्णन द्वितीय प्रकरण में किया गया है, उत्तम प्रकार से दुर्लभजी भाई में प्रबलतया विद्यमान हैं। कालप्रमाणसे असाधारण पुण्यठाठरूप ही उनका जीवन बन गया है। कुशल व्यापारी, मिलनसार स्वभाव, हास्ययुत चेहरा, सत्याशक्ति, सर्व जीवों के प्रति सद्भाव, माया-दया युक्त सज्जनता, प्रेम, पुरखों के रास्ते पर चलना, विवेक, विनय, तत्त्वरहस्य की पहचान के लिए पूर्ण समझ, कुटुम्बोद्धार का महागुण, कुटुम्बनेतृत्व की पूर्ण योग्यता, व्यवहार धर्मकार्यों के नेतृत्व का महागुण, अद्यतनता को पहचानने की अपूर्व शक्ति, उदार स्वभाव, मातापिता की भक्ति, अग्रजों और कुटुम्बजनों के प्रति विनय, अविश्रान्त कार्यशीलता,

नियमितता, समस्त कुटुम्ब में धर्मभावना स्थिर करनेवाला जीवन आदि प्रशस्य गुण उनमें हैं। जैसे कोई सामान्य रियासत का अधिष्ठाता, अपने राज्य को कौशलपूर्वक चलाता है, उसकी दृष्टि से बाहर कुछ नहीं रहता, उसी प्रकार वर्तमानकालका भाग्यवान यह जीव, पूरे कौशल से अपना संसार चलाता है। दो समय के स्वधर्मपोषक आवश्यक सामायिक, प्रतिक्रमणरूप क्रियाओं का पूरा अनुराग, जैसे कुटुम्ब के सुखदुःख का पूरा ख्याल रखते थे, वैसा ही ख्याल समाज के सुखदु ख का रखकर, लाचारों के दुःख दूर करने की भावना, धर्मसंस्थाओं के ऊपर की कुशलतापूर्वक अग्रता, उपवास, आयंबिल तप का अनुरागित्व, घर पर छोटी दानशालारूपता ये सब गुण जगत समक्ष प्रत्यक्ष मान हैं। 'हाथ कंगन को आरसी क्या?' तदुपरान्त, गुप्तदानगुण भी मधुरमात्रा में है।

साधुसंतों की सेवा का गुण तो प्रधानतया कार्य करता है। सुपात्रदान का लाभ इस भाताप नामकर्मी जीव को स्वाभाविक मिला ही करता है; क्यों कि संतोंकी सेवा में सदैव अपनी आत्मा को वे प्रवृत्त रखते हैं विद्याविलासी जीवन हमेशा प्रवृत्त है, क्यों कि वे महापुरुषों की व्याख्यानवाणी का बहुत लाभ लेते हैं, और अनेक जीवों के उद्धारार्थ समाजशिक्षा और धर्मशिक्षा के पीछे अगाध धन का व्यय कर रहे हैं। माता-पिता के नाम से चलती हुई संस्थाओंमें इन महापुरुष की बुद्धिशक्ति काम कर रही है। इन पुरुष की अजब शक्ति के कारण से ही, इस मीराणी कुटुम्ब का नाम, सौराष्ट्र में, भारत के कुछ शहरों में और विदेश में विख्यात हुआ है।

अब श्री विनोदकुमार की माताजी के जीवन की ओर दृष्टिपात करें —

पति के कुल को विभूषित करनेवाली, श्री विनोदकुमार की

माताजी का नाम मणिबहन है। 'यथा नाम तथा गुणाः' रूप इन बहन के गुण सिद्ध करते हैं कि ये सुपुत्र की माता के लक्षण हैं सास-ससुर के कुलपरम्परागत गुणों को धारण कर, उन्हों ने अपना जीवन उच्च बनाया है। समस्त वीराणी कुटुम्ब का इन बहन की ओर पूर्ण मान है। छोटों-बडों को इन का स्वभाव बहुत पसन्द है। अपनी सास के गुण अपनाकर,स्वगुणों में अतिवृद्धि की है। इनका सौभाग्य इतना पुण्यशाली है कि, उनकी आज्ञा मानना सभी को भाता है। पति के कुल की शोभा बढानेवाले चारित्र्य को धारण कर,पति के अनेक गुणों में अपनी आत्मा को मिलाकर ऐसा दृश्य खड़ा किया है कि, इस दम्पती के दर्शन के लिए भी सद्भाग्य चाहिए। निरभिमानता इतनी है कि, उन्हें गुप्तदान ही अच्छा लगता है। दाहिने हाथ से दिया हुआ बाँया हाथ भी नहीं जानता। विशेषतः कुलवत्ता, उदारस्वभाव, स्नेहवत्ता, निष्कपटता, हँसता चेहरा, अंगोपांग सौन्दर्य आदि गुण हैं। इन्हें देख कर अनजान भी मान लेता है कि यह परमकुलवती सन्नारी है। प्रभावशालिता, माधुर्य, मिलनसार स्वभाव, आदि अनेक गुण व्यवहार कौशल के साथ प्रकाशित होते हैं। धर्मदृष्टि से इन बहन के लक्षण सिद्ध करते हैं कि, श्री विनोदकुमार का इस कुक्षि में आगमन हुआ है, अतः यह कुक्षि अवश्य ही उच्च कोटि की और महापुरुष को जन्म देने योग्य होनी चाहिए। इन बहन के निम्न लिखित सेवाभाव, स्वभाव और धर्मलक्षणों के ऊपर निश्चित किया जा सकता है।

पति के घरमें पैर रखते ही सास-ससुर की सेवा कर, स्वगुणप्रदर्शन से पतिकुल दीप्त किया। पतिसुख में अपना सुख, और पतिदुःख में अपना दुःख समझा। सास की तरह की कुलीनता, सौभाग्यवत्ता, स्वागमन से घर में वृद्धिपरम्परा, प्रबल धर्मभावना, अपने परिवार की ओर पूर्ण ध्यान, अतिसमृद्धि के

बीच में भी दोनों समय के आवश्यक प्रतिक्रमण, अष्टमी, पाक्षी, पंचमी आदि के पौषध उपवास आदि धर्मक्रियाराधकता, धर्माभ्यास में अध्ययनों के मुखपाठ की आराधना, सज्झाय स्तवनों का मधुर कंठ से गान, उत्कृष्ट तपश्चरण की भावना में जीवन में निम्नदर्शित तप कर, आत्मा में कर्म निर्जरा का गुण आदि प्रशस्य गुण हैं। कर्मनिर्जरा गुण पाठकों के लिए बोधप्रद है:–

१ छठे वर्षीतप, अर्थात् दो उपवास कर, पारणा करना (एक वर्ष तक)।

२ एकान्तर उपवास, एक वर्ष तक, यानी एक दिन उपवास और एक दिन भोजन। उपवासे वर्षीतप।

३ आयंबिल तप का वर्षीतप–एक दिन आयंबिल यानी नीरस भोजन का एकाशन और दूसरे दिन पारणा–इस प्रकार सारा वर्ष।

४ विदेशी राजा के न्याय का तप, १३ छठ एक साथ, यानी दो उपवास और पारणा, इस प्रकार तेरह वक्त।

बड़े गवाक्ष के खुलने पर चार चोले एक साथ। छोटा गवाक्ष खुला तो चार छठ एक साथ। शर्कराष्टमी, तीन अष्टमी एक साथ।

५ एकान्तर उपवास, यानी एक उपवास और एक पारणा छः मास तक।

६ एक साथ आठ उपवास–ऐसी तीन अठाई।

७ एक साथ छ उपवास–ऐसी छ छकाई।

८ एक समय, एक साथ नव उपवास कर के पारणा किया।

९ एक साथ सात उपवास कर, आठवें दिन क्षीरपारणा किया–केवल खीर, और वह भी एक ही बार।

१० पाँच उपवास और पारणा।
११ एक उपवास और पारणा–चातुर्मासी तप।
१२ बड़ा पखवासा–बड़ी बड़ी सभी तिथियों के उपवास, एक वर्ष में कुल मिलाकर १२५ होते हैं।
१३ साढ़े पाँच वर्षों तक आती हुई सभी शुक्ल पञ्चमियों के उपवास।
१४ साढ़े ग्यारह वर्षों तक आती हुई सभी शुक्ल एकादशियों के उपवास।
१५ जीवन में चार उपवास एक साथ, ऐसे चार चौले।
१६ छोटा पखवासा, यानी अष्टमी पाखी चार मास के उपवास।
१७ समस्त ज़िंदगी में प्रतिदिन दो के हिसाब से सामायिकों में आत्मा की रमणता।
१८ लीलोतरी त्याग जावजीव।

ऐसे उत्कृष्ट तपश्चरण करनेवाली माता की गोद में, श्री विनोदकुमारने जन्म लेकर माता की गोद भूषित की है। धन्य है ऐसी माता को और धन्य है श्री विनोदकुमार को !! मातापिता के उपर्युक्त लक्षण, उत्तम कोटि की आत्मा को जन्म देनेवाले होते हैं, इसे आगम की साक्षी है।

उत्तम माता और उत्तम पुत्र।

पाठकगण को श्री विनोदकुमार की माताजी मणिबहन का धर्मिष्ट जीवन ज्ञात हुआ। अब उनकी कुलीनता का बेजोड़, साससेवा का दृष्टान्त देकर लेखक कृतकृत्य होता है।

कलियुग में भी सत्युग का दर्शन करानेवाला यह दृष्टान्त हैं। उसका कारण श्री विनोदकुमार का जन्म है। वह सिद्ध करता है कि, माताकी गोद हरएक प्रकार से उच्च होनी चाहिए। दृष्टान्त निम्नलिखित है :–

श्री दुर्लभजीभाई वीराणी की माताजी कड़वीबाई की

मरणशय्या ढाई वर्ष तक चली थी। इस भाग्यवान जीव के ऊपर पक्षघात का हमला हुआ था। कर्मों ने उन्हें परवश किया था। बड़े बड़े महर्षियों को भी कर्म के फल तो भुगतने ही पड़ते हैं। कर्मों का शुद्धस्वरूप तो ईश्वरगम्य है। कौन जानता है कि कहीं इसी भव में इन उत्तम कोटि की बहन को कर्मफल पूरे करने का संकेत नहीं होगा? क्यों कि एक ऐसा भी नियम है कि, दुःख के परिणाम से सुख मर्जन होता है। श्री फडकीबाई मीराणी की भाग्यदशा आगे वर्णित की गई है। पुत्र पूरे सेवाभावी हैं। नर्स आदि रखकर सेवा कराने के पूरे सयोग हैं, किन्तु श्री कडवीबाई मीराणी की पूर्वभव की लेनदेन, श्री विनोदकुमार की माताजी मणिबहन के साथ थी। एक क्षण भी यह पुत्रवधू का पथारी से दूर होना सास को अच्छा नहीं लगता था। मणिबहन के सिवा किसीका हाथ सेवानुकूल नहीं लगता था। सभी पुत्रपरिवार और वधुएँ सेवा की मांग करती थीं, पर माताजी अनादर ही करती थीं। सेवा के लिए नर्सों की मांग का मणिबहन ठुकर देती थीं। व कहती थीं कि, सेवा का मुझे यह अमूल्य लाभ मिला है, मुझे किसीकी जरुरत नहीं, मैं अपने हाथों सब कुछ कर लूँगी।

इस दर्द में शरीर की हेरफेर कितनी मुश्किल है, यह तो जिसे अनुभव हो, वही जान सकता है। टट्टी-पिशाब की तकलीफों को तो मणिबहन ही जानती हैं। इतना ही नहीं पर शरीर को स्वच्छ रखना, स्वच्छ करना, और पथारी में एक भी धब्बा न लगे, इस के लिए मणिबहनकी सतत जाग्रति थी। प्रत्येक कार्य स्वहस्त से ही करके आत्मसंतोष का व अनुभव करती थीं। मणिबहन की यह अनुपम विशेषता मानी जा सकती है। पुत्री माताजी की सेवा जिस प्रकार करती है, उससे भी ज्यादा प्रेम

से सास की सेवा करने का ऐसा नमूना क्वचित् ही इस लोक में प्राप्त होता है। सारे राजकोट में लोग, इस बात से परिचित हैं। सभी की जिह्वाओं के ऊपर सास सेवाकी प्रशंसा में इन मणिबहन का नाम आज दिन तक गूँज रहा है। धन्य है मणिबहन को, और धन्य है ऐसी भाग्यशालिनी सास को, कि जिनको ऐसी मूल्यवती पुत्रवधूका ऐसा सुयोग प्राप्त हुआ। ऐसी सेवाभावी माता की गोदमें मातृ-पितृ-भक्त पुत्र ही जन्म लेता है। अंगूठी में हीरे की तरह वह माना जा सकता है। लेखक उसे अब लिखता है।

श्री विनोदकुमार की पितृसेवा।

पिता के कुलवान पुत्र विनोदकुमार ऐसे विनयगुणसम्पन्न थे कि पिता की चरणसेवा के बिना उन्हें सोना अच्छा नहीं लगता था। जहाँतक पिता सोने नहीं जाते, तबतक निद्रा के ऊपर जय प्राप्त कर स्वयं जाग्रत रहते थे। पिताजी के सोने जाने पर चरणसेवा शुरू करते थे। पिताजी के 'नहीं' कहने पर विनोदकुमार को बहुत दुःख होता था। उसी कारण से कभी पिताजी का दिल न होने पर भी पांच मिनट चरणसेवा करने की छूट देते थे।

किसी समय ऐसी घटना घटती थी कि, पिताजी की अनुपस्थिति म श्री विनोदकुमार को अपने चाचा श्री छगनलालभाई के साथ रहने, और भोजन का प्रसग प्राप्त होता था। छगनलालभाई की शारीरिक तन्दुरुस्ती भी अच्छी थी। हमेशा वे नियमितरूप से उपाश्रयमें सुबहमें जाते थे, और वहाँ सामायिक करते थे। उन की सेवा भी यह धर्मदृष्टि को अपनानेवाला जीव भूलता नहीं था। चाचा का आसन और पुस्तक, उपाश्रय में जाते समय, पहले ही स्वयं जाकर अपने

साथ वे ले जाते थे। आसन नियत स्थान पर वे बिछा देते थे। फिर बाबा उस आसन पर बैठकर सामायिक आदि क्रियाएँ करते थे। व्याख्यान समाप्त होते ही तुरन्त बाबाजी सामायिक करके उठते थे। बाद में धर्मक्रियोपकरणों को घर ले जाते थे। बाबा का सामायिक कितना भी क्यों न लम्बा हो, पर वे ऊबते नहीं थे-बैठे रहते थे।

बड़े बापूजी श्री रामजीभाई वीराणी का पश्चात्ताप।

नोट :- श्री विनोदकुमार के स्वर्गवास के बाद, समस्त कुटुम्ब को जो आघात पहुँचा उसे वर्णित करने के लिए शब्द नहीं हैं। उस की प्रतीति निम्नांकित स्थिति के ऊपर से होती है। बड़े भाइ श्री रामजी भाई के शब्द - अरे! मैंने उन्हें नहीं पहचाना, और अन्धेरे में रहा।

यह उद्गार और आक्रन्द देखने के साथ ही देखनेवाले का दिल पिघल जाता है। वे भी कहते है कि विनोदमुनि की मैंने बहुत अशातना की है और परुष शब्द भी कहे हैं। मुझे अपने उस कार्य का पश्चाताप होता है।

श्री विनोदकुमारकी उच्च कोटि की ब्रह्मचर्य भावना।

इस दिव्य पुरुष को छोटी उम्र से ही स्त्रियों के सम्पर्क में आने का अभाव था। इस ज़माने का ऐसा भाग्यवान कुटुंब अपने कुटुंब की महिलाओं के साथ कहीं आनन्द लेने जाता था, तो ऐसे मझे में विनादकुमार कभी भाग नहीं लेते थे। कुटुम्ब की महिलाओं के साथ कभी उन्होंने सहवास नहीं किया था। जन्म से निर्वाण तक परिशुद्ध दिल से अखंड ब्रह्मचर्य का पालन किया। केवल एक ही इन्द्रिय से नहीं, पाँचों इन्द्रियों और छठे मन से उसे सेवित किया, जैसेः-

१ कर्णों को आगमवचन ही सुनाए, परनिन्दा से उन्हें सदैव मुक्त रखा।

२ आंखों से रूपलोभ का त्याग किया। इस के प्रमाण-भूत तत्त्व गत प्रकरणों से मिल सकते हैं। योरप, कश्मीर, इजिप्त जैसे सौन्दर्यवती रमणियों के देशों में प्रवेश करने पर भी, काञ्चन की अग्निपरीक्षा मानो हो रही हो, विशुद्ध ही रहे। नाटयादिदर्शन से भी दूर ही रहे।

३ सौगन्धिक पदार्थों का कभी सेवन नहीं किया, क्यों कि चारित्र्यरूप जीवन से आत्मा को अविरत सुगन्ध मिलती ही रहती थी।

४ जीभ से रसमय आहार का आस्वादन छोड़ दिया। मध, मक्खन, कन्दमूल का त्याग किया। निन्दा करके किसी का अहित नहीं किया; पर धर्मोपदेश कर, कई जीवों का उद्धार किया।

५ जिन्दगी के अन्ततक स्पर्शसम्बन्धी ब्रह्मचर्य।

६ मन को सदा एक मन्त्र में प्रणत किया।

"असंखयं जीविय मा पमायए"

अर्थात्:– उच्च भावों में सदा आत्मा को प्रणत किया। यह ब्रह्मचर्य उच्च कोटि का होने पर भी शास्त्रकार इसे 'द्रव्य ब्रह्मचर्य' मानते हैं। जैनागम, सम्यक्त्व के पाँच लक्षण बताते हैं:–

१ सम, २ संवेग, ३ निर्वेद ४ अनुकम्पा और ५ आस्ता.

सम से तात्पर्य क्रूरताराहित्य से है; संवेग का वैराग्य, निर्वेद का विषयासक्तिराहित्य, अनुकम्पा का षट्काय जीव दया, और आस्ता का वीतराग प्रवचन की श्रद्धा तात्पर्य है।

इन पाँच लक्षणों में से प्रथम चार लक्षण, हमारी–अपनी–आत्मा, अंशतः अनेक बार धारण कर चुकी है, पर पाँचवे आस्ता लक्षण के अभाव से भवभ्रमण चालू रहा है।

भवभ्रमण बन्द होने के मूल लक्षण को आगम प्रवचनों की

संपूर्ण भद्रा के साथ उत्कृष्ट सम्बन्ध है। अत एव आगे के प्रकरण में आवश्यकसूत्र के पाँचवें श्रमणसूत्र में जो 'नमो चोवीसाए' का पाठ है, वह पाठ मोक्षार्थी जीवों को खूब ध्यानपूर्वक धारणा करने लायक है, और ज्ञात करने की जरूर है कि जो पाठ मात्र ब्रह्मचर्य के स्वरूप है। और इसी स श्री सुयगडांगजीसूत्र के इक्कीसवें अध्ययन 'अणाचार' की प्रथम गाथा में भी भगवान, ब्रह्मचर्य सम्बोधन को भाषा के साथ जोड़ते हैं।

गाथा – "आदाय बम्भचेर च, आसुपन्ने इमं वयं;
अस्सिं धम्मे अणाचार, नायरेज्ज कया इवि ॥

भावार्थ – क्षीप्रज्ञानी श्री महावीर भगवान इस धर्म में फरमाते हैं कि, ब्रह्मचर्य का ग्रहण करनेवाली भाषा अणाचार–दोष का सेवन नहीं करती। अर्थात् श्रुतकेवली और केवली ज्ञानी–दोनों का एकसमान उपदेश हो, वह भाषा–ब्रह्मचर्य समझानेवाली है यह पूरा अध्ययन है।

भाषा को उलझी बनानेवाले का ब्रह्मचर्य, 'ब्रह्मचर्य' नहीं है; अर्थात् आगम प्रवचन की मर्यादारहित केवल इन्द्रियों का ब्रह्मचर्य बाह्य सद्गतिरूप बन, पर कभी वह मोक्षमार्गस्वरुप नहीं बन सकता। पाठकगण को कि जिस शुद्धधर्म समझने की भावना है, यह अध्ययन बहुत मूल्यवान सिद्ध होता है।

उपर्युक्त प्रकार से श्री विनोदकुमार का द्रव्यभाव, दोनों प्रकार का सम्यक् स्थिर हुआ था क्यों कि उनको उन्हीं साधुओं का परिचय जँचता था कि, जो साधु आगमप्रवचनों के पूरे आसक्त हों, और उन्हीं साधुओं का साधु वेश, उन की आत्मा का आकर्षित कर सकता था।

आगे कहा गया है, उस प्रकार श्री बोटाद सम्प्रदाय के १००८ महाराज श्री माणेकचन्द्रजी महाराज में उनका आकर्षण

हुआ। क्यों कि महाराजश्री सूत्र व्यवहार के विषय में लोकाशा की तरह स्वसमय के बाहर कभी भी पैर रखने के लिए तैयार नहीं होते हैं। और उत्तम प्रकार का सूत्रज्ञान रखते हैं।

जिस प्रकार अनुयोग–द्वार सूत्र में आवश्यक प्रकरण म कहा है, उस प्रकार की शुद्ध श्रावकदृष्टि विनोदकुमार की थी। वह मूल्यवान् पाठ, पाठकगण की शुद्ध समझ पैदा करने के हेतु, लेखक यहां पर लिखता है।

गाथा :– "समणोवा, समणिवा, सावओवा, साविआवा, तह्मग्न्ने तह्चित्ते, तह्लेसे, तह्ज्जवस्सए, तह्ती-व्वज्झवस्साणे, तदट्ठोवउत्ते, तदपियकरणे, तवभावना, भाविए, रागमणे, अविमणे, जिवणयण धम्मराग रत्ते, तव भावना भाविए, अन्नत्थ कत्थइमणं करे माणे, उभओकालं आवस्सयं करेइ. सेतं भाव आवस्सयं"

भावार्थ :– साधु हो, साध्वी हो, श्रावक हो, या श्राविका हो–जो शाम का आवश्यक करते हैं; तव उनका मन, चित्त, लेश्या, (आत्मा के परिणाम), ध्यान और आत्मा के तीव्र अध्यवसाय, केवल जिनप्रवचनरूप धर्म की पूरी आसक्तिमय हों उन्हें आगम प्रवचन के अर्थ ही प्रिय मालूम होते हैं। अग्नि-ताप के समान प्रवचनों के साथ आत्मा जुड़ी हो, अन्यथा आत्मभाव कहीं भी प्रवृत्त न हों उसका नाम 'आवश्यक' है।

जिस प्रकार सीता के चित्त को राम के सिवा, किसी भी पुरुष का रूप आकर्षित नहीं कर पाया, उसी तरह द्वादशांगों के सिवा, अन्य किसी भी ग्रन्थादि का आकर्षण सम्यग्दर्शनी को नहीं होता। ऐसा शुद्ध सम्यग्दर्शन, श्री वीराणी कुटुम्ब में जन्म लेनेवाले, श्री अरिहंत के सच्चे अनुयायी, श्री विनोद-कुमार का बना था।

ऐसे सम्यगदर्शन के परिणाम से, बाद में साधुकुल में भी विनोदकुमार का जन्म होने वाला है, यह कुल भी ससार के मातापिता के उच्च कोटि के कुल जैसा ही बाईस यूथों में उत्तम प्रकार का कुल है। उस कुल का कीर्तिमय नाम बाईस यूथों के श्री धर्मसिंहजी सम्प्रदाय की पाटानु पाट श्री हुक्मचन्दजी महाराज के सम्प्रदाय से विख्यात है।

इस सम्प्रदाय के पूर्वाचार्य महाज्ञानी और महाध्यानी हो गए हैं। श्री धर्मसिंहजी महाराज के लिए तो ऐसा मत है कि वे बहुसूत्री नामधारी थे। उन्होंने शास्त्राध्ययनातिरेक से स्थानक वासी और इतर जैनसमाज के ऊपर बड़ा उपकार किया है। श्री हुक्मचन्दजी महाराज की पाटानुपाट में जो जो आचार्य हुए, वे सभी मारवाड़, मेवाड़, राजपूताना और भारत के इतर विभागों में अपने ज्ञानबल से विख्यात हैं। जीवदया के धर्म को जोर से फैलाने में इन मुनियों का अग्रगण्य स्थान है। अनेक राजामहाराजाओं ने इन आचार्यों के व्याख्यानों को सुनकर जीवदया का धर्म अपनाया है। प्रमाणरूप में श्री लालजी महाराज का जीवन पढ़ने के लिए, लेखक पाठकगण से अनुरोध करता है।



पंचिन्दियाणि कोहं, माणं मायं तहेव लोहं च।
दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्वं अप्पे जिए जियं ॥३६॥

मूलार्थ —हे शिष्य ! पांचों इन्द्रिय, क्रोध, मान, माया और लोभ आदि को जीत तथा दुर्जेय जो आत्मा—मन, उसको जीत ! क्यों कि एक आत्मा को—मन को—जीत लेने से अन्य सब जीते हुए ही हैं ! तात्पर्य कि आत्मा का जीतना सबसे अधिक कठिन है, !

प्रकरण ८

वैराग्यमूर्ति विनोदमुनि।

(संस्कार और संस्मरण।)

जीवन-साफल्य के सोपान।

मृत्यु के साथ जिसकी मित्रता हो, जो मृत्यु से छूट सकता हो, या तो जो अपने को अमर समझता हो, वही आगामी कल पर विश्वास रख कर सुखपूर्वक सो सकता है।

कौन जानता है कि कब मृत्युदूत आकर हमारे प्राणधन को उठा ले जाएगा? इसी लिए भगवान् महावीरने धर्माराधना करने के लिए पल का भी प्रमाद न करने का सूचन किया है कि, जागो, समझते क्यों नहीं? मृत्यु के बाद ज्ञानप्राप्ति दुर्लभ है। बीते हुए दिन और रात्रियाँ फिरसे नहीं आनेवाली हैं। मानव जन्म का पुनरागमन सरल नहीं है। अब तक वैभव विलास में, खाने पीने में, बाह्य आडम्बर आदि में मानव जीवन की अमूल्य घडियाँ बीत गई, उन्हें भूल कर बची हुई शक्ति और समय का सदुपयोग कर लो, जीवन में धर्म की पुनःप्रतिष्ठा करो, अन्तःकरण से संयमसाधना करो; मन से आत्मा और परमात्मा के स्वरूप का चिन्तन करो; श्रवणेन्द्रिय से सद्धर्म का श्रवण करो; नेत्रों से शास्त्रावलोकन और संतदर्शन करो; षट्काय जीवों के ऊपर दया करो। जीवन की अन्यान्य शक्तियों का भी सुन्दर समन्वय कर, उनका आध्यात्मिक आराधना में सदुपयोग कर, मानवजीवन को सफल बनाओ।

जो विवेकदृष्टि-सम्यग्दृष्टि-वाली आत्माएँ थीं उन्हों ने अपने दुर्लभ मानव जीवन को सफल बनाने को कितना सफल प्रयत्न

किया था, वह उन्होंने जीवन में अपनाया, जीवन के क्रमिक साफल्यसोपान से सरलतया ज्ञात हो सकता है।

श्री विनोदमुनि वैराग्यवासित मोक्षाभिलाषी सरल धर्मात्मा थे। संसार के बन्धनों से मुक्त हो कर, वीतरागिता के मार्ग पर आत्मसिद्धि प्राप्त करने की उनकी उत्कृष्ट और भव्य भावना थी। उन्होंने उस भावना को-वीतरागवाणी को अपने जीवन में, ताना-भरनी की तरह बुन लिया था। और उसे सफल बनाने का भगीरथ प्रयास किया था। भगवानने जीवनसाफल्य के जो चार सोपान बताए हैं, उन्हें जीवन में क्रमशः अपनाया था, और जीवन साफल्य का अनुपम आदर्श उपस्थित किया था।

मनुष्यत्व, धर्मश्रुति, धर्मश्रद्धा और संयम में पराक्रम। -जीवन के इन चार सोपानों को भगवान् महावीर ने दुर्लभ बताया है। जीवन में मानवता को प्रकट करना और उस मानवता के विकास के लिए सद्धर्म-जैनधर्म को समझना सुनना, सोचना और चिंतन करना एवं दृढ श्रद्धा उस के ऊपर करना और अन्तमें सद्धर्म को जीवन में मूर्तरूप देकर संयम में पराक्रम करना यह सब जन साधारण के लिए सरल, सुलभ नहीं, यह तो तलवार की धार के ऊपर चलने के जैसा कष्ट साध्य है।

मनुष्यदेह मिलने पर भी जहाँतक जीवन में मानवता प्रकट नहीं होती, वहाँतक मानवदेह का मूल्यांकन कुछ नहीं होता। अतः भगवान ने ' माणुस्सं खु दुल्लहं '-मनुष्यत्व को प्राप्त करना अतिदुर्लभ है-ऐसा कहा है।

धर्म की सही भूमिका मानवता है। मानवता की भूमि को कृषिपूत किये बिना धर्मांकुर फूट नहीं सकते। अतः जो मानवदेह बड़ी कठिनाइस प्राप्त हुआ है, उसका उपयोग मानवता प्रकट करने में हो, तो मानवजीवन सफल और सार्थक हो सकता है।

यह रत्नचिन्तामणिसम मानवदेह कितनी कठिनाइयों से मिलती है, इस विषय में शास्त्रों में विशद और विस्तृत वर्णन किया गया है। उसका सक्षेप सार यह है कि:—

जीवात्मा अनादि काल से है, और अनन्त काल तक रहेगा, उसकी पर्यायों में सदैव परिवर्तन होता रहा है, भविष्य में भी होता रहेगा। तथापि जीवात्मा एकान्तपर्यायरूप नहीं है; परन्तु द्रव्यरूप से तो स्थित ही है। द्रव्य का भी विनाश नहीं होता। और अतएव जीवात्मा का भी कभी विनाश नहीं होता।

इस प्रकार द्रव्य से नित्य जीवात्मा अनादिकाल से पर्यायों की अपेक्षा से अनेक गतियों में, अनेक जातियों में, अनेकरूपों में और अनेक आकृतियों में उत्पन्न होता रहा है। इन सर्व विभिन्न सांसारिक पर्यायों का मुख्य कारण कर्म हैं। यह कर्मरूपी मदारी, जीवरूपी वन्दरों को भिन्नभिन्न प्रकार के नाच नचा रहा है। मोहनीय कर्म, सब कर्मों से ज्यादा बलवान हैं। मोहनीय कर्मों का वशीभूत जीवात्मा, घोर दुःखों का पात्र बनता है, और सार, असार और हित, अहित का विवेक भूल जाता है। मोहनीय कर्मों के उदय से ही जीवात्मा दुःख को सुख समझ बैठा है, और उसे ही प्राप्त करने में सदैव संलग्न रहता है।

विषयों के भोगोपभोगों में सांसारिक जीवों ने सुख की कल्पना कर ली है; किन्तु अगर तात्त्विक दृष्टि से देखा जाय, तो विषय सुख सच्चा सुख नहीं है, पर सुखाभास है। फिर भी मोही जीवात्मा, रत्तीभर कहलाने वाले सुख के लिए दुःखों के सुमेरुको सर पर लेकर घूमता रहता है। यह सब मोहजाल का माहात्म्य है, अज्ञान की लीला है, और अविवेक का विलास है। विवेकशील मानव तत्त्व का यथार्थ स्वरूप जानकर, सच्चे आत्मसुख को प्राप्त करने का प्रयास करता है, और संसार के तुच्छ, क्षणिक और अस्थायी सुखों से विमुख रहता है।

—— यह जीवात्मा-कर्मी-कर्मी—सांसारिक-वैषयिक-सुखों की प्राप्ति के लिए अनेकविध घोर पापाचरण करता है, और उनका परिपाक होता है, तब परिणाम भी भोगता है। — —

इस तरह पुण्यपापफल भोगते हुए, अनेक पर्यायोंमें भ्रमण करते हुए अत्यन्त तीव्र पुण्यों के प्रभाव से, मानवपर्याय की प्राप्ति होती है। इतनी कठिनाई से मानवदेह मिलती है, फिर भी उत्तम कुल, अविकल अंगोपांग, परिपूर्ण इन्द्रियाँ, धार्मिक सत्पुरुषों का सहवास, सद्धर्मश्रवण, धर्मश्रद्धा, संयमशूरता आदि धर्मांगों की प्राप्ति हो बड़ी दुर्लभ है।

हमारे मानव जीवन में धर्म का अति महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैसे श्वासोच्छ्वास के बिना जीवन नहीं चलता, उसी प्रकार धर्म के सिवा, मानवजीवन सार्थक नहीं बन सकता। धर्म ही एकमात्र वास्तविक सारभूत तत्त्व है। सांसारिक सुखसमृद्धि की प्राप्ति सुलभ है, किन्तु सद्धर्मप्राप्ति दुर्लभ ही है।

जगत की सामान्य प्रजा जिसके लिए तड़प रही है, ऐसे मनोरम भोग भी सुलभ हैं; देवों की सम्पत्ति भी कदाचित् सुलभ हो सकती है, पुत्रमित्र या कलत्र का सुख भी मिल सकता है; पर सद्धर्मप्राप्ति, परश्रद्धान और आचरण, अतिदुःसाध्य, कठिन और दुर्लभ हैं।

तदुपरान्त परलोक में धर्म ही केवल सच्चा मित्र है। परलोक में जाने पर सांसारिक सम्बन्धी किसी भी प्रकार का साथ नहीं देते। केवल धर्म ही साथ देता है। मृत्यु का भयंकर समय जब उपस्थित होता है, तब अनन्त क्लेशपूर्वक संचित किया हुआ धन भी काम में नहीं आता। अति परिश्रम से पोषित शरीर भी अनुपयोगी सिद्ध होता है। कष्टों की अनेकविधता से सहकर जिन्हें सुख दिए गए हैं, ऐसे कुटुम्बी जन और स्नेही लोग भी मरण समय में साथ देने में नाकामयाब होते हैं। उस समय केवल सद्धर्म ही परम सहायक होता है। अतएव कहा गया है कि, धर्म

ही सच्चा बन्धु, सच्चा मित्र और परमगुरु है; और मोक्षमार्ग में प्रवृत्त होनेवाले पथिकों के लिए धर्म ही श्रेष्ठ रथ है। मनुष्यदेह प्राप्त होने पर भी सद्धर्मश्रवण से तपश्चर्या, क्षमा और अहिंसा की प्राप्ति और उसके द्वारा सद्धर्म प्राप्ति तो जीवात्माओं के लिए दुर्लभ ही है।

धर्म की मंगलता को सूचित करते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि, अहिंसा, संयम और तप रूपी त्रिविध धर्म उत्कृष्ट मंगल-रूप है। जिस मे अमंगल का अणुमात्र दोष भी अविद्यमान हो, और जिस मंगल के बाद अमंगल का संभव ही न हो, वही वास्तविकरूप उत्कृष्ट मंगल है। संसार में अनेक पदार्थ मंगल-मय माने जाते हैं, किन्तु विश्लेषण करने के बाद पता चलता है कि उनके अन्दर अमंगल की ज्वालाएँ सुलगती हैं। अतः जो जीवात्मा शुद्ध और स्थायी मंगल की कामना रखता है, उसे चाहिए कि वह अहिंसा, संयम और तप रूपी त्रिविध की आराधना करे। इस मंगलमय धर्म की शक्ति असीम– है। जो व्यक्ति इस परममंगलमय धर्म के ऊपर दृढ़ रखकर प्रवर्तमान रहता है उस के चरणों में सामान्य ०० तो क्या, देवगण भी झुक जाते हैं।

मंगलमय धर्म के श्रवण करने के बाद भी उस सद्धर्म-जैन धर्म–की ओर श्रद्धा होना, और कठिन बात है। सही देव में देवबुद्धि, सही गुरु में गुरुबुद्धि और सद्धर्म में शुद्ध धर्मबुद्धि, कि जिसमें अज्ञान, संशय और विपर्यय न हों, रखना ही सच्ची श्रद्धा है। सच्ची और दृढ़ धर्म श्रद्धा को सम्यक्त्व कहा गया है। सम्यक्त्वपुरःसर मंगलधर्म का श्रवण कर, प्रतीति कर, रुचि कर, श्रद्धा कर, साक्षात्कार कर, जीवन में अवतारित करने की पद्धति से संयम पराक्रम अगर किया जाय, तो जीवन धन्य, कृतार्थ और सफल बन सकता है।

सौभाग्य और पुण्यप्रताप से मानवदेह, जैनधर्म की प्राप्ति, सन्तजनों का समागम, सद्धर्म का श्रवण, धर्मश्रद्धा और संयम में पराक्रम करने का अनुकूल संयोगआदि की सहज प्राप्ति, कोई साधारण सौभाग्य नहीं है। बार बार ऐसा सौभाग्य प्राप्त होने वाला नहीं है, ऐसा समझकर, श्री विनोदमुनिने जीवन में मानवता का प्रकट किया, और जैनधर्म की ओर रुचि, प्रतीति, दृढश्रद्धा को उत्पन्न किया। जगने के समय को सुबह मानकर, आत्मा के वास्तविक स्वरूप को प्रकट करने के लिए संयमपराक्रम का प्रारंभ किया और परिणामत से आत्मविनोदी दुर्लभ रत्न ने अपने आत्मप्रकाश को प्रकाशित किया।

श्री विनोदमुनिने मानवता, धर्मश्रुति, धर्मश्रद्धा और संयम में पराक्रम—इन चार जीवनसाफल्य के सोपानों को अपनाकर, जीवन सिद्धि को कैसे प्राप्त किया, यही उनके जीवन का तेजस्वी और सारगर्भित रेखाचित्र है—चाहे वह छोटा हो।



विनोदकुमार ने संसारस्वरूप अच्छी तरह से समझ लिया था, अतः उन्हें संसार जहरभरा मालूम होता था, और वैराग्य की ओर उनका आकर्षण दिनप्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा था। पूर्व जन्म के धार्मिक संस्कार, कुटुम्ब में दृढ धर्मश्रद्धा का सिंचन, मातापिता की धर्ममार्ग पर चलने की अनुमति, अनुज्ञा और प्रेरणा, सन्तजनों और धार्मिक व्यक्तियों का सतत सम्पर्क और समागम—ये सब धर्मसाधन सुलभ थे, अतः विनोदकुमार अपने निश्चित मार्ग को प्रशस्त, निरापद और सरल बनाने के लिए जीवन में पाथेय इकट्ठा करने लगे।

—शान्तिलाल शेठ

प्रकरण ९

जीवन का ध्येयसूत्र।

असंस्कृत जीवन का संस्कार

असंखय जीविय मा पमायए।

जीवन में जब मानवता उदित होती है, सद्धर्म को श्रवण करने की वृत्ति जाग्रत होती है सद्धर्म की ओर रुचि और श्रद्धा उत्पन्न होती है और संयम में पराक्रम करने की भावना प्रकट होती है, तब जीवनवृत्ति में सहज भावसे परिवर्तन होता है। वहिर्जगत की जो वहिर्दृष्टि होती है, वह अन्तर्मुख होती जाती है, औ परिणामतः बाह्य जगत के चोचलों-वैभवविलासों में जो संसारसुख माना जाता है, वह सुखाभास हो जाता है—दुःखमय भासमान होता है; और तब सत्यासत्य विवेक प्रकट होता है। यह भेदज्ञान ही ससारसुख के प्रति विरक्ति और मोक्षसुख के प्रति सम्मुखता पैदा करता है।

विनोदकुमार के जीवन में मानवता, धर्मश्रुति, धर्मश्रद्धा और संयम में पराक्रम करने की वृत्ति-भावना पैदा होते ही उनके भीतर बहुत परिवर्तन होने लगा। यह विवेक दृष्टि उदित होने से उन्हें यह स्पष्टतया भासित हुआ कि, सत्य की खोज करने का इस मानवजीवन में मुझे अपूर्व सुयोग प्राप्त हुआ है, अतः मुझे अन्तर्दृष्टि प्राप्त कर, आत्मस्वरूप का निरीक्षण कर, क्षणिक संसारसुख के स्थान पर शाश्वत आत्मसुख प्राप्त करना चाहिए। अन्तर्दृष्टि को बिना खोले, पदार्थ का वास्तविक स्वरूप समझ में नहीं आता। आत्मा स्वयं स्वभाव से सिद्धबुद्ध और अनन्त गुणों से समृद्ध होने पर भी एक मात्र अज्ञान के कारण, भिन्न भिन्न जीव योनियों में परिभ्रमण

करता है, और विविध वेदनाओं को सहन करती है। जीवात्मा अज्ञान से वशीभूत होकर अपनी अनन्त शक्तियों को भूल गया है, और बहिरात्मा बन गया है। बहिरात्मा बाह्य जगत के भोगोप भोगों में ही सुख की कल्पना करता है। इसी कारण इन्द्रियों का स्वामी पदभ्रष्ट बनकर इन्द्रियों का दास बन गया है। अतः अन्तरात्मा को सुषुप्त दशा में से जगाना चाहिए, और उसे आत्म स्वरूप का भान करना चाहिए। आत्मसबुद्धि का प्राप्त होना अति कठिन है परन्तु अनन्त दृष्टि किये बिना आत्मा की अनन्त शक्तियों का भान होता नहीं अनन्त दृष्टि के पैदा होने पर ही अन्तरात्मा की उज्ज्वल प्रकाशिता, और अनन्त शक्तिमत्ता का भान होता है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप का असीम सागर हमारी अन्तरात्मा में तरंगित हो रहा है। हमारी आत्मा अपूर्व ज्योतिर्मय है, चित् और चमत्कारमय है, और अनन्त असीम और अव्याबाध सुख की स्वामिनी है। हम बहिर्दृष्टिवाले हो गए हैं; अतः हमारी अन्तर्दृष्टि दूषित हो गई है और इसीसे सांसारिक पदार्थ सुखप्रद प्रतीत होते हैं, पर वास्तवमें सांसारिक भोगोपभोग दुःखमय ही हैं और आत्मा को भवभ्रमण करानेवाले हैं।

सही दृष्टि से विषय विषरूप हैं, बन्धुबान्धव बन्धनकर्ता हैं, सम्पत्ति विपत्तिरूप है और भोगोपभोग रोगमय हैं। अन्तर्दृष्टि प्रकट होने पर ही स्व-पर यानी आत्मा और सांसारिक पदार्थों का भेदज्ञान प्रकट होता है।

भेदज्ञान-विवेकज्ञान प्रकट होते ही विवेकदृष्टि की वृत्ति और प्रवृत्ति में अन्तर हो जाता है और झुकाव बदल जाता है। सांसारिक लालसाएँ मन्द होती हैं, और मोक्ष की ओर तमन्ना बढ़ती रहती है। तब सांसारिक भोगविलास, स्वार्थ और बन्धन झूठे हो जाते हैं-विवेकदृष्टि उन्हें सह नहीं सकती। सत्ता की मोहममता उस-विवेकी का-आदर नहीं कर पाती। संसार की

और विरक्तिभावना उसके जीवन में यहाँ तक उत्कृष्टता पाती है कि, ऐसा अपूर्व अवसर कब आएगा जब कि निर्गन्थता सिद्ध हो जाय। उसी भावना का रटन हुआ करता है। आत्मा की उपलब्धि, आत्मा की शुद्धि और आत्मा की सिद्धि के लिए एक क्षण का भी प्रमाद उसे जँचता नहीं। आत्मभान पैदा होने से विवेकदृष्टि–सम्यग्दृष्टि–का जीवनध्येय ही 'असंखयं जीविय मा पमायए' "टूटा हुआ जीवन जोड़ा नहीं जाता, अतः क्षणमात्र का प्रमाद नहीं करना चाहिए" –यह बन जाता है। फिर तो इस जीवन ध्येय की पूर्ति करना ही उनकी जीवन-साधना हो चुकी थी।

वर्तमान में अपना असंस्कृत जीवन संस्कृत कैसे बने, और अतिकठिनाइसे प्राप्त यह दुर्लभ मानवजीवन कैसे सफल हो, वही लगन उन्हें लगी थी। वीतरागवाणी के प्रत्येक शब्द में से उन्हें आत्मसाधना की ही प्रेरणा मिलती थी कि, जीवन किसी भी उपाय से जरा, व्याधि और मृत्यु से रहित नहीं हो सकता। अतः कल्याणवांछु मनुष्य को ज़रा भी प्रमाद करना नहीं चाहिए। वृद्धत्व से परिपीडित का रक्षण कहीं से नहीं होता, यह ज़रूरी बात है। प्रमत्त, असंयमशील और हिंसक लोग कैसे रक्षण को प्राप्त कर सकते हैं?

जो मानव दुर्बुद्धि से पाप कर्म कर धन पैदा करते हैं, वे वैरागिभूत होकर नरकगामी होते हैं।

जिस प्रकार चोर स्वयं किये हुए षड्यन्त्र से पकड़ा जाता है, वैसे ही पापकारी मानव अपने किये हुए कर्मों में फँस जाता है। इस लोक में और परलोक में समस्त जनता पाप कर पीडित होती है। क्यों कि किए कर्मों को बिना भोगे मुक्ति नही मिलती।

अपने या दूसरे के लिए जो मनुष्य पापकर्म करता है, उसका फल उसे —अकेले को— ही भोगना पड़ता है। उस समय बन्धु-बान्धव बन्धुता नहीं दिखा सकते।

मोहवश प्राणी देखी हुई वास्तविक वस्तु की भी अवगणना कर, धनादि में आसक्त होता है, किन्तु वह प्रमत्त मानव अपने धनादि द्वारा पापकर्मों के फलों से बच नहीं सकता।

सोये हुओं के बीच जाग्रत रहना चाहिए। आशुप्रज्ञ पण्डित को सोये हुओं का विश्वास नहीं करना चाहिए। काल घोर-भयंकर है, और शरीर निर्बल है, अतः अप्रमत्त रहकर सदाचरण करना चाहिए।

बन्धनवाले स्थान में सावधानी से रहना चाहिए। संयम का लाभ प्राप्त हो, वहाँ तक ही जीवन का पोषण करना चाहिए। असंयम का कारण आते ही जीवन का पोषण बन्द कर देना चाहिए।

अच्छी तरह से तैयार किया गया घोड़ा बख्तर धारण करके जिस प्रकार युद्ध में पीछे नहीं लौटता, उसी प्रकार स्वच्छन्द को रोकता हुआ मनुष्य ही निर्वाण-मार्ग से वापिस नहीं लौटता।

शाश्वतवादी कहते हैं कि जो आदमी पहले नहीं समझा वह बाद में भी नहीं समझ सकता। शिथिल आदमी काल से शरीर का भंग होनेपर और आयु के टूटने पर पछताता है।

सहज में ही विवेकप्राप्ति किसी को नहीं होती; अतः जाग्रत बनो! कामनाएँ छोड़ दो। संसार का स्वरूप समझ कर समभाव प्राप्त कर, असंयम से आत्मा को बचाकर अप्रमत्त भाव से विचरण करो।

मोह जीतने के प्रयत्न करनेवालों का बीच में बहुत से बन्धन आते रहते हैं। अतः उनमें बिना फँसे ही सावधानी से अप्रमादयुक्त बनकर प्रवृत्ति करनी चाहिए।

ललचानेवाले उन बन्धनों की ओर जाते हुए मन को शान्तभाव से समझकर रोकना जरूरी है। क्रोध को वश में लाना चाहिए; मान से दूर हटना चाहिए; माया का सेवन नहीं करना चाहिए; और लोभ का त्याग करना चाहिए।

वीतरागवाणी के ये प्रेरक धर्मसूत्र, विनोदकुमारके जीवन-सूत्र बन गए थे। आत्मसाधना में क्षणमात्र का प्रमाद न करना, इस असंस्कृत जीवन का संस्कार अवश्य करना और इसी जीवन में आत्मसाक्षात्कार करना–ये सब उनके जीवन ध्येय थे। इस ध्येय की पूर्ति के लिए ही, विनोकुमार मोक्ष मार्ग के पथिक बने; और आत्मसाधना के मार्ग पर जाते हुए, जो परिषह, उपसर्ग पड़े, उन्हें समभाव से सहन किया।

श्री विनोदकुमार को आत्मसाधना का मार्ग ही सही सुख का मार्ग ज्ञात हुआ था, अतः बचपन से ही उनकी वृत्ति और प्रवृत्ति आत्मसाधना की ओर मुड़ी हुई थी। उनके जीवन-क्रम को देखते हुए हमें उनकी स्पष्ट आत्मभावना की वृत्ति ज्ञात होती है। आगम में आत्मा को संबोधन कर, जो उद्-बोधन किया गया है, उसे अपने जीवन में चरितार्थ करते हुए वे मालूम पड़ते थे।

हे आत्मन्! तू अपनी ही आत्मा को निग्रह में रख। उसी प्रकार वर्तन करने से तू सर्व दुःखोंसे मुक्त हो सकेगा।

हे आत्मन्! तू सत्य को ही पहचान। सत्य की ही आराधना कर। सत्य वस्तु की प्राप्ति करने में ही प्रयत्नशील रह। स्वहित में तत्पर रह। सत्य धर्म का ही अनुसरण कर–इस प्रकार सत्य धर्म का पालन करती हुई आत्मा ही मृत्यु से पार जा सकती है, और श्रेय का दर्शन कर सकती है।

हे आत्मन्, तेरे अपने ही भीतर अनन्त, अक्षय, सुख-भण्डार भरा हुआ है। उस सच्चे सुख की तू खोज कर।

इस छोटी सी उम्र में खोज करते हुए भी विनोदकुमार आत्मसाधना के मार्ग पर मुड़े, और मोक्षमार्ग के पथिक बने। और अपनी जीवनयात्रा को सफल बनाया।

❀

गीत

दिवस बीते औ' बीते मास, भूली न आती हिय की बात,
विनोदमुनि की आती याद, सुमिरन करते होत आघात॥

बचपन से ही बोध प्राप्त कर, त्याग विराग की धुन लगी;
भौतिक सुख के त्यागकामी, थे, बालमुनि ये यश के नामी॥

बीराणी कुल में जन्मे थे, थे वीर कर्मकर्तन अधीर;
शील शौर्य में धीर वीर थे, घर घर की तोड़ी जंजीर॥

दुर्लभजीभाई के प्यारे थे, मणिबहन के नयनों के तारे;
विभवविलास से थे वे न्यारे गुणयुत प्यारे मुनि हमारे॥

राजसमान परम सुख छोड़ा, मानापमान भावों को मोड़ा;
तृष्णातन्तु मूल से तोड़ा, बालमुनि ने क्या नहीं छोड़ा?

फैलाते थे सुमनसुवास, जीवभ्रमर करते निवास;
गुंजन कर लेते उल्लास, मुरझा पुष्प! बने उदास!!

शासन का अमूल्य रत्न गया, रे! दैव, तूने क्या रे! किया!
निगल राहु रवितेज गया, अश्रुपूर्ण हिय बैठ गया!!

सुखी बनो तुम स्वर्ग पार, कर्म खपाकर पहुँचो पार;
करो प्राप्त आनन्द अपार, शाश्वत ज्योति करती पुकार॥

नंदन-ज्योति धामाणी

प्रकरण १०

मोक्षमार्ग का पथिक

आत्मसाधक को सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र्य इस 'रत्नत्रय' की आराधना का पाथेय लेकर मोक्षमार्ग का पथिक बनना ही पड़ता है।

आत्मविनोदी विनोदकुमार ने भी आत्मा को कर्मबन्धनों से मुक्त करने के लिए, 'रत्नत्रय' का पाथेय लेकर मोक्षमार्ग का पथिक बनने का निश्चय किया।

वस्तुस्वरूप को यथार्थरूप से जाननेवाले जिन भगवानों ने, सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप को मुक्तिमार्ग बताया है।

वीरवाणीरूप आगमों में सम्यग्ज्ञान की महिमा, बहुत गायी गई है। सम्यग् ज्ञान तो आत्मा का शाश्वत्—कभी नष्ट न होनेवाला दीपक है; इसी ज्ञानदीपक से ही वस्तुतत्त्व का यथार्थ भान पैदा होता है।

ज्ञान का अर्थ है जीवादि सकल पदार्थों की समुचित समझ। ज्ञानी पुरुषोंने सभी द्रव्यों, उनके गुणों, और उनकी सभी पर्यायो का यथार्थज्ञान उपदिष्ट किया है।

पहले ज्ञान और फिर दया-यह संयमी पुरुषों की स्थिति है। अज्ञानी भला अपना हिताहित कैसे जान सकता है? वह आचरण भी क्या कर सकता है? ज्ञानियों के पास श्रवण कर के ही क्या 'कल्याण' है, और क्या 'पाप'—यह ज्ञात हो सकता है। उन दोनों को सम्यक्तया जान कर जो कल्याणकारी जँचे, उसे अपनाकर आचरण करना चाहिए।

ज्ञान के सिवा आत्मकल्याण सिद्ध नहीं हो सकता। और

ज्ञान की सी पवित्र और कल्याणकारी वस्तु संसार में दूसरी नहीं है। सचमुच ज्ञान ही मृत्युलोक का अमृत है। इस कल्याणकर ज्ञान की सम्पत्ति से ज्ञान की आराधना करने से जीवाजीवादि तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। फिर वह ज्ञानशील जीवात्मा तंतु से अनुस्यूत सूची की तरह संसार में नष्ट नहीं होता, या फँस नहीं जाता, किन्तु ज्ञान, विनय, तप और चारित्र्य की उपलब्धि सुन्दरतया करता है। साथ ही साथ स्व-पर-सिद्धान्तों में कुशल बनकर, अहिंसा का आराधक बनता है। ज्ञानीजनों के ज्ञान का यही सार है कि सर्वात्माओं के प्रति अहिंसाभाव का विस्तार कर आत्मा की अहिंसाभाव में स्थापना करनी चाहिए।

ज्ञान के द्वारा अन्तःकरण और आत्मा शुद्ध होने से एवं तात्त्विक पक्षपात की साधक रागद्वेष की तीव्रता दूर होने से, आत्मा में सत्य की खोज के लिए जागरुकता उत्पन्न होती है। इसी को सम्यग्दर्शन या सम्यग्ज्ञान कहा जा सकता है।

इस सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने से ज्ञेयमात्र को वास्तविक रूप से जाननेकी, 'हेय' को छोड़ देने की 'उपादेय' का ग्रहण करने की, रुचि होती है, और उस रुचि के बल से धर्मतत्त्व में निष्ठा प्राप्त होती है। जीवादि तत्त्वों का अभ्यास करना, तत्त्वज्ञ पुरुषों की सेवा करना और मार्गभ्रष्ट या कुमार्गियों का परित्याग करना—ये सब सम्यक्त्व या सम्यग्दर्शन के लक्षण हैं।

सच्ची श्रद्धा के बिना चारित्र्य असम्भव है। और श्रद्धा उत्पन्न होने से चारित्र्य जरूर ही आता है। जहाँ सम्यक् श्रद्धा और चारित्र्य एक साथ उत्पन्न दीख पड़ते हैं, वहाँ भी साथ ही श्रद्धा उत्पन्न हुई होती है। जिस को श्रद्धा नहीं है, उसे ज्ञान भी नहीं है; और ज्ञान के बिना चारित्र्य का गुण कहाँ से हो

सकता है ? और जो चारित्र्य गुणरहित होता है उसे मोक्ष नहीं मिलता, और जो मुक्त नहीं होता उसे निर्वाण या सच्ची आत्मशान्ति नहीं मिलती।

सम्यक्त्ववाली—सच्ची श्रद्धा से युक्त ये आठ आचार होते हैं:—

१ निःशंकता—अपने सिद्धान्तों में शंकाराहित्य।
२ निष्कांक्षता—अन्य सिद्धान्तों में कांक्षा का अभाव।
३ निर्विचिकित्सा—अपनी साधना के फल में निःसंदेहता।
४ अमूढदृष्टि—दूसरे तीर्थकों की ऋद्धि देखने से अपने मन में स्थिरता और मूढता का अभाव।

ये चार आंतरिक गुण हैं।

५ उपबृंहण—धार्मिकों को प्रोत्साहन देना—प्रशंसा करना।
६ स्थिरीकरण—शिथिल बनते स्वधर्मियों को धर्म में स्थिर करना।
७ वात्सल्य—स्वधर्मियों की ओर वत्सलभाव से देखना।
८ प्रभावना—सद्धर्म—जैनधर्म—की प्रभावना करना।

—सम्यक्त्व के ये चार बाह्य गुण हैं।

सम्यग्दर्शन को प्राप्त करनेवालों के लिए शास्त्रकारोंने बताया है कि, 'सम्मत दंसी न करेइ पावं', अर्थात् सम्यक्त्वदर्शी पुरुष पापाचरण करता ही नहीं। क्यों कि तत्त्वार्थ में सम्यक् श्रद्धा रखने से जीवात्मा, भवसंसार के हेतुभूत मिथ्यात्व का छेदन कर लेती है, और सत्य के प्रकाश को फैलाती हुई वह उत्तमज्ञान, दर्शन और चारित्र्य के साथ खुद को जोडती है, और आत्मा को अच्छी तरह से आत्मा से भावित करती है, और विहार करती है।

ज्ञान का फल पापनिवृत्ति या चारित्र्य है। आत्मा की शुद्ध दशा में आत्मा को स्थिर रखने का प्रयास करना, अर्थात् सभी सावद्य प्रवृत्तियों का परित्याग कर निवृत्ति मार्ग की ओर जाना

ही पारिभ्य कहलाता है। पारिभ्य धर्म का मतलब आचारधर्म से है। विरति और अविरति यानी त्यागिता और गार्हस्थ्य के भेदों से आचारधर्म के भी दो भेद पड़ जाते हैं। जो आचार-धर्म का सपूर्णतया पालन करते हैं, उन्हें 'अनगार' या त्यागी कहा जाता है, और जो आचारधर्म का आंशिक पालन करते हैं, उन्हें 'आगारी' या गृहस्थ कहा जाता है।

अनागार धर्म–श्रमणधर्म–त्यागीधर्म–के दश प्रकार बताये गए हैं।

१ क्षमा–किसी भी प्रसंग में, यदि कोई कटु–अप्रिय–वचन कहे, तो भी क्षमा रखना–क्रोध न करना।
२ मुक्ति–बाह्याभ्यन्तर, बन्धनों से मुक्त होना। (निर्लोभता)
३ आर्जव–मन, वचन और काया की कुटिलता छोड़कर ऋजुता–सरलता रखना।
४ मृदुता अहवृत्ति से दूर रहकर नम्रता–मार्दव धारण करना।
५ लघुता–आंतरिक और बाह्य क्रोध, मान, माया और लोभ का आत्यंतिक त्याग कर लघुताका धारण करना। अपने आप मियाँ मिट्ठू बनना।
६ सत्य–मन, वचन और काया से सत्याचरण करना।
७ संयम–सत्रह प्रकार के सयम को धारण करना।
८ तप–उपवासादि बाह्य तपश्चर्या और प्रायश्चित्तादि आभ्यंतर तपश्चर्या को आत्मशुद्धि के लिए करना।
९ त्याग–त्याग वृत्ति को धारण करना।
१० ब्रह्मचर्य–नववाड़पूर्वक ब्रह्मचर्य का पूर्णतया पालन करना।

सक्षेप में हिंसा, असत्य, चौर्य, मैथुन, परिग्रह और रात्रिभोजन रूप, पापों का संपूर्णतया परित्याग करना ही सर्व विरति साधुधर्म है। सर्वविरत साधु और साध्वियाँ शास्त्रविहित मर्यादित धर्मोप-

करण ही-श्वेतवस्त्र, पात्र आदि ही रखती हैं, कि जो संयम साधना में उपकारक हों। तदतिरिक्त अपने पास वे साधुगण, दूसरी कोई भी चीज़ नहीं रखते। वास्तव में साधु महात्माओं की सच्ची संपत्ति तो साधुवृत्ति, संयम भावना और संयमवृत्ति ही होती है। जीवदया, धर्मप्रचार और आत्मोद्धार उनके जीवन के मुख्य कर्तव्य होते हैं। सती संत महाराज, जीवरक्षा के लिए मुख पर मुखवस्त्र रखते हैं, रजोहरण रखते हैं और संयमपालन में निमित्तभूत शरीर के निर्वाह के लिए, रूखा सूखा बचा हुआ भोजन, काष्ठ पात्र में याचना कर ले आते हैं। मस्तक के ऊपर कुछ रखते नहीं। किसी भी ऋतु में किसी भी अवस्था में पैरों में जूते आदि नहीं रखते।। केशलुंचन भी खुद ही कर लेते हैं। धन का नाम भी अपने पास नहीं रखते। ग्रामानुग्राम पदविहार कर, जनपद में धर्म प्रचार करते हैं। इस प्रकार मुनिवर लोग, सांसारिक संबंधों से बिल्कुल विलग रहकर अनासक्त भाव से धर्म प्रचार करते हैं। पाँच समितियाँ और तीन गुप्तियाँ – इन आठ प्रवचन माताओं की जो आज्ञाएँ है – उनका पालन साध्वियाँ और साधु; उपसर्गों और परिषहों को सहकर–प्राण के भोग से भी करते हैं।

जो आत्मार्थी साधक मुनिधर्म का स्वीकार करने में समर्थ हों, उन्हें अनगारधर्म का अंगीकार कर आत्मकल्याण के मोक्षमार्ग की ओर प्रयाण करना चाहिए; किन्तु जिनमें मुनिधर्म का स्वीकार करने में क्षमता न हो, उन्हें सम्यक्त्वपूर्वक बारह व्रतरूप श्रावक धर्म का अंगीकार कर महा मूल्यवान मानवजीवनको सार्थक बनाना ही चाहिए गृहस्थ के सामान्यधर्म के स्वीकार से पहले, प्रत्येक गृहस्थ का यह नैतिक कर्तव्य है कि, वह सदा कुव्यसनों का त्याग करे। जुआ खेलना, मांसभक्षण करना, मदिरापान करना, वेश्यागमन करना, चोरी करना, शिकार खेलना और परस्त्री-गमन करना आदि को निषिद्ध समझना चाहिए। जो मनुष्य

इन सात कुव्यसनों का सेवन करता है, उसे जनसमाज घृणा की ही दृष्टि से देखता है, और उसकी कुलप्रतिष्ठा धूल में मिल जाती है। अत इन व्यसनों का सर्वथा परित्याग कर, अपने जीवन को सुसंस्कृत बनाने के बाद श्रद्धापूर्वक शम, संवेद, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्तिक्य–इन सम्यक्त्व के लक्षणों से युक्त द्वादश व्रत रूप श्रावक धर्म का स्वीकार करना चाहिए।

१ निरपराधी त्रस जीवों की संकल्पपूर्वक हिंसा न करना।
२ स्थूल असत्यसंभाषण न करना, और हिंसाजनक सत्यभाषण भी न करना।
३ राजदण्डनीय और लोकनिन्दनीय स्थूल चोरी का किसी भी तरह न करना।
४ विवाहिता पत्नी के सिवा संसार की समस्त स्त्रियों को माता, बहन या पुत्री के समान मानना।
५ परिग्रह की मर्यादा बाँधना। मर्यादा के उपरान्त परिग्रह न रखना या न बढ़ाना।
—गृहस्थ श्रावक के ये पाँच अणुव्रत हैं।
६ दशों दिशाओं में जाने की जावजीव मर्यादा बाँधना।
७ भोगोपभोग सामग्रियों की मर्यादा बाँधना, और निरर्थक सावद्य और सपाप व्यापार का त्याग करना।
८ अनर्थदण्ड–निष्प्रयोजन की जाती हुई पापप्रवृत्तियों का त्याग।
—गृहस्थ श्रावक के ये तीन गुणव्रत हैं।
९ आत्मा में ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और समताभाव का पोषण करने के लिए प्रतिदिन प्रातःसायं 'सामायिक' करना।
१० भोगोपभोग सामग्री और दश दिशाओं का परिमाण प्रतिदिन बाँधना।

११ पर्व के दिनों में–अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावास्यादि दिनों में–हरएक प्रकार के प्रारंभ–समारंभ का त्याग कर, प्रतिपूर्ण पौषधव्रत करना।

१२ अपने घर आए श्रमण निर्ग्रन्थ अतिथियों को सुपात्रदान चौदह प्रकार से करना।

गृहस्थ श्रावक के ये चार शिक्षाव्रत हैं।

इस प्रकार से पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत–इन बारह व्रतों का निरतिचार पालन करना ही गृहस्थ श्रावक का धर्म है।

सच्चे जैन गृहस्थ को प्रत्येक व्यवहार अत्यंत प्रामाणिकता पूर्वक करना चाहिए। दया, क्षमा, परोपकार, दीनदुःखियों की सेवा, श्रमणों का सत्कार, धर्मशास्त्रों का स्वाध्याय, बहुत छोटे आरंभवाली आजीविका आदि मार्गानुसारी के सामान्य नैतिक गुणों का और कर्तव्य का पूर्णतः पालन करना चाहिए, और अपने सद्व्यवहार से अन्य जनों के ऊपर भी जैनधर्म की महत्ता की छाप लगानी चाहिए। संक्षेप में जैन गृहस्थ की दिनचर्या ही ऐसे प्रकार की होनी चाहिए, कि जिस के ज़रिए धर्मपालन में दृढ़ता आती रहे, और स्व–पर की कल्याणभावना बढ़ती जाय।

सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र्य–इस 'रत्नत्रय' की सम्यक् आराधना करने के लिए जीवन में सतत सम्यक् पुरुषार्थ करना पड़ता है। यह सम्यक् पुरुषार्थ ही मोक्ष का मार्ग है।

वासनाओं को क्षीण करने के लिए जरूरी आध्यात्मिक बल प्राप्त करने के लिए, शरीर को तपा कर, इन्द्रियों और मन को काबू में रखना ही 'तप' है।

सूत्रधर्म और चारित्र्यधर्म को जीवन में मूर्त स्वरूप देने के लिए तपःसाधना की ख़ास जरूरत रहती है। आत्मशुद्धि

के लिए तपश्चरण एक अमोघ साधन है। इस तप के बाह्य और आभ्यंतर—य दो प्रकार हैं।

बाह्य तप के छ' प्रकार :—

नोकारशी से छ माही तक उपवास करना—अनशन।

१ अनशन—अशन—आहार का त्याग करना।

२ ऊनोदरिका—क्षुधा से कम खाना।

३ भिक्षाचर्या—भिक्षाचरी—माधुकरी—कर के परिमित आहार प्राप्त करना और उसमें वृत्ति संक्षेप करना।

४ रसपरित्याग—घृत दुग्धादि विकारवर्धक रसों का परित्याग।

५ कायक्लेश—तापशीतता में या विविध आसनों से शरीर को तपाना।

६ प्रतिसंलीनता—इन्द्रियादि को नियमन में रखना।

आभ्यन्तर तप के छ' प्रकार :—

१ प्रायश्चित्त, २ विनय, ३ वैयावृत्त्य—सेवा—शुश्रूषा, ४ स्वाध्याय, ५ ध्यान और ६ उत्सर्ग—इन शरीरादि सर्वपुद्गलिक वस्तुओं में त्यागभाव।

इस प्रकार बाह्य और आभ्यन्तर तप के जरिए जो पराक्रम करता है वह तेजस्वी तपस्वी कर्म बन्धनों से मुक्त होता है।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, तप, वीर्य और उपयोग य सब जीव के 'निजगुण' रूप लक्षण है।

ज्ञान से मनुष्य तत्त्वों को जानते हैं। दर्शन से, वे तत्त्वों में श्रद्धा या रुचि उत्पन्न करते हैं। चारित्र्य रखकर सावद्य योग का त्याग कर अपनी मति को समताभाव में रखकर निग्रह करते हैं, और तप से आत्मशुद्धि की साधना करते हैं।

समस्त लोकसंसार का सार सद्धर्म है, सद्धर्म का सार ज्ञान

है; ज्ञान का सार संयम–चारित्र्य–है; और संयम–चारित्र्य और तप का सार निर्वाण–मोक्ष–है।

दान, तप, शील और भावना ये भी जीवन शुद्धि के साधन हैं। अतः आत्म कल्याण की साधना करने वालों को चाहिए कि वे ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप रूपी मोक्ष मार्गों के साथ ही दान, तप, शील और भाव रूप धर्ममार्गों की भी सम्यग् आराधना कर, आत्मश्रेय करें।

विवेकदृष्टि वैराग्यमूर्ति विनोदकुमार 'अर्थ' और 'काम' की कला से पराङ्मुख बन कर 'धर्म' और 'मोक्ष' नामक दो परम पुरुषार्थों की कलासाधना के द्वारा चतुर्थ कोटि के साधक बनना चाहते थे। और इसी लिए सांसारिक अर्थोपार्जन में और वैभवविलासों के अगाध साधन उपलब्ध होने पर भी उन में बिना फँसे गृहस्थयोगी बनकर अपना संपूर्ण जीवन आत्मसाधना और धर्मकला की उपासना करने में और उसीके प्रचार करने में निश्चित किया। और एक अध्यात्मयोगी के नाते, आत्मशुद्धि का लक्ष्य लेकर धर्म और मोक्ष नामक दो पुरुषार्थों की साधना की थी। परिणामतः स्वल्प काल में ही स्व–पर कल्याण की सिद्धि कर, अपना आध्यात्मिक जीवन सफल और धन्य बनाया था, और 'धर्मकलाकुशल कलाकार' पद को सार्थक किया था।

*

वैराग्यमूर्ति विनोदकुमार में धर्मसंस्कारों का सिंचन किस तरह हुआ, और मानव–जीवन, रूपगुण, भोगोपभोग, वैभव विलास आदि की विपुल सामग्री उपलब्ध होने पर भी वैराग्य के मार्ग पर–मोक्षमार्ग पर किस तरह मुड़े? ऐसा कौन प्रेरक धर्म-तत्त्व था, उसकी जिज्ञासा सभी को हो, यह स्वाभाविक है। इस जिज्ञासा के समाधान के लिए हमें विनोदकुमार के जीवन से लेकर साधनजीवन तक के संपूर्ण इतिहास की ओर निगाह डालनी चाहिए। वह बाद के प्रकरणों में संकलित किया गया है।

प्रकरण ११

पङ्कज जैसे अलिप्त ।

विनोदकुमार, मीरांणी कुटुम्ब का जीवनसौरभ फैलाता-हुआ श्वेत कमल ही थे। एक वैभवशाली धनाढ्य कुटुम्ब में जन्म लेने पर भी वैभवविलास से अलिप्त ही रहे थे। जल में पैदा होने पर भी जलसे ही अलिप्त ! भोगोपभोग का प्रत्येक पदार्थ उन्हें कीचड़ के समान ही लगता था। संसार पङ्क में वे फँसना ही नहीं चाहते थे। उन्हें विषय विषरूप, बन्धुबान्धव बन्धनरूप, सम्पत्ति विपत्तिरूप, भोगोपभोग रोगमय और कामभोग कर्दममय ही मालूम पड़ते थे। पङ्क में से जिस तरह पङ्कज उत्पन्न होता है, उस प्रकार वैभवशाली मीरांणी कुटुम्ब में धनधान्य, स्वर्णरौप्य, खानपान, वैभवविलास आदि सांसारिक साधन किसी को भी ईर्ष्या उत्पन्न करनेवाले होने पर भी विनोदकुमार को ये सब सांसारिक उपकरण दुःखमय और भवभ्रमण करानेवाले ही प्रतीत हुए। विनोदकुमार की यह वैराग्यभावना स्पष्ट करती थी कि, संसाररमण में वास्तविक सुख नहीं है, पर संसारत्याग में ही सच्चा सुख है।

स्वस्थ शरीरसंपत्ति, मनमोहक यौवन, अगाध धनसम्पत्ति, आज्ञाकारी अनुचरगण, खानपान, भोगोपभोग, वैभवविलास आदि साधनसामग्री की विपुलता प्राप्त होनेपर भी उन सभी कामभोगों की ओर अनासक्ति-विरक्ति का सम्पादन करना और उन सभी अर्थों को अनर्थ समझना और कामभोगों को कर्दम रूप समझकर संयम के मार्ग पर संचरण करने का निर्धारण संयमरूप जीवनसौरभ फैलाना ही पंक में से पङ्कज की उत्पत्ति मानी जाती है।

भोगी भ्रमर ही भोगोपभोगों में भ्रमण करते रहते हैं, और उन में रमण करने में आनन्द मानते हैं; पर जो अभोगी हैं, त्यागी हैं वे तो कामभोगों को विपुल प्रमाण में प्राप्त करके भी पीछे छोड देते हैं, और क्षणभर कल्पित सुख देनेवाले तथा अनन्त काल तक दुःख देनेवाले कामभोगों में रुचि न रखकर आत्मा के सच्चिदानन्दस्वरूप में वास्तविक सुख प्राप्त करने के लिए, त्याग वैराग्य का मार्ग ही ग्रहण करते हैं। विनोदकुमारने भी कर्दमरूप कामभोगों से अलिप्त बनकर आत्मा के अनन्त सुख को प्राप्त करने का निश्चय किया था। संयम ही जीवन है, और संयमसाधना ही जीवनसौरभ है। यह श्वेतकमल आधिव्याधि उपाधिरूप त्रिविधतापों से मुरझा जाने के पहले ही अपने जीवनसौरभ से अपने जीवन को और साथ ही अन्य लोगों के जीवन को भी सुवासित करना ही जीवन की धन्यता और सार्थकता है। विनोदकुमार वैराग्यभावना से भावित और संयम जीवन से सुवासित होने से उनका मन संसार में रत नहीं हुआ, उस मन को संसार बुरा लगा आखिर वीराणी कुटुम्ब का यह श्वेतकमल, जीवनसौरभ फैलाने के लिए ही विकसित हुआ था।

वैराग्यमूर्ति विनोदकुमार संयमसौरभ से अपनी आत्मा को सुवासित करने के लिए विरक्त होकर सयम मार्ग पर जाने का संकल्प करते हैं और सुकुमारता का परित्याग कर सहिष्णु बनने का और कामनाओं को वश न होकर कामवासना के ऊपर विजय प्राप्त करते हैं।

सयम साधनाकी पूर्वभूमिका के रूप में उन्होंने खानपान, मौज़शौक़, वैभव और विलास की बहिर्वृत्तियों को अंकुश में लाने का एक ओर प्रयत्न किया, और दूसरी ओर कामवासना,

लोलुपता, ममत्वबुद्धि आदि अन्तर्वृत्तियों को भी काबू में लाने का सक्रिय प्रयत्न शुरू किया।

विनोदकुमार विवेकशील होने के उपरान्त, जाग्रत आत्मावाले भी थे। व पूर्णतया जानते थे कि, सांसारिक प्रलोभन सामान्य होने पर भी बहुत आकर्षक होते हैं अत: सोये हुए संसारियों के बीच हमेशा सचेत, सचेत और सावधान रहना चाहिए। आशुप्रज्ञ आत्मज्ञ, आयु का भरोसा नहीं करता, क्यों कि काल निर्दय है, और शरीर क्षणभंगुर है। अत: भारंड पक्षी की तरह अप्रमत्तता से संयमी जीवन की साधना में तत्पर रहना चाहिए। इस प्रकार के संयम साधना के मार्ग पर जाने का संकल्प होने पर भी, एवं भोगशील और इन्द्रियजन्य सुखों की ओर स्वाभाविक अरुचि होने पर भी वैराग्यमूर्ति विनोदकुमारने अपनी मनोभावना को कुछ समय तक दबा कर, गुरुजनों की आज्ञा को मान देकर संयममार्ग की पूर्वभूमिका के रूप में संसार में रहे; पर अलिप्त भाव से और अनासक्त भावसे जलकमल की तरह।

ऐसा हरएक महापुरुष के जीवन में बनता है। मेघकुमार और जम्बूकुमार के मन में वैराग्य का रंग जमा था। वह विराग-रंग उन के प्रतिरोम में उतर गया था। किसी भी काल में वह रंग उतर या कम होने की संभावना नथी; पर मातापिता या गुरुजनों की इच्छा को मान देकर कुछ समय संसार में रहने पर भी जलकमल की तरह संयम साधनाकी तैयारी में ही समय व्यतीत किया था।

हमारे चरित्रनायक विनोदकुमारने भी संसार के बीच रहेने पर भी जीवन विकास के साधनोंको-ब्रह्मचर्य, दया, पाप भीरुता और संयम साधना-आदि को-अपनाया था। प्रतिदिन सामायिक, प्रतिक्रमणव्रत, प्रत्याख्यान, तप, त्याग आदि धर्मानुष्ठानों के नियम पूर्वक पालन करने के उपरान्त ज्ञानप्रकाश के लिए

अज्ञानमोह के विवर्जन के लिए राग-द्वेष के समूलनाश के लिए और एकान्त सुखरूप मोक्षरूप साध्य को सिद्ध करने के लिए विवेकशील विनोदकुमारने संयमसाधना की सार्थकता के लिए इन जीवन नियमों को धारण किया :-

१. सद्गुरु और ज्ञानवृद्ध पुरुषों की सेवा करना।
२. अज्ञानियों के संसर्ग से दूर रहना।
३. एकाग्र चित्त से सत्शास्त्रों का अभ्यास करना।
४. शास्त्रार्थ का चिन्तन करना।
५. चित्त की स्वस्थता के लिए धृति प्राप्त करना।

इस प्रकार विनोदकुमार, जलकमलवत् संसार में निर्लेप रहने पर भी अपने संयत जीवन सौरभ से आत्मा को सुवासित करते रहे।



वीतरागाय नमः

विनोदमुनि का अमर नाम, तुम गए महावीर प्रभु के मार्ग;
दीक्षा ली है सही दिलसेरे, करने आत्मा का कल्याण वि०
गुरुजीने तुमको ज्ञान दिया, हँसते हँसते अन्तर में लिया;
धन्य हैं माता-पिता के नाम, तुम गए महावीर प्रभु के मार्ग;
वैभव वैरागी का वेरी है, मायावी सम्बन्ध जहरीले हैं;
साधु जीवन है मेरा स्थान, तुम गए महावीर प्रभु के मार्ग
ज्ञान के तुम भंडार ही थे, दिल के तो दरियाव बने;
करने को अपने पूर्ण काज, तुम गए महावीर प्रभु के मार्ग
दया आयी तब दिल में रे, ध्यान पहुँचाया सिर में रे;
गौको बचाते, अन्तध्यान विनोदमुनिका
सुरेश कहता मैं वन्दना करूँ, रोज रोज तुम्हें याद करूँ;
तुमको वारंवार प्रणाम, तुम गए महावीर प्रभु के मार्ग

रचयिता-सूर्यकान्त पनजीभाई

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैनधर्म का संक्षिप्त इतिहास और श्री विनोदकुमार की शुद्ध गुरुपर्याय की पहचान।

द्वादशांग आगमों की विशेषता तो यह है कि यह 'आगम ज्ञान अनादि से चला आता है' यह सिद्ध करने की ये आगम पूर्ण शक्ति रखते हैं। इस शासन में पाटानुपाट महर्षि उत्पन्न हुआ ही करते हैं, और इन आगमों का मूलक्रम की अनुक्रमणी किसी भी समय में संकलित की जा सकती है। इस प्रकार की स्वभावगत रचना से यह शासन चला ही करता है। पाटानुपाट इतिहास रचना स्वाध्यायरूप से प्राप्त होती है। सिद्ध करनेवाले ग्रन्थों में से एक समूह है कि जिसे 'जिनांतरा' कहा जाता है। अर्थात् । चौवीस तीर्थंकरोंका-श्री आदिनाथ भगवान से लेकर, श्री श्रमण भगवन्त महावीर तक का काल दर्शक यन्त्ररूप से इस जिनांतरा का स्वरूप है। इस जिनांतरा का बोध करनेवाले, आगमों को द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से अत्यन्त रसमयरूप से समझ सकते हैं। युगपरिवर्तन का ज्ञान इन आगमों में से भव्य जीवों को प्राप्त होता है। उस के प्रभाव में जीव, बहुत समझदारी से विराग दशा प्राप्त कर सकते हैं।

द्वादशांगों में अनन्तकाल को समझाने के लिए भरत और ऐरवत क्षेत्रों में काल चक्र की रचना की है, जिस में अवसर्पिणी (उतरता हुआ काल) उत्सर्पिणी (चढ़ता हुआ काल) आते हैं, उन में एक अवसर्पकाल चक्र के। छः विभागों-आरों-से समझाया है। उन में श्री श्रमण भगवन्त महावीर जब

इस लोक में विचरते थे, उस काल को चतुर्थ आरा माना जाता है। श्री श्रमण भगवन्त महावीर का जन्म चौथे आरे के पूर्ण होने में पचहत्तर वर्ष और साढ़े आठ महीने बाकी थे, तब हुआ था। श्री भगवन्त महावीर की संपूर्ण आयु बोहत्तर वर्ष की है; अतः चौथे आरे के तीन वर्ष और साढ़े आठ महीने बाकी रहे, तब श्री भगवान् पावापुरी नगरी में निर्वाण-प्राप्त हुए।

श्री श्रमण भगवन्त महावीर के निर्वाण के बाद तीन वर्ष और साढे आठ महीने बीतने के बाद विषमरूप से पाँचवा आरा शुरू हुआ। शास्त्रकार उसके लक्षणों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि:-

चौथा आरा समाप्त हुआ, और पंचम शुरू हुआ, तब अनन्तावर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शना, अनन्ता, पर्यव हीन हुए मनुष्यों का पुण्य हीन बनता गया; अग्नि वायु के महा तूफान हुए। ज़मीन छोटी हो गई; मानवों और जानवरों के शरीर दुर्बल बन गए; ज़मीन की सरसता एकदम घट गई। चौथे आरे के अन्त में दश वर्ष में एक वृष्टि की जरूरत होती थी, उसके बदले में हरसाल वृष्टि की जरूरत हो, ऐसी ज़मीन रुक्ष हो गई। चौथे आरे में जन्म लेनेवाला पाँचवे आरे में मोक्षगमन करता था। किन्तु पाँचवे आरे में उत्पन्न, मोक्ष के लिए अयोग्य हुआ। श्री श्रमण भगवन्त महावीर के जन्म के बाद केवल चौसठ वर्ष केवलज्ञान की पर्याय चली। अन्तिम जंबू स्वामी के बाद केवलज्ञान का सूर्य अस्त हुआ; और विषमकाल गतिमान् हुआ।

केवलज्ञान के बाद कुछ काल में चौदह पूर्व के ज्ञानका भी विच्छेद हुआ। ऐसे ज्ञान के अभावसे धीरे धीरे धर्म दलबन्दियों में विभिन्न होने लगा। भगवान महावीर के बाद पाँच-छःसौ वर्ष के बाद, आज कहलाने वाले जैनों के फिरकों में 'दिगम्बर' मत शुरू हुआ। द्वादशांग में धर्म का स्वरूप इस प्रकार बताया है:-"धम्मो मंगलं मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो"।

अर्थात् धर्म उत्कृष्ट–मांगलिक–है कि जो अहिंसा, संयम और तप स्वरूप है। जिनप्रणीत होने से उसे जैनधर्म कहा गया है। उसमें पहछे कोई मतभेद न था।

काल प्रभावसे ज्ञान घटने लगा। और एक महाप्रज्ञावंत साधु को आगमरक्षा करने के लिए–आगमों का लेखरूप करने का विचार आया; क्यों कि स्मृतिशक्ति घटने लगी, अतः श्री देवर्धिगणी क्षमाश्रमण आचार्यने एक साधुसम्मेलन बनाकर आगमों को लेखित किया। क्यों कि इन आचार्य तक आगमज्ञान मूलपाठरूप से मदूष था। विषमकाल के प्रभाव से ज्ञानपर्याय भी कमी होती चली, और मानवों की प्रमादी दशा की वृद्धि हुई।

ज्ञान की हानि के उपरान्त जिस क्षेत्र में धर्म का बहुत जोर था, उस क्षेत्र में बारह दुष्काल पडे। मानव दुःखी हो गए, और जैनधर्म अनेक दलबन्दियों में विच्छिन्न हुआ, और शुद्ध धर्म का प्रभाव दब गया।

इस प्रकार क्रमशः श्री श्रमण भगवन्त महावीर के बाद दुःख की वृद्धि रूप काल दो हजार वर्षो तक चला।

इस प्रकार दो हजार वर्षों के–काल के बाद जैनधर्म में जागृति आई। तब अहमदाबाद में महापुरुष लोकाशाने जन्म लिया। उस युग में कालकी विषमता के प्रभाव में जैन शास्त्र भंडार कि जो श्री श्वेताम्बर तपगच्छ समदाय के हाथों में थ, जीर्ण हुए, और शास्त्रोद्धार की परम आवश्यकता प्रतीत हुई। उस समय के आचार्योंने यह महान् कार्य, उस समय के प्रसिद्ध लेखकुशल लोकाशा को सुपुर्द किया। (यह समग्र इतिहास कि जिस को स्थानकवासी शास्त्रभंडारों में 'पटावली' नाम देने आया है, जिज्ञासुओं को ज्ञान करने योग्य है) यह कार्य श्री लोकाशाने अपने ऊपर ले लिया, और अपनी कृतार्थता मानी; क्यों कि, शास्त्राभ्यास करने का उनको मौका मिला। श्री लोकाशा का शास्त्रोद्धार के लिए पैंतालीस

आगम सुपुर्द किये गए थे। लेखन कला के फल में श्री लोकाशा, शास्त्रों के पक्के अभ्यासी बन गए। अभ्यास करते करते उनकी दृष्टि में ऐसा आया कि, इन आगमों में से बत्तीस आगम, जैसे कि-ग्यारह अंग, बार उपांग, चार मूलसूत्र चार छेदसूत्र और एक आवश्य-सत्र मिलकर पचीस शास्त्र निर्ग्रन्थ प्रवचनरूप केवली भगवानभाषित और श्रीगणधरों ने ग्रथित किये हुए हैं। जब कि तेरह आगम आचार्य रचित हैं। अतः शास्त्राभ्यास करते वैराग्य आया (लेखकने गुरुकृपा से ऐसी धारणा की है, कि उस समय के आचार्यों की आज्ञा प्राप्त कर सभी शास्त्रों की दो दो कापियाँ कर, एक कापी श्री संघ को दी, और एक कापी अपने अभ्यास के लिए रखी थी।) कहने में आता है कि ऐसे उत्तम अभ्यास के फल में श्री लोकाशा की आत्मा महा वैराग्य भावों में प्रणत हुई, और दीक्षा ली। चालू संघ से अलग हुए अतः वे ढूंढक (संशोधक) कहलाने लगे। (लोकाशा की विशेषता यह है कि अपनी बुद्धिका एक भी ग्रन्थ न बनाया, अर्थात् स्वपूजन की भावना उन्होंने न रखी। यथास्थित बत्तीस सूत्रों का ही प्रकाशन किया। वह भी ऐसा बताकर कि 'इन शास्त्रों में मूर्तिपूजा का विधान नहीं है। इन बत्तीस आगमों के न्याय से साधु का प्रवर्तन होना चाहिए। साधुओं से अपने लिए आरंभ से उत्पन्न हुए आहार और स्थान भोग्य नहीं हैं। साधुओं का केशलुंचन अवश्य करना चाहिए। लोकाशा को काल अनुकूल हुआ, और उनके जीव 'ढूंढक' मत के अनुयायी बने, अनेक दीक्षाएँ हुई, उनमें चँवालीस महाविद्वान हुए। उन्हें लोकाशाने भारतवर्ष के अलग अलग बाईस क्षेत्रो में विचरण कर ढूंढक मत को फैलाने की आज्ञा की। लोकाशा की आज्ञा मान कर दो दो के गुट में इन चँवालीस पुरुषों ने मूल शुद्ध धर्म को भारत वर्ष में प्रसिद्ध किया, और अनेक जीवों ने दीक्षा ली। थोडे समय में ढूंढक मत के नाम से मूल शुद्ध धर्म के

अनुयायियों की संख्या बड़ी बन गई, और शुद्ध धर्म बाईस-टोलों के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बाकायदा शासनस्थापना हुई, और बाईस टोलों के प्रत्येक टोल में आचार्य की स्थापना हुई। व्याख्यान शैली में टीका की शुद्धता बन्द हुई। व्याख्यानकार केवल व्याख्यान श्रेणीमें आगम का पाठ और अर्थ ही पढ़े। हर एक जीव श्रद्धा से व्याख्यान श्रवण करे, और श्रद्धापूर्वक ज्ञानाभ्यास करे, और धर्मक्रियाएँ करे, शंकास्पद प्रश्न के आने पर आचार्यों के द्वारा निराकरण हो–ऐसी व्यवस्था हुई। साधु को पत्रव्यवहार नहीं करना चाहिए। अनिवार्य संयोगों के बीच शासनानुकूल पत्रव्यवहार श्रावक करें, और आवश्यकतानुसार साधुओं की सम्मति ले, वह सम्मति भी, साधुलोग, संयम को लेश भी धक्का दिये बिना ही दें। व्याख्यानकार निर्देशक हो। अगर प्रश्न हो, तो पाट धारण करनेवाले साधु उत्तर दें; और प्रश्न गहन हो, तो उत्तर दें कि, इसका उत्तर देनेका कार्य आचार्य का है। आचार्य भी प्रश्नोत्तर में निर्दोष भाषा का व्यवहार करें कि जिस से उत्सूत्र न बना जाय। वे कहें कि, "भाई! यह बात शास्त्रों में नहीं है, पर शास्त्र दृष्टि से देखने पर मेरी धारणा ऐसी है। अगर तुम्हें यह शास्त्रानुकूल न लगे, तो सत्य शिक्षा प्राप्त कर उसे ग्रहण करो," अन्यथा इस प्रकार भी वे उत्तर दे सकते हैं – "इस बात को गुरुपरम्परा या जिनव्यवहार के साथ सम्बन्ध है।" दूसरे की आत्मा की आगम श्रद्धा नष्ट हो, ऐसी भाषा का आचार्य कभी प्रयोग न करें। झगड़ों में शासन को विभक्त करानेवाली भाषा त्याज्य समझी जाय। आचार्यों की आज्ञानुसार आज्ञायें रहकर शासन चले, और श्रद्धा की नींव पर प्रतिष्ठित रहे यह आवश्यक है।

इस प्रकार का शासन साढ़े तीन सौ वर्षों तक चला। अनेक ज्ञानी और ध्यानी पाटानुपाट उत्पन्न होते गये; अनेक आत्माओं ने स्वकल्याण की साधना की। यहाँ तक स्थानक के विषय में

इस धर्म की परम शुद्धता थी। उसके बाद द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावनारूप निमित्त के अन्दर श्रावकों को धर्मकरणी करने के लिए स्थानकों की रचना होने लगी, और ऐसे स्थानकों को भोगने का साधुओं ने शुरू किया। साधुओं के लिए बनाया गया स्थानक स्थानकवासी साधु भोग्य नहीं समझते, पर ग्रहस्थों से याचना कर स्थानक का उपभोग करते हैं।

प्रायः दो सौ वर्षों के पहले श्री धर्मसिंहजी महाराज हुए, उनकी पाटानुपाट सम्प्रदाय बहुत पभावशाली बना है, उनमें से आज श्री १००८ ज्ञानचन्द्रजी महाराज के सम्प्रदाय के श्री समर्थ-मलजी महाराज हैं, कि जो अब खीचन में विराजमान हैं, जो स्याद्वाद के प्रखर ज्ञानी माने जाते हैं। इन महर्षि के लिए मार-वाड, मेवाड, राजपूताना आदि प्रदेशों के लोगों को और उन्हें पहचाननेवालों को बहुत मानममत्व है। श्री विनोदमुनि का भी उनके प्रति बहुत मान था।

आधुनिक समय में श्री धर्मसिंहजी सम्प्रदाय में पाटानुपाट श्री ताराचन्दजी महाराज के शिष्यगण में श्री सौभाग्यमलजी महा-राज हैं; उनके शिष्य श्री लालचन्दजी महाराज बहुत तपस्वी के नाते प्रख्यात हैं। (इन दो साधुओं का सम्पर्क, श्री विनोदकुमारने दीक्षा ली,तब खीचन में हुआ था, जिसका वर्णन बाद में आनेवाला है।)

श्री विनोदकुमार की कुल पर्याय में, काठियावाड़ के साधु सम्प्रदाय में श्री डूँगरशी स्वामी के पाटानुपाट साधुओं का सम्य-क्त्व चला आता है। इस सम्प्रदाय में हाल में पू. श्री. १००८ पुरुषोत्तम महाराज आचार्य हैं। उनके पास श्री विनोदकुमार ने पिछले वर्षों वेगवळ के चातुर्मास में ज्ञानाभ्यास किया था। व्याख्यानवाणी का बहुत लाभ लिया था, और दीक्षा लेने के लिए वातचीत हुई थी, इसका वर्णन भी इस ग्रन्थ में शामिल किया गया है।

प्रकरण ११

सिद्धान्तवाद

"श्री विनोदकुमार उत्तम वैराग्यगुणमें प्रवेश करने के लिए आगमों की आराधना करते हैं।"

"प्रत्येक जीव, अपनी वर्तमान क्रिया में अपना भविष्य बना रहा है।"

"उपर्युक्त सूत्र को सिद्ध करता हुआ मुनियोग्यता-पूर्ण क्रमशः उन्नति शील जीवन"

सिद्धान्त की व्याख्या।

केवल ज्ञानी अन्य होने से वा प्रमाणरूप है, और तीनों कालों में उसी स्थिति में रहता हो, और निरञ्जन निराकाररूप सिद्ध स्वरूप प्राप्त करना जिसका ध्येय है, वह सिद्धान्त कहलाता है।

तत्त्व एक होने पर भी ससारी जीवों के विविध क्षयोपशम के कारण से स्वभावगत अनेक भेदरूप बन जाता है, क्यों कि भाषा नयाधीन है, और ज्ञान अनन्त प्रमाणरूप है।

सिद्धान्त को स्पष्ट कर, अनुयायियों का आगम-जिनवाणी-रूप-श्रद्धा करने की आज्ञा देते हैं। इस नियम के अनुसार स्थानकवासी संप्रदाय के अनुयायी बत्तीस आगमों में रमण कर सकते हैं, और उन आगमों की श्रद्धा उनका व्यवहार सम्यक्त्व है। इस न्याय से श्री विनोदकुमार का सम्यग्दर्शन बिल्कुल शुद्ध है कि जिसे बत्तीस आगमों के ज्ञान के सिवा कोई भी बाहर की दशा स्पृष्ट न हुई।

जो स्थानकवासी, स्वधर्म के सिद्धान्तों को छोड़कर बत्तीस आगमों के बाहर नजर करते हैं, वे भी सुयगडांग सूत्र के

इक्कीस वें 'अणाचार' अध्ययन के न्याय से अब्रह्मचारी माने जाते हैं। अतिकठिन महाव्रत का पालक भी स्व आगम में श्रद्धा विरहित हो, तो ऐसे शंकित जीव का पहला 'मिथ्यात' गुणस्थान छूटा ही नहीं है। ऐसे जीव समाज के लिए भयंकर होते हैं। और समाज को अनेक दलवन्दियों में नियुक्त होना पड़ता है। धन्य है विनोदकुमार को, कि जिन्हों ने अपने कुलगुरु एवं स्वगुरु के द्वारा अपनी आत्मा में अत्यन्त वैराग्य गुण प्रकट कर के अपने आप को आगम का सही श्रद्धावान् वनाया।

श्री श्रमण भगवन्त महावीर की द्वादशांगवाणी में शास्त्राभ्यासी जीवों के लिए आचार्य, उपाध्याय, गणी, बहुसूत्री आदि अनेक पदवियाँ देखी जाती हैं, पर पण्डित शब्द निम्नांकित गुणवालों के लिए प्रयुक्त होता है।

१ षट्काय जीव के रक्षण में जिन आत्माओं का जीवन अर्पण हुआ है, ऐसी आत्माओं को आगम के अनेक स्थानों में 'पण्डित' कहा गया है।

२ शुद्ध निर्दोष आहारजल और स्थानक भोगनेवाले साधुओं को 'पण्डित' कहा गया है।

३ बाईस परिषहों को जीतनेवालों को 'पण्डित' कहा गया है।

४ आगमों की आज्ञानुसार चलनेवालों को 'पण्डित' सम्बोधन है।

५ आठ प्रवचन माता–पाँच समितियों और तीन गुप्तियों–का आराधक भी 'पण्डित' माना गया है।

६ करुणा रस स्वामियों को 'पण्डित' कहा गया है।

७ विनय विवेकादि गुण अपनानेवालों को 'पण्डित कहा है।

८ कामक्रोध मोह मत्सरादि के ऊपर विजय प्राप्त करने वाले भी 'पण्डित' ही हैं।

९ आगमों के प्रवचन जिनको श्रवण प्रिय हों, वे भी 'पण्डित' माने गए हैं।

१० धर्मभावना में जिन्दगी का अन्त लानेवालों को भी 'पण्डित' कहा गया है।

११ 'पण्डित मरण' से मरकर आत्मकल्याण करनेवाले जीवों को भी 'पण्डित' पदवी दी गई है।

ऐसे उत्तम परिणामों में परिणत आत्माएँ चाहे ससार में हों या साधु अवस्था में ससार से पर हों, उन्हें पण्डितपदवी प्रदान किए देते ही हैं।

उसकी प्रतीति के लिए निम्नलिखित मूल्यवती मुद्राएँ, सांसारिक मनुष्यों का इस विषय में वर्तमान अज्ञान दूर करने के लिए लेखक पेश करता है।

श्री उत्तराध्ययन-सूत्र का अध्ययन चौथा 'असंखयं' है। 'असंखय जीविय मा पमायए' की अन्तिम गाथा तेरहवीं है कि—

जे संखया तुच्छ परप्पवाई,
जे पिज्जदोसाणुगया परज्झा।
एए अहम्मे त्ति दुगुंछमाणो,
कंखे गुणे जाव सरीरभेउ ॥

भावार्थ :— जो कोई असंस्कृत होने पर भी संस्कृतभाषा भाषी हैं, समकित गुणों से रहित, असूत्र शास्त्रों के प्रणेता, मिथ्या दृष्टिवाले तुच्छ बुद्धि के स्वामी और रागद्वेषपक्षीभूत पड़े हैं, उन्हें अधम हेतुभूत मानकर सम्यक्-दृष्टि-युक्त जीव उनकी सगति छोड़ देते हैं, और मरणतक अपने निश्चित धर्मसिद्धान्तों में मग्न होकर दृढ़ छोड़ते हैं।

परमार्थ—अनुयोगद्वार सूत्र के प्रथम स्कन्ध में, द्रव्यभाव के विषय में मतरज्ञान रचना है। सिद्धान्तवाद का काठक है। उसमें 'आगम नो आगम' शब्द की भावरचना से जो ज्ञान देने

में आया है, उस न्याय के अनुसार आगम यह प्रतिपादित करना चाहते हुए देखे जाते हैं कि, जिस व्यक्ति में शुद्धधर्म के विषय में, मात्र जोड़ने की चित्तप्रसन्नता प्रवर्तमान है, ऐसे व्यक्ति को 'सम्यक्त्वी' समझना चाहिए। इस न्याय से श्री विनोदकुमार की आत्मा, श्री श्रमण भगवन्त महावीर के आगम प्रवचनों में अपनी चित्तप्रसन्नता को विस्तृत बनाती है। और उनकी नज़र को साधुवेश भाता है। वर्णसांकर्यरहित शुद्धागम की व्याख्यानवाणी का वे लाभ प्राप्त करते हैं। ऐसी प्रवचन वाणी को सुनकर अपनी आत्मा को वे पवित्र बनाते हैं। उसके प्रमाण में श्री गोण्डल सम्प्रदाय के श्री १००८ पूज्य आचार्य श्री पुरुषोत्तमजी महाराज का सत्संग करते हैं। समस्त चातुर्मास ज्ञानाभ्यास करते हैं। इन मुनिवर की कुलपरम्परा शुद्धरूप से चली आती है। उसी के लक्षण इन मुनि जी में भी चले आये हैं। वह तो जगविख्यात बात है।

और भी जिस क्षेत्र में और जिस साधु कुल में श्री विनोदकुमार की दीक्षा होती है वह साधुकुल आगमन्यायानुसार विशुद्ध ही है। वह सम्यक् चारित्र्य का घर है। अपनी कुलपरम्परा से प्रकाश प्राप्त कर, वर्तमान में पूजनीय आचार्य श्री समर्थमलजी महाराज सूर्यचन्द्रवत् प्रकाशमान हैं। इन सब बातों का विवरण, बाद के प्रकरणों में आनेवाला है।

शुद्ध सम्यग्दर्शन की पहचान यह है कि, वह सदैव निःशंक रहता है। केवल बुद्धि प्रदर्शन से रहित साधुजनों को 'पूज्य' कहलाने की लालसा कभी नहीं हो सकती। परन्तु आगमस्थित परमात्मा के शुद्ध स्वरूप का, श्रोताजनों को परिचय कराने की ही तमन्ना उनमें संभाव्य है, और वह भी आगमन्याय से अनुकूल रहकर ही।

इस विषय में श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र के दसवें अध्ययन की

इकतीसवीं गाथा निम्नांकितरूप से है। यह मननीय है। इस गाथा में अज्ञान तिमिर का नाश करने की परमशक्ति है। वर्तमानकालीन बातें गल्प ही हैं। उन्हें तिरस्कृत करने, और शुद्ध मार्ग का आराधन करने के लिए भगवान् गाथा में आदेश देते हैं कि:-

गाथा :-

न हु जिणे अज्ज दिस्सई, बहुमए दिस्सई मग्ग देसिए।
संपइ नेयाउए पहे, समयं गोयम मा पमायए।

भावार्थ — चाहे वर्तमानकाल में भी तीर्थंकर देव की उपस्थिति न हो (अर्थात् उपस्थिति नहीं है) फिर भी शास्त्रों की उपस्थिति तो है ही। जो शास्त्र अत्यन्त मानने योग्य हैं। मुक्ति का मार्ग वे ही हैं। अतः हे गौतम! समय का प्रमाद नहीं करना चाहिए।

परमार्थ — शुद्ध धर्म के शोधकों के लिए यह गाथा बहुत मूल्य रखती है, क्यों कि हरएक सम्प्रदाय में आज "भगवान नहीं हैं," ऐसे मायावी ग्रन्थों की रचना कर, भोले जीवों को भरमाकर धर्म से भ्रष्ट करने में आता है। मनुष्य लोक में जब भी भगवान होते हैं, तब श्रद्धालु आत्माओंने शुभज्ञान के बल से उन्हें पहचाना है। समस्त जगत एकसाथ परमात्मा के एक समान स्वरूप को स्वीकृत करे, ऐसी घटना कभी बन नहीं पाती।

जैनागमों में भी सुयगडांगनी सूत्र का प्रथम अध्ययन 'स्वसमय, परसमय' है, और उसी सूत्र के दूसरे 'श्रुतस्कन्ध' का श्री आर्द्रकुमार का अध्ययन है। जिनका ज्ञान प्राप्त करने से समझमें आ सकता है कि, जिस काल में भगवान् स्वयं विराजमान हों, फिर भी धर्म के विषय में झगड़ा तो उपस्थित ही है। स्वयं महावीर के समय में भी शुद्ध ज्ञानदृष्टि

से पहचाननेवालों की संख्या कम थी। महावीर को उनके पट्टधरोंने विशेषता से पहचान कराई। और अतः सिद्ध होता है कि भगवान का स्वरूप शरीर से नहीं, पर वाणी से सिद्ध होता है। उस स्वरूप को आगम कहा जाता है।

शुद्ध धर्म की पहचान यह है कि, वह परम्परासे चलता आता है, और उसमें प्रवृत्त लोग, पाटानुपाट सिद्धान्त का स्पर्श कर, धर्म की पहचान करानेवाले होते हैं। व्याख्यानकार आगमों के निर्देशक होते हैं। द्वादशांग में भी स्वयं भगवान महावीर अपने आपको 'निर्देशक' के नाते मानते हैं। अहंभाव से युक्त भाषा आती ही नहीं है। उस के प्रमाण में निम्नांकित भाषा दृष्टान्त दिया जाता है:- 'आणु पुव्वीं सुणे हमे'- "हे शिष्य, तुम मुझे अनुक्रम से कहते हुए सुनो"। 'पण्णत्तं तं जहा' "हे शिष्य, जैसा है, वैसा ही कहता हूँ।"

श्री सुयगडांग सूत्र के छठे अध्ययन 'वीरस्तुति' की दूसरी और तीसरी गाथा, इस कथन के समर्थन में बहुत उपयोगी है:-

गाथा:- कहं च णाणं कह दंसण से,
सीलं कहं नायसुतस्स आसी;
जाणासि णं भिक्खु जहातहेणं,
अहासुतं बूहि जहाणिसं तं॥

अर्थ:- जम्बूस्वामी सुधर्मास्वामी से विनयपूर्वक पूछते हैं कि, हे भगवन्, श्री श्रमण भगवंत महावीर का ज्ञान, दर्शन और शीलाचार कैसे थे। वह आप पट्ट शिष्य होने से जानते हैं, अतः यथास्थित, (कम, अधिक या विपरीत रूप दोषों से रहित) यथा-श्रुत और यथाधृत स्थिति में कहने की कृपा कीजिए।

उत्तर में श्री सुधर्मास्वामी कहते हैं कि:-

गाथा:- खेयन्नेयेसे कुसले (सुपन्नेसापा) मेहसी,
अणंतनाणीय अणंतदंसी॥
असस्सिणो चक्खुपहठियस्स, जाणाहि धम्मं च धिइं पेचहि॥

भावार्थ — संसार के सभी जीवों का सूक्ष्म दृष्टिसे अवलोकन करने से मालूम पड़ा कि, इस संसार का स्वरूप बिल्कुल दुःखमय है। उसी समय भगवान की आत्मा में परम वैराग्य उत्पन्न होता है, और वे दीक्षा का ग्रहण कर लेते हैं। साढ़े बारह वर्षों तक तप कर कर्मों का कर्तन करते हैं। अतः उनके जैसा कर्मकर्तनकुशल दूसरा कोई नहीं है। क्यों कि साढ़े बारह वर्षों में केवल दो घड़ियों तक ही उन्होंने निद्रा ली। इस तप के फल में प्राप्त हुआ ज्ञान अनन्त है। उसे केवल ज्ञान और केवल दर्शन कहा जाता है। अतः उनके कहे आगमों को तू अपने मानचक्षु बनाकर, आगमों को आगमों से सिद्ध कर भगवत्प्ररूपित धर्म के और भगवान के अनन्त धीरज के दर्शन कर।

इस कथन के अनुसार शासन का सेनाधिपतित्व, वर्तमान काल में पाँचवें आरे के अन्त तक भी श्रमणभगवान महावीर का है। पाटानुपाट आगमों में जिनवाणी के नाते 'आगम' मानने योग्य हैं। ये आगम बत्तीस ही हैं, ऐसा लोंकाशाने शास्त्रानुसार बताया है। जिन आगमों में 'अनन्तदया' स्वरूप भगवान की वाणी है, ऐसे श्री आचारांग, श्री दशवैकालिक आदि अहिंसामय शास्त्रों का बोध करने का साधुओं का व्यवहार, परम्परा से चला आता है।

इस परंपरा के अनुसार वर्तन करनेवाले का, धर्म का ज्ञान शुद्ध सम्यग्दर्शन माना जा सकता है।

ऐसे विषमकाल में भी विनोदकुमार माता के गर्भ में आते हैं। और बत्तीस आगमों में अपनी आत्माकी स्थापना कर, श्री अरिहन्त के परंपरा शिष्य बनते हैं। दीक्षा उनकी स्वयंप्रेरित हुई है। क्षयोपशम में माता के गर्भ में आने पर भी इस पुरुष को अंतर्पक्षेप के वातावरण की अब्रमाम भी हवा लगी नहीं है।

उसका प्रमाण यह है कि, इस पुरुष को अभक्ष्य का परम तिरस्कार है। इसका वर्णन आगे के प्रकरणों मे किया गया है।

द्वादशांग घंट वजाकर कहते हैं कि-आत्मा का कल्याण, केवल भाषाज्ञान से नहीं होता। मोक्ष मार्ग में तो आत्मा के भाव प्राधान्यपूर्वक काम करते हैं। उसके विषय में निम्नांकित गाथा देखना जरूरी है। श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र का छठा अध्ययन, गाथा ग्यारहवीं इस प्रकार है:-

गाथा:-न चित्ता तायए भासा,
कुओ विज्जाणु सासणं;
विसण्णा पावकं मे हिं,
बाला पंडिय माणिणो ॥

भावार्थ:-संस्कृत या प्राकृत चाहे कितने ही प्रकार का ऊँचा भाषा ज्ञान हो, पर वह कभी तारिणी बन ही नहीं सकती। ऐसे अनेक पापकर्मों के विषय में दबे हुए हैं कि जो केवल भाषाज्ञान से ही अपने को पंडित कहलाते और कहते हैं।

अनुयोगद्वार सूत्र प्रकरण, प्रथम आवश्यक देखिए:-श्री भगवान लौकिक शास्त्रों के नाम देते हैं, उन में व्याकरण को लौकिक शास्त्र कहा गया है, क्यों कि लोकोत्तर मार्ग में व्याकरण को प्राधान्य संभाव्य नहीं है, क्यों कि धर्मों के तत्त्वों का मुख्य सम्बन्ध शुद्ध श्रद्धा और आचार्य के साथ होता है। अतः यह सिद्ध होता है कि, केवल भाषाज्ञान लेकर ही श्रद्धावान होने का कोई नियम नहीं है। उसके प्रमाण में आगे के प्रकरणों में कथित, इस ग्रन्थ के नायक श्री विनोदकुमार का जीवन ही प्रत्यक्ष प्रमाण है। और दर्पण में नजर करने की सी बात है। भाषा वैज्ञानिक तो अनेक भ्रमण करते हैं, जगत के सामान्य व्यवहार में भी आचार विचार का पूजन है व्यवहार में भी लेनदेन शुद्ध व्यवहारियों की ही प्रशस्य मानी जाती है। भाग्यवानों के

द्वार पर दुःख-दूर करने के लिए लौकिक-विद्वानों के जूते भी टूट-जाते हैं। अतः ऐसा कोई नियम नहीं है कि पढ़ने से ही सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है यदि ऐसा होता तो लौकिक विद्वानों को भाग्यवानों का दासत्व करने का समय ही नहीं आता।

उत्तराध्ययनजी सूत्र के अट्ठाईसवें 'मोक्षमार्ग' अध्ययन के न्याय से द्वादशांग आदेश देते हैं कि,

जिस जीव स्वभाव में कुदृष्टि को स्थान नहीं है, और जो अपने मत का विशारद भी नहीं है, पर अपने मतानुसार प्रवर्तनशील जीवों की धर्मानुष्ठान क्रिया की ओर आत्मा आकृष्ट होती हो; जैसे—साधुवेश के दर्शन होते ही उस वेश और शुद्ध आचार की ओर ही ऐसे जीव का आकर्षण होता हो, तो ऐसे जीव को संक्षेप-रुचिस्वामी और सम्यग्दर्शनी मानना चाहिए।

व्याकरण के शब्दार्थ तो पांच पचीस होते हैं, पर आगमों के यानी द्वादशांग के एक-एक प्रवचन में अनन्त-अर्थ भरा हुआ है, उसका प्रमाण यह है कि, इस आगम के महान् पुरुष एक एक प्रवचन के ऊपर व्याख्यान करके शास्त्रों में आत्मभाव की रमणता करा कर श्रोताजनों की धर्मरुचि बढ़ा सकते हैं केवल एक एक गाथा के अर्थ करने में ही प्रखर-विद्वान चातुर्मास का समय पूरा करते हैं। ऐसे विद्वानों की श्रेणी 'निर्देशक' स्वरूप से होती है। अर्थात् आगमों को वे आगमों से ही सिद्ध करते हैं। ऐसे महान् व्याख्यानकारों की प्रसादी गुरुपरम्परा से प्राप्त हुई होती है। देखिए उत्तराध्ययनजी सूत्र, अध्ययन प्रथम, गाथा ४० से ४८।

प्रवचन स्वयं प्रमाणस्वरूप है। उसे सिद्ध करने के लिए व्याकरणादि ग्रन्थों की अपेक्षा श्रद्धास्वरूप तप बहुत कीमती-सम्पित्स्वरूप होता है। आराधक जीवों का यह रक्षक है। उसके खास प्रमाण में-

श्री श्रमण भगवन्त महावीर की दीक्षा के
प्रथम साढे बारह वर्ष हैं।

श्री प्रभु के इस जीवन से सिद्ध हो जाता है कि, भाव के साथ शुद्ध आचरण के परिणाम से जीवों को शास्त्रार्थ का विपुल ज्ञान होता है। उस के साक्षीरूप में श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र का चौवीसवाँ अध्ययन, आठ प्रवचन माताओं का है, जिसकी तीसरी गाथा निम्नानुसार है।

गाथाः—

एयाओ अट्ठ समिईओ समासेण वियाहिया
दुवालसंग जिणक्खायं, मायं जत्थ उ पवयणं।

अर्थात्— आन्ठ्रवचनमाताओं की आराधना में बारह अंगों के भाव शामिल हैं।

नोट—भगवान का यह उपदेश 'पढमं नाणं तवो दया' की श्रेणी के अर्थ उत्पन्न कर, स्याद्वाद के विरुद्ध ग्रन्थ रचयिताओं को अपनी गलती की ओर नज़र करने की प्रेरणा देता है।

उपर्युक्त तत्त्व के विशेष समर्थन में इस ग्रन्थ के प्रारंभ में दिये हुए थइथुइ मंगल पाठ को बहुत उपयोगी समझना चाहिए; और इतना ताक़तवर है कि, विशेष ज्ञान के सिवा भी केवल इस पाठका ही आराधक दिव्य चक्षुओं की प्राप्ति कर, अनन्त सुख को प्राप्त करने की ताक़ात से युक्त बन जाता है। अतः लेखक की पाठकगण से विज्ञप्ति है कि, संसार चक्र में अगर न फँसना हो तो ऊची कोटि के स्याद्वाद के स्वरूप को समझने के लिए बत्तीस आगमों को गृहीत करना अनिवार्य ही है, अतः बहुत पुण्य के फल में ये आगम प्राप्त हुए हैं। ये आगम अनन्त काल में भी प्राप्त होने के लिए मुश्किल हैं। उनकी आराधना कर लो। द्वादशांगवाणी अमृत-

रसमय है। छद्मस्थ की बुद्धि नवनीतविहीन छाछरूपिणी है। द्वादशांगातिरिक्त इतर ज्ञान मोहमायाभासरूप है; अत इस लेखक की विज्ञप्ति की ओर ध्यान देना बहुत जरूरी है।

सिद्धान्तवादी मनुष्यों का आचार कैसा होना चाहिए।

(१) एक मनुष्य साधुओं के समूह में आचार्यत्व रूपसे विचरण करता हो, ऐसे मनुष्य को कर्म सयोग से चारित्र्य पालन दुष्कर बन जाय, ऐसे सयोगों में सिद्धान्तवादी मनुष्य शुद्ध अन्तःकरण से श्री सघ के पास अपनी स्थिति जाहिर कर संसार में वापिस आ सकता है, पर गुप्त पापसेवन उसे नहीं करना चाहिए।

(२) सिद्धान्तवादी मनुष्यों में सामान्य कोटि के सन्त, कर्मसंयोग से गलती करते हैं, पर गलतियों की परम्परा में नहीं गिर जाते। और समूल गलती का शुद्ध अन्तःकरणपूर्वक आचार्य के पास प्रायश्चित्त लेते हैं।

(३) सिद्धान्तवादी मनुष्य को संप्रदाय अगर न जँचे, और पर सम्प्रदाय जँचे, तो जिस साधुका कुल अच्छा लगे, उस में वह चला जाय; पर स्वधर्म को क्लेश में न घाँटे।

(४) सिद्धान्तवादी, जिन गुरुओं के चरणों में पड़ता है, उन गुरुओं के पंचमहाव्रत साबीत हों, वहाँ तक खुद को साधु अधिष्ठाय भाव रूप से न बताए।

(५) सिद्धान्तवादी को साधुओं के चारित्र्य की महिमा हो सकती है, पर उनके शरीर की दया नहीं होती।

(६) उत्तमोत्तम सिद्धान्तवादी, संथारे को कबूल करता है पर सिद्धान्त के विषय में असमंजता पैदा नहीं करता।

वर्तमानयुग के समाम अधिष्ठातायों को ऐसे सिद्धान्त वादकी ओर नजर कर के महान होने के लिए, लेखक शुद्ध

हृदय से आग्रह करता है, क्यों कि क्लेश का कारण जीव की अज्ञान दशा है।

दृष्टान्त दे सकते हैं कि, वर्तमान युग के धर्म के कुछ अनुयायी, भगवान् के ज्ञान के पूजक बनने के बदले स्वार्थान्ध बनकर छद्मस्थ के कपोल कल्पित ज्ञान के पूजक बने हैं। छद्मस्थ का तो चारित्र्य पूजा जाता है, इस गलती के परिणाम से इस विषम युगमें शुद्ध चारित्र्यवाले साधुओं को बहुत हानि पहुंची है, और चारित्र्यहीन पूजे जाते हैं।

ऐसा सिद्धान्तवादी कौन था? श्री विनोद मुनि ही। जिन्होंनें संसार में रहकर भाव निर्गन्थता का रक्षण किया। आठ प्रवचन माताओं के वे आराधक बने, और संसार को श्लेष्म की तरह बाहर निकाल दिया। सच्चा महापुरुष ही है कि थूक कर जो चाटता नहीं है। इसी को सिद्धान्तवाद कहते हैं।

श्री विनोदकुमार अपने जीवन का निर्णय अपने आप ही लेकर सत्य जीवन बीता गए। यह निर्णय लेनेके पहले उन्होंने कई मानसिक मुसीबतों का सामना किया होगा, इसकी कल्पना ही नहीं हो सकती। एतदुपरान्त, उन्होंने अपना जीवन ही ऐसा सरल बना दिया था, जिसकी वजह से वे क्रमशः ज्यादा ही त्याग करते गये। उनके अन्दर रही हुई धार्मिक भावना मात्र बाह्य आडम्बर की नहीं थी; परन्तु अन्तर की शुद्ध भावना ही थी। इस वस्तु की प्रतीति हमें उनके प्रत्येक कार्य में से मिल सकती है। केवल एक दिन की दिनचर्या पर सामान्य दृष्टिपात करने से मालूम पड़ता है कि, वे कितनी उच्च कक्षा तक पहुँच गए थे।

संसार में अनेक मनुष्य उत्पन्न होते हैं, और सामान्य कक्षा का जीवन गुजारते हैं। वे केवल खाना, पीना, और ऐश आराम करना ही जीवन की श्रेष्ठता समझते हैं परन्तु सामान्य से भिन्न-पर-श्रेष्ठ-मनुष्य को इस में शान्ति नहीं मालूम होती। वे केवल अपने ही लिए शान्ति नहीं खोजते पर साथ ही साथ समाज के लिए भी प्रयास करते हैं। इस प्रकार ऐसी पद्धति पड़ जाती है कि जो भविष्य की प्रजा के लिए अति उपयोगी सिद्ध होता है। उसी प्रकार पू. मुनि श्री विनोद महाराजने दुन्यवी सभी सुखसाधनों की सुविधा होते हुए भी, उन राजवैभवोंसे मुखों का छोड़कर ऐसे मार्ग पर गये हैं कि जिस के लिए हम उन्हें इस स्थल से वन्दना के साथ प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते।

प्रभु उनकी आत्मा जहाँ विचरती हो, वहाँ उनके मार्ग में सहायभूत हों, यही प्रार्थना।

—सरयूबाला नौतमलाल जसाणी।



चउरंगं दुल्लहं नच्चा, संजमं पडिवज्जिया।
तवसा धुय कम्मंसे, सिद्धे हवइ सासए

भावार्थ – चारों अंगों को दुर्लभ समझ कर संयम को ग्रहण करके तप के द्वारा जिसने कर्मों के अवशिष्ट अंश को दूर कर दिया है वह पुण्यशाली जीव शाश्वत सिद्ध गति को प्राप्त हो जाता है।

उ० अ० ३-२०

प्रकरण १४

श्री विनोदकुमारकी संसार में आठ प्रवचन माताओं की आराधकता।

समितिपञ्चक और गुप्तित्रय।

ईर्यासमिति :—ईर्या शब्द का भावार्थ गुरुगम समझनेवाले को महालाभ प्राप्त कराता है (श्री. उ. अ. २४, आठ प्रवचन माताएँ) 'ईर्या' यानी देखकर चलना 'ईर्या' यानी आत्मा का स्व–उपयोग में प्रवर्तन; 'ईर्या' यानी आत्मभावों को सिद्ध भावों में प्रणत करना। ऐसे अनेक अर्थ इस शब्द में से निकल सकते हैं।

इस अध्ययन की आठवीं गाथाओं का परमार्थ समझकर जीव वचानेकी बुद्धि से साढ़े तीन हाथ ज़मीन के ऊपर नज़र फेंककर मन के विषमरहित कर, किसी भी दूसरे स्थान में विना रुके चलना चाहिए। आवश्यकता होने पर प्रथम चरण में ही आत्मा का दर्शन होता है, और ऐसी आत्माएँ सिद्ध कर लेती हैं कि, जीव और शरीर अलग अलग हैं। पाठक गणसे लेखक का अनुरोध है कि भगवान की इस उपदेश वाणी का विना विलम्ब से अमल करना चाहिए। लेखक के आत्मा की प्रतीति है कि, सूक्ष्म बुद्धिवाले को अवश्य ही आत्मा का दर्शन होगा।

"आत्मा का स्वरूप और आत्मा एवं शरीर का भिन्न संबंध"

उपनीध स्वरूप :–जिस प्रकार सूर्य और सूर्य का प्रकाश क्षेत्र प्रकाशी है, (द्रव्य प्रकाश) उसी प्रकार केवलज्ञान और केवल दर्शन का स्वरूप लोकालोक प्रकाशित है। (भावप्रकाश।)

अनुपनीध स्वरूप :–जैसे दीपक और उसका प्रकाश क्षेत्र

प्रकाशित है, उस प्रकार संसारी आत्मा अपने अपने शरीर क्षेत्रकी अपेक्षा रखकर ही प्रकाश करती है। अतः संसारी जीव अपने शरीर परिणाम से रहता है। अतः द्वादशांगन्याय से आत्मा का प्रमाण शरीरप्रमाण ही है। अर्थात् चींटीकी आत्मा चींटी परिणामशाली और कुंमर की आत्मा कुंमरपरिणामिनी है।

आत्मा और शरीर का भिन्न सम्बन्ध।

जिस प्रकार गाड़ी चलती है, उस में गाड़ी और चालक शक्ति-दोनों भिन्न हैं, और इससे चालक की दृष्टि में रह कर ही गाड़ी सीधे मार्ग पर चल सकती है, ठीक उसी प्रकार प्रेरक जीव और प्रेरित शरीर भिन्न भिन्न ही हैं। जिस प्रकार चक्षु या अचक्षुदर्शन, शक्ति काम करते रुक-जाती है कि गाड़ी स्थिर हो जाती है, उसी प्रकार शरीर में उस प्रकार शरीर म से जीव निकल जाने पर शरीररूपी गाड़ी व्यर्थ हो जाती है। उसे 'मरण' सम्बोधन दिया गया है।

चार दर्शन का स्वरूप।

चक्षुदर्शन - आंखों के आलम्बन से देखना।

अचक्षुदर्शन :- आंखों के अतिरिक्त चार इन्द्रियों और मन से जन्म सामान्य बोध, जैसे अन्ध पुरुष का सामान्य बोध।

अवधिदर्शन :- कुछ हद तक 'रूपी' पदार्थ को कुछ अंशों में देखने की प्रत्यक्ष प्रमाण शक्ति।

केवलदर्शन - लोकालोक के त्रैकालिक (तीन कालों के) द्रव्यपर्यायों को एक ही साथ देखने की शक्ति।

उपर्युक्त नियमानुसार 'ईर्या' समिति पर चलनेवाली आज्ञा का लक्ष्य कर, अनुकम्पा के निमित्त से साढे तीन हाथ जमीन के ऊपर देखकर चलना चाहिए; केवल जीवदया का ही इसमें हेतु

रहना चाहिए—अन्यथा लक्ष्य प्रवर्तमान न होना चाहिए। जिस प्रकार दीपक में से प्रकाश बाहर आता है, उसी प्रकार आत्मा के प्रकाश का दर्शन होता है। उस प्रकाश में 'यत्नो' होती है, अतः जीवदया का पालन होता है।

ऐसी 'इर्या' समिति का अनुभव किसने किया ?

संसार में रहकर निर्ग्रन्थता से प्रवृत्त हुए श्री विनोदकुमारने, कि जिन्होंने माथेरान में संडास में जाने पर चींटियों को अभय-दान दिया, और पेशाव के कष्ट को सहन किया।

जैनदर्शन के शुद्ध साधु का शुद्ध लक्षण उसके चलने की क्रिया में है। शुद्ध साधु की चाल कभी ऊँट की तरह की होती ही नहीं। आज्ञानुसार साढ़े तीन हाथ ज़मीन के ऊपर देखता हुआ वह गमन करता है।

भाषा समिति :– द्वादशांग शिक्षानुसार आज्ञा में प्रवर्तमान शुद्ध साधु को आगम, निरवद्य भाषा की तालीम देते हैं, जिस के परिणाम से सूक्ष्मदृष्टिवाले साधु को सूक्ष्मातिसूक्ष्म पापदोष से बच जाता है। भाव यह है कि, साधु की भाषा संसार के लोगों की भाषा की अपेक्षा बिल्कुल पर है। सारे द्वादशांगों का भाषास्वरूप, कर्म के न्याय को स्पृष्ट होकर बिल्कुल पापरहित और शुद्ध है। आगमों का स्वरूप प्रायः संसार पर साधुलोगों के ऊपर आश्रित है। अतः आज्ञा प्रवर्तकों को—आचार्यों को—शासन चलाने में ऐसी उत्तम सानुकूलता है कि वे शासन चलाएँ फिर भी कर्मबन्धनो में उन्हें आना नहीं पड़ता। शासन-रचना ऐसी उत्तम कोटिक विज्ञानस्वरूपिणी है।

संसारियों के साथ के गाढ़ परिचय से दूर रहने की साधुओं को भगवान की आज्ञा है। श्री आचारांगजी सूत्र के तीसरे अध्ययन के प्रथम उद्देश में श्री भगवान आदेश देते हैं कि,

साधुको गृहस्थ का परिचय बहुत नहीं करना चाहिए क्यों कि, गृहस्थ, आरंभ से उपजीविका चलाता है ॥

इस प्रकार द्वादशांग के अनेक स्थानों में दोष में फँसा डालने के योग न जोड़ने की आज्ञा मुनियों को की गई है। आगम के वाणी-उपदेश के अलावा, शुद्ध साधु किसी भी अन्य वाणीव्यवहार में आ ही नहीं सकता। शुद्ध साधु के व्यवहार के अनुसार पत्र व्यवहार भी साधु को उचित नहीं समझा गया। साधुको 'मुनि' इसलिए कहा गया है कि, पापबन्ध हो, वहाँ मौन का आलम्बन जो करता है, वह 'मुनि' है।" साधु उपदेश देता है वह भी उसी के आधार में।

श्री आचारांग सूत्र में भगवान आदेश देते हैं कि,—

साधुको गृहस्थाश्रय में, ग्रामाश्रय में, नगराश्रय में, परिषद आने पर भी उपदेश देना चाहिए, और गृहस्थधर्म और साधु धर्म का विश्लेषण करना चाहिए। द्वादशांग में धर्मोपदेश के लिए, और साधुव्यवहार के लिए काफ़ी भाषा समिति है। इसके सिवा जो काम हैं, उन में 'वचनगुप्ति' है।

द्वादशांगों में चार आलम्बन कहे हैं।

वायणा, पुच्छणा, पर्यटणा, धम्मकहा। (देखिए धर्मध्यान का काउस्सग वायणा का महाफल, श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र के २९ वें अध्ययन में कहा है) अतः साधु उपदेश देते हैं।

ऐसी भाषा समिति की साधना किसने की? संसार में मात्र मुनि के रूप में मनुष्य होकर श्री विनोदकुमारने, कि जिन्होंने संसार के कुछ अन्तिम दिनों में निवृत्ति का पालन किया, और आगमों के प्रवचनों के सिवा अन्य किसी भी वार्तालाप में रस ही न रखा। जिन्दगी उन्होंने पवित्र बनाई। इसके विशेष प्रमाण में हम भीसर क्षेत्रमें आरंभ को उपदेश

देने के लिए उनके गमन को, और सन्मित्र के धर्म को ले सकते हैं।

दूसरा दृष्टान्त।

मातापिता को पाप से बचने के लिए श्री विनोदकुमार उपदेश रूप पत्र लिखते हैं। एक समय अहमदावाद के किसी मिल के व्यापार के सम्बन्ध में पिताजी भाग लेनेवाले हैं, ऐसी श्री विनोदकुमारको बात मिली। उनकी आत्मा को यह बात न जँची। कारण यह था कि द्वादशांगों में मिल आदि के व्यापार को निषिद्ध और 'महा आरंभ' वाला कहा गया है, और उस के फल में आत्मा को अहित-निम्नगतिरूप बताने में आया है, अतः पिताजी को उस महाआरंभ से बचा लेने के लिए अनेक मुद्राओं के साथ बहुत लम्बा पत्र लिखा, और ऐसे व्यापार में नहीं पड़ने का आग्रह किया। श्री विनोदकुमार की बात का पिताजीने स्वीकार किया।

इसको कहते हैं आगम व्यवहारानुकूल जीवन, और पिताजी के उपकार का सही बदला!! द्वादशांगों का सार यह है कि ससारियो के उपकारों का बदला, संसारियों को संसारिक सुखोभोग के साधनों का निर्देश करके नहीं चुकाया जाता, परन्तु सद्‌गति प्राप्त कराने से ही उपकारों का बदला चुकाया जा सकता है।

एषणा समिति:- निर्दोष आहारपानी का ग्रहण साधु को सर्वथा अपनाना चाहिए। जब कि श्रावकों को वह 'देशीय' है। उस नियम के अनुसार, श्री विनोदकुमार ने सर्वथा अभक्ष्य का त्याग किया, रात्रिभोजन का त्याग किया और आत्मा को चतुर्विहारादि प्रत्याख्यानों में प्रवृत्त किया। वह श्री विनोदकुमार की एषणा समिति।

आयाणभंड मत्त निखेवणा समिति।

वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण आदि, साधु के लिए सर्वथा

पडिलेहण के रूप में होते हैं। जब कि वे श्रावक को 'देशीय' होते हैं। शुद्ध श्रावक हमेशा अपने उपाधि को 'यत्ना' रूपसे तो महत्त्व करता ही है, और धर्मानुष्ठान की क्रिया में, इस समिति का सेवन करता है।

उच्चार, पासवण, खेळ, जल, संघाणपरिठ्ठावणिया समिति:-

टट्टी पेशाब, श्लेष्म आदि को निर्दोष जगहों में परठाने के परिणाम से समूर्च्छिम जीवों की उत्पत्ति से बचा जाय, यह साधु के लिए सर्वथा और श्रावकके लिए 'देशीय' है। इस समिति के सेवन के लिए, श्री विनोदकुमारने घटित किया, उस के प्रमाण में सट्टास आदि का त्याग उल्लेखनीय है।

मनगुप्ति :-संसारमें वे रहे, पर संसार के किसी भी पदार्थ में श्री विनोदकुमारने अपना मन नहीं लगाया। मनकी जितने अंश में गुप्ति की, उतने अंश में श्री विनोदकुमार की 'मनगुप्ति' मानी जा सकती है।

वचनगुप्ति:-पापपथ में आना पड़े, ऐसे संयोगों में, जीभ का प्रयोग उन्हों ने नहीं किया। उसी को 'वचन गुप्ति' कहा जा सकता है। और जीभ के ऊपर धर्मोच्चारण रूपी सरस्वती का प्रयोग किया, वह श्री विनोदकुमार की भाषासमिति थी।

कायगुप्ति:-छोटी वय से, मरण पर्यन्त धर्मानुष्ठान की क्रिया में, काया को प्रवृत्त करते रहे। आस्रव के कार्यों से जहाँ तक काया को रोका, वहाँतक श्री विनोदकुमार की कायगुप्ति थी।

इस प्रकार आठ प्रवचन माताओं का सेवन करनेवाले को, श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र के चौबीसवें अध्ययन में श्री भगवान फरमाते हैं कि:-" द्वादशांग आगमरूप आत्मा,"

श्री विनोदकुमार की ब्रह्मचर्य भावना और ब्रह्मचर्य की महिमा ।

गाथाएँ :-

प्रथम गाथा :-

पंच महाव्वय सुव्वय मूलं, समण मणाइल साहु सुचिणं;
वेर विरामण पज्जवसाणं, सव्व समुद्द महादहि तित्थं.

भावार्थ :- सभी समुद्रों में जैसे स्वयभूरमण बड़ा है, उस प्रकार सभी जीवों के साथ अनन्तकालीन वैर का विनाश करनेवाले तीर्थरूप पांच महाव्रतों में सर्व श्रेष्ठव्रत तो ब्रह्मचर्य ही है। उसके सर्वश्रेष्ठ फलका अनुभव उच्च कक्षा के साधुओंने व्रतानुसरण कर के ले लिया है।

द्वितीय गाथा :-

तीत्थंकरेहिं सुदेसिय मग्गं, नरग तिरिक्ख विवज्जिय मग्गं;
सव्व पवित्तं सुनिम्मिय सारं, सिद्धिं विमाणं अवंगुय दारं।

भावार्थ :- तीर्थंकर भगवानने अपने शुद्ध उपदेश में इस व्रत का महात्म्य प्रकट किया है। (देखिए प्रश्न व्याकरणसूत्र।)

इस व्रत के आराधक के लिए, नरक, तिर्यञ्च आदि हीन गति के दरवाज़े बन्द हैं, क्यों कि पवित्रता में श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य व्रत है। वह व्रत धर्म का सार ही है। उस व्रत के आराधक के लिए सिद्धगति या तो कल्पदेवलोक रूप गति के दरवाज़े ही खुले हैं।

तृतीय गाथा :-

देव नरिंदं नमंसिय पूइयं, सव्व जगुत्तम मंगल मग्गं।
दुद्धरिसं गुण नायकमेकं, मोक्ख पहस्स वडिंसग भूइयं॥

भावार्थ :- शुद्ध ब्रह्मचारियों की, देवलोक के देव, नरेन्द्र आदि झुककर नमन पूजा आदि करते हैं। सारे जगत में इस ब्रह्मचर्य की उपमा में आनेवाला उत्कृष्ट

और मंगल तत्त्व नहीं है। शुद्ध ब्रह्मचारी कभी पराभव प्राप्त नहीं करते। मोक्षगति प्राप्त करने की इच्छा करने वालों के लिए ब्रह्मचर्यरूपब्रत चक्रवर्ती के प्रमाणपत्र की आवश्यकता रहती है। तात्पर्य यह है कि उस व्रतराज के आराधन के सिवा मोक्षाधिकार की प्राप्ति हो ही नहीं सकती। अन्य तीन गाथाओं का केवल भावार्थ नीचे दिया जाता है-

चतुर्थ गाथा का भावार्थ - शुद्ध साधु ब्रह्मचर्यधर्मरूपी बगीचे में रमण करता हुआ होता है, उस के आत्म प्रदेश के सभी भागों में ब्रह्मचर्य की ही भावना व्यापक रूप से रहती है। ब्रह्मचर्य की ओर ही उसने अपनी आत्मा को केन्द्रित किया हुआ होता है। आगमप्रवचनों में उसकी अविरत आसक्ति रहती है। इन्द्रियों का वह दमन करता है, और भावनानुसार ब्रह्मचर्य की आसक्ति में ही वह शुद्ध साधु समाधिमरण करता है-निर्वाण को प्राप्त करता है।

पंचमी गाथा का भावार्थ :- देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर आदि सभी देव ब्रह्मचारियों को नमस्कार करते हैं क्यों कि इस दुष्कर व्रत को निभाना बड़ी कठिन बात है। उसकी श्रद्धा महानुभाव मानव और महानुभाव देवों को तो होती ही है।

छठी गाथा का भावार्थ :- ऐसा उत्तम प्रकार का ब्रह्मचर्यधर्म ध्रुव है, नित्य-शाश्वत है। जिनोपदिष्ट यही धर्म है। ऐसे उत्तम धर्म का अनुसरण कर, अनन्त जीव सिद्धि को प्राप्त हुए हैं, वर्तमान में प्राप्त करते हैं, और भविष्य में भी अनन्त जीव उस सिद्धि को प्राप्त जरूर ही करेंगे। ऐसा मोक्षमार्ग का स्थायी-नियम है।

ऐसे उत्तम ब्रह्मचर्यव्रत के लक्षण किसने सिद्ध किये? संसारमें रहकर, वीराणी कुटुम्ब के कुलदीपक पुत्र श्री विनोदकुमारने, कि जो बालब्रह्मचारी ही रहे।

ऐसे ब्रह्मचारी को लेखक के बहुशः वन्दन हों।

श्री विनोदकुमार का त्याग सिद्ध करती हुई गाथाएँ।

(देखिए दशवैकालिक सूत्र,अध्ययन दूसरा,गाथा १ से, ३ का भावार्थ

प्रथम गाथा :- साधु कैसे विचार से चारित्र्यपाल करता है? उत्तररूप गाथा का द्वितीय चरण है, जो कहता है :- यदि मैं कामभोगों की ख़राब वृत्ति का निवारण नहीं करूँगा, तो संसार का धर्म ऐसा है कि डग-डग पर कर्म विक्रयरूप ऐसे विषमवाद में फँस जाऊँगा, कि जिससे प्राप्त समकित का नाश हो जायग और शंकामय दशा प्राप्त होगी। (कलहों का मूल ध और स्त्री ही है; ये दोनों जहां पर होते हैं वहां संस होता है, और जहां इन दोनों का त्याग होता है, व धर्म रहता है।)

दूसरी गाथा में भगवान कहते हैं कि वस्त्रगन्ध गहने स्त्रियां और शयनासनादि पदार्थ जिसके पा नहीं हैं जिसे ये प्राप्त ही नहीं हुए हैं, और उसी कार से जो भोगता नहीं है, और, दुःखगर्भित वैरागी ब जाता है उनका 'चारित्र्य', 'चारित्र्य' नहीं कहला सकता।

तृतीय गाथा का भावार्थ :- जिस महाभाग्यशा आत्मा को महाप्रकाश से युक्त प्रियकारी भोग प्राप्त हु हैं, परन्तु धर्मश्रद्धा के प्रभाव में वह यदि उन भोगों उपभोग करने के लिए तैयार नहीं है, और जिसक झुकाव त्यागवृत्ति की ओर अधिक है ऐसे आदमी

'पारिण्य' कहलाने के योग्य माना जा सकता है। मावशाँग भी इस से पूर्ण सहमत हैं।

लेखक इस तीसरी गाथा में रहे हुए भावों में श्री विनोदकुमार की आत्मा के दर्शन करता है। श्रेष्ठिकुल में भवतरित होने पर भी समृद्धि एक छोटी सी रियासत जैसी है। भागमों में जो भाग्यशाली जीवों के सुखों का वर्णन करने में आया है, ऐसे सुख प्राप्त हुए हैं, फिर भी सांसारिक ज़िन्दगी त्यागमयी थी। धन्य है इस महापुरुष को कि जिस ने अपने कुल की परम्परा शोभित कर दी है, और भागमरूप जीवन बनाकर, आत्मकल्याण किया। लेखक की पूर्ण प्रतीति है कि, श्री विनोदकुमार के जीवनचरित्र का यह ग्रन्थ अनेक जीवों को धर्म के मार्ग की ओर उन्मुख कराएगा। उस महालाभ का निमित्त, श्री विनोदकुमार की आत्मा बनेगी।



श्री विनोदमुनि को पुष्पाजलि।

सोरठे।

मारवाड़ शुभ – देस, प्यारा लगा विनोदजी;
अब बिसरत नाँहीं वियोग, कंटक सम खटकत हिये ॥
प्यारे! तेरे वचन भी, भूलाये भुलते नहीं;
कहाँ करें फ़रियाद, जब टूटे तन्तु आयु के ॥
हिय का जो अभिलाष, हिय में बाल! बना रहा;
(तू) गया दिव्य बस धाम, स्वप होगा तेरा वहाँ ॥
कम्पमान बन जाय, लिखते मेरी लेखिनी,
परलोक की पाक, कैसे सहूँ विनोदजी ॥
दर्द भरे ये दिल, मातापिता के बोलते;
कहाँ करें फरियाद, दूधरेज सकजन पड़े ॥

प्रकरण १९

स्वयमेव दीक्षा।

महावैराग्यगृह में श्री विनोदकुमार की आत्मा को प्रविष्ट करानेवाले संयोगों का सम्मेलन।

दीक्षा के लिए आज्ञा पाने में कठिनाई – संसार पक्ष में से 'चवण' – गुप्त विहार – साधु दशा में जन्म– महावैराग दशा के संयोगों के कारण।

वीराणी कुटुम्ब की गुरुधारणा :–

क़रीब १९६२ के वर्ष में, जब यह कुटुम्ब खीरसरा में था, उस अरसे में उस समय के श्री गोण्डल सम्प्रदाय के पूज्य श्री डूँगरसी स्वामी के सन्घाडे की पाटानुपाट में आचार्य महाराज श्री देवजी स्वामी हुए। उनके शिष्य सम्प्रदाय में से पू. बा. ब्र. श्री जयचन्द्रजी स्वामी और श्री पू. बा. ब्र. तपस्वीजी माणेकचन्द्रजी स्वामी, अपने शिष्यगण के साथ कालावड (शीतला) की ओर विहार कर रहे थे बीच में खीरसरा वे पधारे थे, तब पू. गुरुदेवों के दर्शन कर, श्री वीराणी कुटुम्ब कृतार्थ हुआ था, और पू. गुरुदेवों को गुरुरूप में धारण कर (व्यवहार सम्कत्व) मान्य कर, गुरुपद पर स्थापित किया। यद्यपि वीराणी कुटुम्ब की पूर्व-पर्याय तो स्थानकवासी धर्म की ही चली आती थी, उस में ये गुरुदेव पधारने से, श्रद्धा में अनूठे मकार की वृद्धि हुई थी। (खीरसरा से राजकोट तो यह कुटुम्ब १९७७ में आया था, और राजकोट को उसने अपना वतन बनाया)

वीराणी कुटुम्ब की उपर्युक्त धारणा के अनुसार पाटानुपाट आचार्यरूप से वर्तमान समय में श्री गोण्डल सम्प्रदायके श्री १००८

का प्र श्री पुरुषोत्तमजी महाराज हैं, जिनका चातुर्मास स २०१२ के वर्ष में वेरावल (सौराष्ट्र) हुआ था। श्री विनोदकुमार की आत्मा आगम वचनों में दिनप्रतिदिन धर्मानुष्ठान के परिणाम स रसिक बनती जाती थी। ज्ञान के अभ्यास की लगन बढ़ती जाती थी। और पिताजी को भी उस स्थिति में श्री विनोदकुमार की यह प्रवृत्ति अच्छी लगती थी। पिताजी की इच्छा के अनुसार श्री विनोदकुमारने आगमअभ्यास के लिए प्रसग उपस्थित किया, और सवत् २०१५के आषाढ मास की पूर्णिमा से आचार्य श्री पुरुषोत्तमजी महाराजश्री के पास आगमाभ्यास का आरंभ किया, और व्याख्यानवाणी का सपूर्ण लाभ लिया। इस प्रसग में श्री पुरुषोत्तमजी महाराजजी के पास, एक श्री जसराजभाइ नाम के दीक्षा के भावि भाई भी आगमों का अभ्यास करते थे। वे भाई ससार पक्ष के नाते, श्री पुरुषोत्तमजी महाराजजी के कुटुम्बी लगते थे। ज्ञाति स 'कणबी' थे और गाँव उनका था धम्दाणा।

इस प्रकार श्री विनोदकुमार और श्री जसराजभाई–दोनों सच्चारित्र प्राप्त कर, ज्ञानलाभ कर के गुरुप्रसन्नता प्राप्त कर रहे थे। इस का अर्थ यह है कि, भूतकाल की कोई अनुरागमयी शुभकरणी हुई होगी। उसी के परिणाम स नियमानुसार, गुणों के साथ गुणों का मिलन हुआ। स्वपरसमय का दोनोंका स्नेहसंगम हुआ। इस तत्त्व को जिन–आगम से सिद्ध करने के लिए हम प्रयास करते हैं :–

द्रव्यसे – श्री विनोदकुमार और श्री जसराजभाई का ससार में भावनिर्ग्रन्थता से विचरण।

क्षेत्रसे :– श्री गोण्डल सम्प्रदाय (सौराष्ट्र) की नेश्राय में।

कालसे :– सवत् २०१२ के चातुर्मास– आषाढी पूर्णिमा से कार्तिकी पूर्णिमा तक।

भावसे :– दोनों की समान ससार–त्यागवृत्ति।

शास्त्रकार कहते हैं कि, संसार में रहे हुए सभी जीव चाहे जैसे भी मनविहारों को किया करें, पर सम्बन्ध सभी स्थिति के ऊपर अवलम्वित हैं। इस तत्त्व को सिद्ध करता हुआ, निम्नांकित दृष्टान्त वहुत मूल्यवान समझा गया है।

चातुर्मास के दरम्यान, श्री विनोदकुमारने और श्री जसराज भाई ने परस्पर धर्म के स्नेह की शृंखला से संलग्न वनकर अद्‌भुत प्रेमरसमग्न हो कर, साथ ही दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया। वह वहाँ तक कि, पू. आचार्य श्री १००८ पुरुषोत्तमजी महाराज के पास प्रथम श्री विनोदकुमार की दीक्षा हो, और वाद में श्री जसराजभाई की दीक्षा हो, ऐसा निश्चय किया गया। क्यों कि श्री विनोदकुमार उम्र में और ज्ञान में वडे थे।

इस संकल्प को पूरा करना उनके हाथों में था ही कहाँ? वह तो कर्म के हाथों में था। और उसी से पूर्वभव की करणी के अनुसार सम्वन्ध की स्थिति केवल छः–चार–महीनों तक ही परिमित रही, और आखिर दोनों आत्माएँ–समान भाववाली होने पर भी पूर्व–पश्चिम के फ़र्क में सूख गई, क्यों कि इन दोनों में से श्री जसराजभाई की दीक्षा तिथि, पू. आचार्य श्री पुरुषोत्तमजी महाराजने संवत् २०१३ के ज्येष्ठ मास की शुक्ल पंचमी और सोमवार की निश्चित कर दी थी। यह समाचार श्री विनोदकुमार को मिला। श्री विनोदकुमार को तो अभी मातापिता की आज्ञा प्राप्त करना वाकी था; और श्री जसराज भाई को तो आज्ञा मिल चुकी थी। दोनों के वीच जो संकल्प था, उस के अनुसार, दीक्षार्थी भाई श्री जसराजभाई के लिए पूर्ण सद्‌भाव और आत्म-प्रेम की जाग्रति से दीक्षा प्रसंग में देय कपडे– शाल, पोपलीन, मलमल आदि दीक्षायोग्य वस्तुएँ वाज़ार में से खरीद कर ली गई, और उन चीज़ों की एक पेटी तैयार कर रखी।

कथित–निश्चित की गई वातचीत के अनुसार श्री जसराजभाई अपने गाँव में अपने सम्वन्धियों से मिलने के लिए चलदाणा

जानेवाले थे, अतः मांगरोल से राजकोट आए। जसराज भाई के मिलने से श्री विनोदकुमार को बहुत आनन्द आया। उन्होंने उनका बहुत सत्कार किया। बड़े उत्साह से अपने मोटर में बिठाकर, 'बस स्टेन्ड' पर उन्हें रख आए।

श्री जसराजभाई पल्दाणा से वापिस आए, तब सकल्प के अनुसार राजकोट आये, और श्री विनोदकुमार उस समय उन्हें लेने के लिये गये। उन्हें घर पर ले आए। उन को सभी जगह अपने मोटर में बिठाकर घुमाया, और साथ ही साथ श्री जसराजभाई को किसी प्रकार की इच्छाएँ-अभिलाषाएँ हों, तो उन्हें पूर्ण करने में श्री विनोदकुमारने किसी भी प्रकार की न्यूनता न रखी। श्री विनोदकुमार की आत्मा, श्री जसराजभाई को देखदेख कर चित्त की प्रसन्नता प्राप्त करती थी। कारण यह था कि श्री जसराजभाई की दीक्षा की मुराद बर आनेवाली थी, और अपने लिए अभी दीक्षा के अंगीकार में अन्तराय के पहाड उन्हें दीख पड रहे थे। बहुत आनन्द के साथ श्री जसराजभाई को मांगरोल जाने के लिए विदा किया, और श्री विनोदकुमारने अपनी आत्मा को कृतकृत्य बनाया।

श्री विनोदकुमार, जसराजभाई के साथ दीक्षा लेने का निर्णय कर ही बैठ थे। उन के मन में आज्ञा प्राप्त करने की बड़ी समस्या थी। किसी भी प्रकार समस्या को, वे, सुलझाना चाहते थे। विषय को पार करने की उन्हें भारी लगन लगी थी। वे कटिबद्ध बन गए, और माता पिता की आज्ञा लेने के लिए निम्नांकित प्रयोग उन्होंने किया।

उन्हें यह तो प्रतीति थी कि, इस विषय में पिताजी तो, "अभी देरी है, समय की राह देखो"—ऐसा ही कहेंगे और उनकी भावना को वे कुचल देंगे। हर बार ऐसा हुआ भी था। अतः इस समय अपनी दीक्षा लेने की भावना को, श्री जसराज

भाई के साथ किए गए संकल्प के अनुसार, अपनी माताजी के आगे उन्होंने प्रकट किया, और साथ ही साथ स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि, 'जहाँ तक मुझे अनुमति नहीं मिलेगी, वहाँ तक मैं आहार नहीं लूँगा'। ऐसे आग्रह के साथ उन्होंने दीक्षा के लिए अनुमति माँगी, और सुबह से ही चाह-नाश्ता लेना बन्द कर दिया। जब भोजन के समय पर भोजन के लिए उन्हें बुलाया गया, तो भी उन्होंने अनादर किया।

इस बात की पिताजी को खबर हुई, और श्री विनोदकुमार को समझाना शुरू किया, समझावट की भाषा आग्रह के साथ आग्रहरूप ही थी पिताजीने कहा :-

"देखो भाई! इस प्रकार आग्रह से कहीं दीक्षा के लिए अनुमति माँगी जा सकती है? शास्त्रों में तो मातापिता की अनुमति, और वह भी खुशी से ही लेने का कहा गया है। इस प्रकार दुराग्रह का सेवन करने से अनुमति प्राप्त करनी नहीं चाहिए। इस प्रकार तो मैं अनुमति दे ही नहीं सकता। इस प्रकार बोलते बोलते पिताजी का हृदय भर आया, और श्री विनोदकुमार भी रो उठे।

बुद्धिशाली, करुणारसमय आत्माने अपने निश्चय को अपनी आत्मा में संगुप्त रखकर, समय को पहचान कर आग्रह छोड दिया। पितापुत्र भोजन के लिए उठे। एक साथ भोजन किया। इस दुःखद घटना के बनने के बाद, मानो कुछ बना ही नहो, इस प्रकार, श्री विनोदकुमारने अपनी आत्मा में प्रशस्त माया का रूप रचकर, घटना को भूल जाने का सफल प्रयास किया। पूर्ववत् उन्होंने अपना वर्तन शुरू कर दिया।

आखिर अनेक संकल्प विकल्प के परिणाम से दीक्षा लेने का रास्ता खोज निकाला। उस मार्ग में मातापिता की तो क्या देवेन्द्र की, चमरेन्द्र या तो किसी राजशक्ति की भी ताक़त,

इस आगमन्याय की दीक्षा को रोकनेमें नहीं थी। ऐसे मार्ग के आचरण के लिए ज्ञानशक्तिने भी विनोदकुमार की आत्मा को प्रोत्साहन दिया कि अपने आप ही दीक्षांगीकार किया जाय, तो फिर मातापिता जरूर ही आज्ञा देंगे। धर्ममार्ग तो 'मारे उसी की तलवार' ही है। अतएव श्री आचारांगजी सूत्र के प्रथम अध्याय में श्री भगवान आदेश देते हैं कि, ज्ञान मार्ग शूर पुरुषों के द्वारा पूजित है।

विनय की भी मर्यादा होती है। आचारांगजी सूत्र में भगवान आदेश देते हैं कि, दीक्षा लेने के लिए तैयार होने वाले व्यक्ति को, मातापिता की अनुमति लेना कठिन हो सकता है, पर वैरागी, वैराग्य से मुँह नहीं मोड़ता।

चाहे मातापिता को धर्म में श्रद्धा हो पर यदि उन की आत्मा में मोह काम करता हो, तो मरण पर्यन्त दीक्षा की आज्ञा वे दे ही नहीं सकते। ऐसे सयोगों में उत्कृष्ट वैरागी को क्या करना चाहिए? इस विषम काल में शुद्ध वैरागी का पद पद पर परिषहों का सामना करना पड़ता है।

संसारका स्वरूप-माता पिता आदि सभी सम्बन्धों का निम्नांकित दृष्टान्त की तरह का है। क्यों कि ससार का स्वरूप शुभाशुभ है। अत संसारी शुभाशुभ की परीक्षा जल्द ही कर सकते हैं, जब कि शुद्ध मार्ग की समस्या को सुलझाने का प्रसग आता है, तब बहुधा ससारियों का धर्म मित्र के बदले वैरी बन जाने का हो जाता है।

इस संसार का प्रेम बन्दरी और उस के बच्चों के न्याय स समझने का है। किसी नदी के किनारे पर नदी के अन्दर कोई वृक्ष हो, उस पर बन्दरी अपने बच्चों को पेट पर लगा कर, वृक्ष पर चढ़ कर आनन्द करती हो, और बच्चों को प्यार करती हो, वर्षा मास का समय आ गया हो, और

यकायक ऊपर के भाग में वर्षा होने से, नदी में भयानक बाढ़ आए, नदी में पानी जोरों से वहने लगे, बच्चों के साथ वृक्ष पर से किनारे तक जाना मुश्किल हो जाय, ऐसे संयोगों में उस बन्दरी की स्थिति कैसी हो जाती है? बन्दरी कुछ देर तक तो ऐसे समय में बच्चों को बचाने का प्रयास करती है, पर उतने में पानी बढ जाता है, और आधार के विना कूदना मुश्किल पड़ जाता है। ऐसे संयोगों में बन्दरी बच्चों को अपने लिए वचने का आधार वना देती है। वच्चों के शरीरों को जहाज वह वना देती है, और इस प्रकार आधार लेकर वच्चों के प्राणों से अपने प्राण वह वचा देती है। ऐसा ही स्वरूप ससार का है। चाहे कितने भी गहरे सांसारिक सम्बन्ध हों, तो भी ज्ञानी लोग देख सकते हैं, और इसीसे ही परमत्याग की भावना का वे सेवन करते हैं।

मानवस्त्रियाँ विषयासक्ति में गर्भपात करती हैं, और किसी समय लज्जा से अपने से उत्पन्न ताज़े वच्चे को कहीं फेंक देती हैं। गत महायुद्ध में वर्मा में आपत्ति काल में अपने छोटे वच्चों को मनुष्यों ने जंगल में छोड़ दिया था और अपने प्राण वचाये थे।

इस प्रकार शुभाशुभ प्रसंगों में सम्बन्ध की स्थिति पक्व होने पर पितापुत्र एक साथ नहीं रह सकते पतिपत्नी कोर्ट में जाकर तलाक़ लेते हैं, और किसी समय एक-दूसरे के लिए जीवनत्याग का मौका भी आ जाता है।

संसार की और विशेषता तो यह है कि संसार में अनेक गर्भश्रीमन्तों के पुत्र 'फेनी' वन जाते हैं, शराव पीने वाले वन जाते हैं; वेश्यागामी वन जाते हैं, ऐसे अवसरों पर आज्ञा की आवश्यकता नहीं समझी जाती। अनेक कुलवान स्त्रियाँ विनाश के पन्थ पर जा गिरती हैं, वहाँ भी मातापिता;

समाज या राजशक्ति का कुछ नहीं चलता। केवल अपवादरूप जैनदर्शन के लिए ऐच्छिक और स्वयं दीक्षा के मार्ग को मुख्यतया माना गया है, और उत्तम वैराग्य के राजमार्ग को धर्म के पूर्वभव के वैरियोंने दयाजनक बना दिया है, और अतएव श्री गुरुदेव को अपना परिचय, श्री विनोदकुमार के मातापिता को, जैन समाजों के और राज्याधिष्ठितों को कराने का प्रसंग प्राप्त हुआ है, और विचारशक्ति ने ही श्री विनोदकुमार को मार्गदर्शन दिया है।

इस मार्गदर्शन के अनुसार श्री विनोदकुमार प्रशस्त माया की रचना करते हैं, और हृदय में रत निश्चय की झांकी भी मातापिता को न आजाय, उस प्रकार मातापिता के साथ निवास करते हैं, और भाग जाने की माया रचना करनेवाले हैं, उतने में श्री विनोदकुमार के विचक्षण पिता, विनोदकुमार के आत्मोद्वेग का अनुभव करते हैं, और इस कारण से वे श्री विनोदकुमार को सांसारिक जाल में फँसाने के लिए और दीक्षा की बात को भुलाने के लिए प्रसंग उत्पन्न करते हैं अतः एक बार पिताजीने शान्तिलाल भाई जिनका सम्बन्ध, उपलेटा में चि स्मिता के साथ हुआ था उसको उपलेटा से राजकोट लाने के बहाने एक कार्यक्रम की रचना की, और विनोदभाई से बात कही कि, तुम चि स्मिता को लाने के लिए जाओगे? इस के प्रत्युत्तर में विनोदकुमारने कहा कि, 'जरूर', और साथ ही साथ पिताजी की अनुमति प्राप्त कर, साध्वियों के दर्शन के लिए श्री डॉ एन के गांधी, श्री जमनादासभाई दामाणी की सुपुत्री चि कु ज्योत्सिबहन, श्री गौतमभाई जमाणी की पुत्री चि कु मरयूबहन, जो भावदीक्षित हैं, और श्री विनोदकुमार की चाचीजी हेमकुंवर बहन और उनकी सुपुत्री इन्दुबहन-कुल मिलाकर छः मोटर में बैठकर

कृष्ण पंचमी और शनिवार, ता. १८-५-'५७ के रोज रवाना हुए। इस दिव्य पुरुषने इन संयोगों का लाभ लेकर त्यागियों का दर्शन किया और व्याख्यानवाणी सुनी। पिताजी के अप्रशस्त मायावी जालसमूह को वैराग्यवृत्ति के बलसे हटाने का मौका उन्होंने नहीं जाने दिया, और अधिक वैराग्य की वृत्ति को मन में स्थान दिया।

प्रथम गोण्डल में विराजमान पू. महासतीजी श्री झवेरबाई स्वामी आदि ठाणा ९ के दर्शन किये। वहाँसे जेतपुर जाकर वहां विराजित पू. महासतीजी मीठीबाई स्वामी आदि ठाणा ४ के दर्शन किये। वहां से धोराजी गए। वहां विराजित हेमकुंवरबाई स्वामी आदि ठाणा ३ और पू. महासतीजी श्री रम्भाबाई स्वामी आदि ठाणा ४ के दर्शन किये, और वहां से उपलेटा पहुँचे। वहां भी महासतीजी जेकुंवरबाई स्वामी आदि ठाणा ४ के दर्शन किये। सोमवार की शामको चि. स्मिता को लेकर सब वापिस राजकोट आ गये।

धन्य है इस दृढ निश्चयी पुरुष की बुद्धि को, कि जिसने इस प्रकार युक्ति का आलम्बन कर, सिद्ध कर दिया कि कुटुम्ब के साथ देह का सम्बन्ध हो सकता है, पर आत्मा का कभी नहीं हो सकता।

इस प्रकार इस पुरुष की पवित्र आत्मा स्वयमेव स्वभावगत सूत्रदेव की कृपा से आगम का स्वरूप पकड़ती गई और ज्ञानी शुकने सोने के पिंजड़े में से मुक्त होने की युक्तियां कीं। संसारबन्धन की बेड़ियां तोड़ने के लिए यह वैज्ञानिक उतावली करने लगा और 'असंखयं जीविय मा पमायए' मन्त्र के जप से मनोरथ सिद्ध किए कि जिन्हें पढ़कर पाठकगण इन श्री विनोदकुमार के बहादुर के नाते दर्शन करेंगे।

– इस अगोचर मेद को खोजने का काम ज्योतिषचक्र भी मन समझनेवाला नहीं है। केवल आगमों की जिस के ऊपर कृपा उतरी हो, ऐसी आत्माएँ ही इस रहस्य को पहचान सकती हैं देखिए श्री उत्तराध्ययनजी, अध्ययन ५, सकाम अकाम–मरण। उस की गाथा ३१ में इस प्रकार कहा गया है।

गाथा – तओ काले अभिप्पेए; सड्ढी तालिसमन्तिए।
विणएज्ज लोमहरिसं, भेयं देहस्स कंखए॥

पदच्छेद – तओ=तत्काल, काले=काल यानी मरण काल, अभिप्पेए=सन्मुख होता है, अर्थात् नजदीक दीख पड़ता है, सड्ढि=श्रद्धावान, तालिस=तादृश, अंतिए=गुरु समीप, विणएज्ज=दूर करे, लोमहरिसं=रोंद के समान शरीर का सम्बन्ध, भेय=भेदन कर, देहस्स=शरीर को, कंखए=कांक्षा रहित्य से। (संथार में मरणभावना)

परमार्थ – समस्त जीवन धर्मानुष्ठान में बीतानेवाली, आत्म जागृति से युक्त श्रद्धालु आत्माएँ जब मरण काल के नजदीक में दखल करती हैं, तब कुछ आत्माओं को अवधि ज्ञान प्राप्त होता है। यह ज्ञान इस काल में बहुधा अनशन तप के फल में मरण के आने पर प्राप्त होने का संभव है। कुछ अनशनान्त में केवलज्ञान प्राप्त कर, सिद्ध गति को प्राप्त कर लेती हैं। उन्हें अन्तगड केवली का सम्बोधन दिया गया है। (देखिए श्री अन्तगड दशांग सूत्र) कुछ आत्माओं का मतिज्ञान-श्रुत ज्ञान की अत्यन्त शुद्धि हो जाने पर पूर्वज्ञान के साथ शुभनामगोत्र कर्म के प्रभाव में पाप के रूप में काम करने लगता है।

इस न्याय से 'धर्मसमर्थ जीविए मा पमाए' सिद्धान्त के मंत्र का जप करनेवाले इन साधक पुरुष श्री विनोदकुमार का मागा मागराह में दखल हुए हों, ऐसी घटना बनती है

और गाथा के भाव के अनुसार, यह; श्रद्धावान जीव, जिस प्रकार मिट्टी में से सोना अलग किया जाता है, उस तरह संसार के सभी भावों को यथाशीघ्र छोड़ देते हैं, और अपनी देह को गुरु के चरणों में सौंपकर आत्मा को कटिबद्ध कर देते हैं। गुरु से वे आत्म विस्तृति के ज्ञान और प्रयोगों की याचना करने में दत्तचित्त रहते है—इस घटना का करुणापूर्ण और रहस्य स्वरूप यहाँ पर दिया जाता है।

श्री विनोदकुमारने मान लिया कि, ससार के मोह में फँसे हुए माता पिता की आज्ञा कभी मिलनेवाली नहीं है। पिताजी की मोहदशा का उनको पूर्ण भान हो गया था। और चूँकि श्री पुरुषोत्तमजी महाराज या बाईस में से किसी भी स्थानकवासी मंडल के कोई भी साधु महाराज, माता पिताकी आज्ञा के सिवा दीक्षा देने की स्थिति में नहीं हैं; क्यों कि इस तरह दीक्षा देनेवालों को संसारी लोग उद्विग्न कर दें ऐसा समय है। उसकी आत्मा की आवाज़ तो कहती थी कि एक क्षण के लिए भी अब दीक्षा से वंचित नहीं रहना चाहिए। इस प्रकार का निश्चय कर के स्वयमेव दीक्षा लेने के भाव आत्मा में निश्चित कर लिए और फिर गुरु के पास ज्ञानाभ्यास में जिन्दगी को बीताने के आगमानुकूल निश्चय में मन रखा। ता. २४–५–'५७ के रोज शाम को माताजी के साथ अन्तिम भोजन किया। इस समय माताजी को आयंबिल का वार्षिक तप (वर्षीतप) चालू था, और संकल्प सफल होनेवाला था। अतः माताजीने उस समय स्वाभाविक रीति से आग्रह कर शुभशकुन में 'दही' खिलाया। माताजी के प्यार का वह अन्तिम संस्मरण था। पिताजी के साथ शाम को भोजन करने का अवसर बन नहीं सकता था, क्यों कि विनोदकुमारने रात्रि भोजन का त्याग किया था। हमेशा के लिए वे स्वच्छ चोविहार करते थे। पिताजी के लिए ऐसा भोजननियम नहीं था। और रात्रिभोजन का उन्हें बाध नहीं था।

उपर्युक्त प्रकार से माताजी के साथ अन्तिम भोजन के दिवस में आनन्द कर, संवत २०१३ के वैशाख की कृष्णदशमी और शुक्रवार के दिन, (ता २४-५-५७) आत्मध्वनि के अनुसार किसी को भी ज्ञात किए बिना घर और कुटुम्ब का त्याग किया। इतना ही नहीं पर दीक्षा में अन्तराय रूप मानकर सौराष्ट्र की भूमि का और गोंडल सम्प्रदाय का भी दीक्षा की उत्कृष्ट भावना से त्याग कर यह पुरुष निकल पड़ा। और ऐसा स्थल पकड़ा कि, कुटुम्ब चाहे कितनी भी खोज करे, फिर भी कुटुम्ब के ध्यान में न आए और उस समय के बीच मनोरथ पूरे हो जायें।

सूत्रन्याय इस स्थिति को 'चवन' कहता है। मतलब उसका भवपरिवर्तन से और जीव के गति (गमन) से है इस प्रकार अनेक जगहों में आगमों में इसे सिद्ध किया गया है।

राज्यनीति के न्याय से ऐसी आत्मा का ऐसे समय में दीक्षा हो तो 'सिसिम देव' का सम्बोधन है।

श्री विनोदकुमार स्वयमेव धर्मदेव रूप से उत्पन्न होते हैं। ये स्वयंदीक्षित पुरुष लोचन में प्रकट होते हैं, अत शास्त्र में 'अणगारे जाया' का सम्बोधन दिया गया है। साधु कुल में उत्पन्न होना उसका अर्थ है।

इस 'चवन' और उत्पन्न काल के बीच की स्थिति की पहचान पाठकगण अब बाद में आप ही आप समझ सकेंगे।



थावर जंगमं चेव, धणं धन्नं उवक्खरं।
पचमाणस्स कम्मेहिं, नालंदुक्खाओ मोअणे॥

भावार्थ – परिवार–घर का सामान, धन, धान्य और मनुष्य आदि कोई भी पदार्थ कर्मों द्वारा दुःख पाते हुए जीव को दुःख से छुड़ाने में समर्थ नहीं हैं। उ अ ६, गा ६

प्रकरण १८

मातापिता विनोदकुमार की खोज में।

श्री विनोदकुमार के गुप्तविहार के समय माताजी प्रतिक्रमण करती थीं, और पिताजी नित्यनियमानुसार अपने भाई श्री छगनलाल भाई के साथ रेईस कोस पर घूमने गए थे। साढे आठ बजे पिताजी घर पर आए। आनेके वाद उन्होंने विनोदकुमार को घर में नहीं देखा। पूछगाछ उन्होंने की। विनोदकुमार की माताजीने वताया कि–"मैं प्रतिक्रमण में थी, तव विनोदभाई एल्युमिनियम की छोटी बेग के साथ वाहर जाते थे। उन्हें मैंने देखा था।" इससे पिताजीने अनुमान किया कि शायद ज्ञान के अभ्यास के लिए डॉ. श्री एन्. के. गान्धी के पास गये होंगे। ऐसा मानकर विश्वास में वैठे रहे। रात के दस वजे, पर विनोदभाई घर पर नहीं आए। अतः डॉ. साहव के घर पर तलाश कराई; पर वहाँ से उत्तर मिला कि यहाँ आये ही नहीं है। फिर भी पिताजी को तो इतनी बड़ी चिन्ता का कारण न था। अतः मान लिया कि ज्ञानाभ्यास की आसक्ति में पूज्य श्री पुरुषोत्तमजी महाराज के पास मांगरोल गये होंगे। परन्तु दूसरे दिन, ता. २५-५-'५७ और शनिवार के रोज, मांगरोल टेलीफोन कर के पुछवाया। वहाँसे उत्तर मिला कि, विनोदकुमार भाई यहाँ आये ही नहीं है।

इस वात को जानने के वाद वालुभाई को गोण्डल, जेतपुर, जूनागढ और मांगरोल खुद ही जाकर तलाश करने की सूचना के साथ रवाना किया। साथ ही साथ सौराष्ट्र में जहां जहां टेलीफोन की सुविधा थी वहां सभी स्थलों में तार कर के

तलाश की; फिर भी कहीं से भी सन्तोषकारक समाचार नहीं प्राप्त हुए। उन का पता मिला ही नहीं। तब मातापिता को चिन्ता होने लगी; और उलझन में पड़ गये। इस प्रकार उलझन के परिणाम से पिताजी को दो महीनों से पहले की एक बात याद आई। वह यह थी कि, उस समय श्री विनोद कुमारने आज्ञा माँगी थी कि "बापूजी, अगर आपकी आज्ञा हो, तो इस चातुर्मास में खीचन (राजस्थान) जाऊँ; क्यों कि खीचन में पू. गुरुमहाराज श्री समर्थमल्जी मुनि विराजमान हैं। वे मुनि सिद्धान्त के विशारद हैं और अनेकान्तवाद के पूरे पंडित हैं। उन के पास शास्त्राध्ययन करने के लिए भी पू. लालचन्दजी महाराज आदि ठाणा ४ जानेवाले हैं। मेरी इच्छा भी उनके पास जानेकी है।"

पिताजी ने उत्तर में बताया कि "अभी समय बाकी है, थोड़े दिनों में हम उस के सम्बन्ध में निर्णय करेंगे—इस प्रकार की भूतकालीन बात का पिताजी को स्मरण आया। उन्हों ने पं श्री पूर्णचन्द्रजी दक को अपने पास बुलाया, और विनोद कुमार की चिन्ता व्यक्त की पण्डितजी का भी इस बात को समर्थन प्राप्त हुआ। पण्डितजी ने कहा—कुछ समय के पहले श्री विनोदकुमारने मुझ से जानना चाहा था कि खीचन में किस प्रकार की सुविधा है? मुझ से उसके सम्बन्ध में और भी बातें हुई थीं।" इस प्रकार दोनों का मतैक्य हुआ। खीचन तार कर के समाचार जानने के लिए पिताजीने पण्डितजी को सूचना दी। दिनाङ्क २६–५–'५७ के रोज़ तार किया गया। पता था पृथ्वीराज मालू, खीचन (राजस्थान)। दूसरे दिन तक कोई उत्तर वहाँ से प्राप्त नहीं हुआ। पिताजी की मानसिक चिन्ता बढ़ गई। इतने में दिनाङ्क २८–५–'५७ के रोज़ उत्तर मिला। जो निम्नलिखित है :

तार और तार का जवाब

PRUTHAVIRAJ MALU, KICHUN, -FALODI
HAS VINODCHANDRA REACHED THERE WIRE. CARE VINOD.
-PURANCHANDRA.

तार का भाषान्तर,

पृथ्वीराज मालु, खीचन, —फलोदी
विनोदचन्द्र वहाँ आये हैं ? तार से जवाब भेजें।

फलोदी से आया हुआ उत्तर

"VINOD" RAJKOT

REC. VINODBHAI ARRIVED SAFELY BECAME SAINT HIMSELF AT KHICHUN.

GAUTAMCHAND KHICHUN

जवाब का भाषान्तर :—
"विनोद" राजकोट

तार मिला। विनोद भाई सही सलामत इधर आये हैं और उसने खीचन में स्वयमेव दीक्षा अंगीकार किया है।

गौतमचन्द खीचन.

उपर्युक्त प्रकार से तार, श्री विनोदकुमार के पिताजी को मिला। तार मिलते ही चिन्ता और वेदना में अतिशय वृद्धि हो गई। और तर्कवितर्क उत्पन्न हुए। कोई भी मार्ग उन्हें दिखाई नहीं देता था। अतः उन्होंने अपने भाई श्री छगनलाल भाई को बुलाया। साथ ही साथ श्री केशवलाल भाई पारेख और श्री रा. व. श्री मोहनलाल भाई को भी बुलाया। अब इस के सम्बन्ध में किये जाने वाले कार्य की विचारणा का आरंभ किया गया। प्रथम तो यह निश्चित हुआ कि ये तीनों आदमी साथ मिलकर, श्री विनोदकुमार के पिताजी और माताजी मणिबहन को साथ लेकर वहाँ जाएँ। किन्तु भाग्यरचना कोई निराली ही थी। कुछ और ही घटना घटनेवाली थी। अतः उस विचार का परिवर्तन किया गया; क्यों

कि अगर सब एक साथ वहाँ जायें, और श्री विनोदकुमार न मानें तो? इस से दो गुटों में जाना ही उचित समझा गया। श्री विनोदकुमार के पिताजी सहमत हो गए। और इस समय अगर वे न मानें, तो पिताजी को यह प्रतीति थी कि, किसी भी प्रकार से दूसरी बार, श्री विनोदकुमार को राजकोट वापिस ले जायेंगे। (कर्म की विचित्र गति थी, और मातापिता के कर्मों में अब इस लोक में श्री विनोदकुमार का मुख देखना नसीब नहीं था, अतः यह घटना घटी।) श्री विनोदकुमार की माताजी की तो बहुत इच्छा थी; पर अत्यन्त मोह के आवेश में श्री विनोदकुमार के पिताजी श्री दुर्लभजी भाई को यह बात मंजूर न थी; क्यों कि श्री विनोदकुमार का माताजी का करुण हृदय अगर दीक्षा की आज्ञा दे दे तो?

निश्चित किये गये अनुसार श्री रा. ब. एम. पी. साहब श्री केशवलाल भाई पारेख और पण्डित श्री पूर्णचन्द्रजी दक ये तीन आदमी, उसी दिन रात की गाड़ी में यानी ता. २८-५-५७ के रोज रवाना हुए। ता. ३०-५-'५७ की सुबह में फलोदी स्टेशन पर पहुँचे। बैलगाड़ी में बैठकर व सीचन पहुँचे। वहाँ स्थविर मुनि श्री शिरोमलजी महाराज, पू. पण्डित रत्न शास्त्रविशारद श्री समर्थमलजी महाराज आदि ठाणा ८ और पू. तपस्वीजी महाराज श्री लालचन्दजी महाराज आदि ठाणा ४ विराजमान थे।

सीचन और मुनिमहाराजों की स्थिति का वर्णन।

सीचन, राजस्थान में जोधपुर जंक्शन के बाद, जेसलमीर के रण की ओर के प्रदेश में आया हुआ है। इस प्रदेश में कड़ी धूप पड़ती है। सारे वर्ष में केवल तीन से चार इंच वर्षा होती है। सीचन से जो रेल्वे है, उसका अन्तिम स्टेशन 'पोकरण' है। और पोकरण के बाद पाकिस्तान की सीमा आती है।

सख्त गर्मी की वजह से इस क्षेत्र में सब्ज़ीत्तरकारी होती ही नहीं, और मिल भी नहीं सकती। श्रीमन्त वर्ग बाहरसे शाक मँगवाकर खाते हैं। इस प्रकार की कमी के कारण से वहां के श्रावक भाई शाक आदि बहुत कम खाते हैं। वे रोटी के साथ दाल बनाते हैं, और नाममात्र के शाकादि पदार्थ कभी कभी आ जाते हैं। सामान्य रीति से सुखाई हुई तरकारी काम में लाई जाती है।

परिषह को सहन करने की क्षमतावाले मुनि जन ही इस क्षेत्र का स्पर्श कर सकने में शक्तिशाली होते हैं। गर्मी भी इतनी सख्त होती है कि सुबह के दस बजे तक साधुओं को 'गोचरी' कर लेनी पड़ती है। क्यों कि सभी जगह रेत की वजह से रास्ते पर पैर रखना मुश्किल हो जाता है। इतनी सख्त धूप अंगारों की याद दिलाती है।

खीचन के श्रावक बहुत श्रद्धावान हैं। विवेकशील और धर्मप्रेमी भी अगाधरूप से हैं। पूजनीय साधु-साध्वियों की उनकी भक्ति कुछ और ही प्रकार की अनूठी है।

यहां विराजित पू. श्री समर्थमलजी महाराज आदि ठाणा ८, और पूजनीय महासतियाँ आदि ठाणा १४ से १६ विराजित हैं। और भी पू. श्री लालचन्द्रजी आदि ठाणा ५-इस प्रकार इस समय साधु-साध्वियों की कुल संख्या २८ से ३० तक थी।

पू. श्री समर्थमलजी महाराज।

श्री श्रमण भगवन्त महाराज के शासन को, ऐसे विषम काल में सुशोभित करनेवाले ये महर्षि समर्थमलजी महाराज, शास्त्रों के पूरे तज्ञ हैं। वे बहुत नियमपालक हैं। सूक्ष्मबुद्धि के सयम के स्वरूप को बनाकर ऐसे वीरान और तकलीफ़वाले प्रदेश में वें अपने संयम की रक्षा कर रहे हैं। दर्शन करने-

वाले को यह बात पूर्णतया प्रतीत होती है, और शुद्ध साधु के दर्शन से लोग पवित्र बनते है आज अठाईस से तीस वर्ष हुए, ऐसे कठिन (परिषह सहन करने पड़ें ऐसे) क्षेत्र में, वे सेवा के ध्येय से विचरण कर रहे हैं। प्रथम तो वे अपने गुरुदेव की बीमारी की-वजह से इस क्षेत्र में रहे। गुरुदेव काल-धर्म को प्राप्त हुए, और गुरुभाई वृद्ध थ। उन की सेवा तो करनी ही चाहिए। शुद्ध अन्त करण से उन्होंने गुरुदेव की प्रथम सेवा की, और आजतक उसी शुद्ध अन्तःकरण से गुरुभाई की सेवा कर रहे हैं। और सयम को कठिन कसौटी के बीच, भगवान की आज्ञा में रहकर निभाया है।

साधुओं का निवासस्थान।

जिस स्थल में यह मुनिसम्प्रदाय निवास कर रहा है, उसके ऊपर की छत लोहे के पतरों की ही है। यहाँ की गर्मी के विषयमें तो आगे बताया गया है। ऐसे गरम प्रदेश में पतरे की छत के नीचे रहना कितना कठिन होगा, पाठक ही उस का विचार कर सकेंगे। लेखक को तो मालूम होता है कि असह्य गर्मी में इन मुनियों ने अपना निवास स्थान रखा है। ऐसे मुनियों का नाम-मात्र भी कदाचित् हमारे कानों में शब्द रूप से आ जाय, तो भी आत्मा का निस्तारण हो सकता है। इस विधान में द्वादशांगशास्त्र की साक्षी है। ऐसे मुनियों के दर्शन, अगर शुद्ध भाव से किये जायँ, तो कितना लाभ हो सकता है? कदाचित् ऐसे निर्ग्रन्थों के व्याख्यानरूप से वाणीलाभ मिले, तो भी आत्मा का परमकल्याण हो सकता है, तब फिर सयम की उत्कृष्ट आकांक्षावाले महामुनि श्री विनोदकुमार की आत्माने ऐसे महामुनि के दर्शन कर स्वयमेव दीक्षा ग्रहण कर कितना लाभ प्राप्त किया होगा?

श्री विनोदकुमार की खोज में पिताजीने भेजा हुआ मिशन, इस पवित्र धर्मस्थान में प्रविष्ट होता है। स्थान तो निरवद्य ही था। साधुओं के लिये बनाया ही नहीं गया था।

स्थानक की निरवद्यता।

खीचन के लोग सुखी हैं। इस सारे मकान को वे बदल सकते हैं। इन पूजनीय मुनि की ओर उनका पूज्यभाव भी असामान्य है। अत्यन्त मान की दृष्टि से वे समर्थमलजी की ओर देखते हैं। अगर वे चाहें तो विशाल उपाश्रय का निर्माण करना उनके लिए साधारण बात है। खीचन के श्रावकोंने पूज्यश्री से अनेकबार अनुरोध किया; पर साधुओं के लिए भवन के निर्माण की याचना का पूज्यश्रीने अनादर किया। इतना ही नहीं, पर जिस मकान में गुरुदेव विराजित हैं, उस मकान में अपने कारण से किसी भी प्रकार के परिवर्तन से जन्य 'आरम्भ-समारम्भ' बन जाय-इस लिये याचना स्वीकृत नहीं की गई। मकान पूर्वस्थिति में ही यथास्थित है। इतने वर्षों में धुलाया भी नहीं गया, और किसी भी प्रकार का परिवर्तन भी उन्होंने नहीं करने दिया। धन्य है इन महामुनिको कि जिन को शास्त्रनिर्दिष्ट अलंकार ही अच्छे लगते हैं। वे अलंकार सुबह-शाम के श्रावक के प्रतिक्रमण में शामिल हैं। 'खमत खामणा' (क्षमापना)के चतुर्थ 'खामणा' (क्षमापना) में वे आते हैं। उसका आराधन कर, लेखक आत्मनिस्तारणा चाहता है। स्तुतिपाठ नीचे दिया जा रहा है।

"चतुर्थ खामणा (क्षमापना) श्री गणधरजी, आचार्यजी, उपाध्यायजी से करता हूँ। गणधरजी बावन गुणो से युक्त हैं, आचार्यजी छत्तीस गुणों से युक्त हैं और उपाध्यायजी पचीस गुणों से युक्त हैं।" इस न्याय से लेखक अपनी

आत्मा में श्री समर्थमलजी महाराज को आचार्य के नाते स्थापित करता है, और प्रार्थना करता है कि, "आप-सीचन में हैं मैं सौराष्ट्र में हूँ-यहीं से आपको प्रत्यन्याय से छेलक की स्थिति में मैं अपने धर्मगुरु के नाते स्वीकृत कर रहा हूँ। आप मेरे धर्माचार्य है; आप उपदेश के परमदाता, महापुरुष, धर्मराज, गीतार्थ, बहुसूत्री, सूत्रसिद्धान्तों के पारगामी, तरण तारण, सारथीसमान, यात्रा के लिए बनाए गए जहाज के समान, कल्पवृक्षोपम, जिनशासनभूषण, धर्मनायक, श्री धर्मसिंहजी महाराज की पाटानुपाट में हुए आचार्य श्री १००८ ज्ञानचन्द्रजी महाराज के परिवार को विभूषित करनेवाले श्री संघ के मुख्य, श्रीसंघनायक, हैं। आप के इन सभी अलंकारों को मैं अपनी आत्मा में जागृति कर के आपकी पर्युपासना करता हूँ। मेरा आजका दिन धन्य बन गया! विनोद ४-२-५८"।

श्री विनोदकुमार के पिताजी दुर्लभजीभाई के द्वारा भेजे गए मिशन के भी धन्यभाग्य हैं, कि जिस मिशनने विनोदकुमार की खोज के निमित्त से भी ऐसे उज्ज्वल महामतापी साधु समूह के दर्शन किये।

डा था श्री एम पी साहब, श्री केशवलाल भाई पारेख और पं श्री पूर्णचन्द्रजी दकने, समर्थमलजी आदि सभी मुनियों को यथाविधि वन्दना की। बाद में श्री विनोदमुनि के साथ बातचीत शुरू हुई।

पूछने पर विनोदकुमारने उत्तर दिया। उन्होंने श्री केशव लाल भाई पारेख से कहा कि, 'मैंने दीक्षा का अंगीकार कर लिया है। उसमें अब किसी भी प्रकार का परिवर्तन शक्य नहीं है। आप हमारे वीरायी कुटुम्ब के हितैषी हैं। अगर आप सही रूपसे हितैषी हैं तो आपका चाहिए कि आप मेरी माताजी और पिताजी को समझा दें और मरी याद में

होनेवाली वड़ी दीक्षा के लिए अनुमति दिलवा दें, और वह भी एक सप्ताह के भीतर के समय में ही। इतनी ही नहीं पर 'सवी जीव करूँ शासन रसी' की भावना में भी मुझे अनुमति मिल जाय। वह भावना और कोई नहीं है, पर मैं चाहता हूँ कि मेरी मातजी और पिताजी मेरे साथ ही दीक्षा का अंगीकार कर लें। आज दिन तक मेरे ऊपर किये गये उनके उपकारों के फलों मे यही परमफल हो सकता है। आगम-सम्मत भी यही मार्ग है।

और हाँ, आप भी तो वहुत समय से निवृत्त होने की बातें कहते आये हैं! निवृत्ति के लिए यह स्थल सचमुच सुन्दर है। पूज्य ज्ञानी महाराजजी का भी परमसंयोग है, यहाँ रह कर निवृत्त वन जाइए और ज्ञान का लाभ ले लीजिए। मैं आप से भी यही कहता हूँ।

ऐसे दृढ़ उत्तर से उसी समय, विनोदकुमार को वापिस ले जानेकी मिशन की कल्पना के ऊपर पानी फिर गया। उपर्युक्त चर्चा के बाद, पूजनीय मुनि महाराजों ने बताया कि, साधुधर्म के नियमों के अनुसार श्री विनोदमुनि के साथ आहार-पानी और आवश्यकता पड़ने पर "वैयावच्च" किया जा सकता है। उसके लिए गुरुजनों की आज्ञा की आवश्यकता है। पू. मुनि महाराजों के कथनानुसार और विचार करने के बाद, मिशन को वह सही मालूम पड़ा। वह आवश्यक प्रतीति होने पर, पू. श्री लालचन्द्रजी महाराज से, विनोदमुनि के साथ साधुव्यवहार रखने का कहकर सब ता. ३१-५-५७ की रात को वहाँ से रवाना होकर, ता. २-६-५७ की सुबह को वापिस आये। परिषहक्षेत्र का अनुभव सभीने किया। आकर श्री विनोदकुमार के पिताजी को इन सब बातों से ज्ञात कराया गया।

जब इस मिलन ने जीवन में विनोदमुनि के साथ बात प्रीत की तब यह बात सभी मुनियों और संघ के समक्ष ही हुई थी। विनोदकुमारने तब अपने मुखसे, अपने द्वारा किये गये उग्र विहार और उसकी रचना के सम्बन्ध में भी कहा था। यह सब बाद के प्रकरण में कहा जा रहा है।

❀

मनहर

टूट पड़े शीघ्र पड़े मण्डप मनोरथ के,
जाते विनोदचन्द्र श्वास हिय को तपाता है ॥१॥
आनन्द का बाग आज ऊजड़ बना है अहा!
थाल पर बैठे पर भोजन न भाता है ॥२॥
आनन्दलता के साथ सूख गये सुख पेड़,
विनोद विरह आग, आग उपजाता है ॥३॥
बीराणी कुटुम्ब आज दीन-हीन बन गया!
हृदय में शूल सम 'वनजी' बनाता है ॥४॥

लेखक— वनजी जेसंगभाई केसरिया,
थूथरेजवाला

प्रकरण १७

च्यवन, उत्पत्तिरहस्य और विनोदमुनि का निवेदन।

ता. २४-५-'५७ के रोज़ श्री विनोदकुमार, रातको आठ बजे घर से निकले। सीधे ही राजकोट जंकशन स्टेशन पर जाकर उन्होंने जोधपुर का टिकट लिया। ता. २५-५-'५७ की सुवह में-सात वजे-वे महेसाणा पहुँचे। वहाँ ढाई घण्टे तक गाड़ी खड़ी रहती है। वीच के समय में वे गाँव में गये और मुडन करवा लिया। 'लुंचन' के लिये कुछ भाग में वाल रख थे। पात्रादि उपकरणो के लिए भी उन्हों ने वहाँ पूछा था; पर कुछ पूछताछ ज्यादा होने से वात को वहीं रहने दिया। कोई अगर परिचित मिल गया, तो संकल्प की पूर्ति में विघ्न आने की महती संभावना थी। महेसाणा से वे रवाना हुए। मारवाड जंकशन और जोधपुर जंकशन होकर, ता. २६-५-'५७ के रोज़ पौं फटते ही फलोदी आ पहुँचे। सुवह के साढ़े चार वजे वहाँ गाड़ी पहुँचती है। स्टेशन पर उतरने के वाद, खीचन जाने के रास्ते के सम्बन्ध में उन्होने स्टेशन मास्टर से पूछा। स्टेशन मास्टर ने कहा कि, अभी तो अन्धेरा है थोड़ी देर तक वेईटिंग रूम में आराम कीजिए, और थोडी देर के वाद जाने का सोचिए। स्टेशन मास्टर की इस वात की ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया, और अपनी भावना के अनुसार खीचन का रास्ता पकडा। इस सुकोमल पुरुषने पैदल चलकर, अपनी छोटी बेग लेकर किसी भी प्रकार के जोखिम के विचार के सिवा खीचन की ओर प्रयाण शुरू किया। हालाँकि स्टेशन के ऊपर वैलगाड़ी थी, उपयोग भी उसका किया जा सकता था किन्तु इस महापुरुषने वैलगाड़ी का उपयोग

नहीं किया, और पैदल ही चलने लगे। स्थानक पहुँचे और उपाश्रय में विराजित मुनिवरों के दर्शन किये। वन्दना-नमस्कारादि कर, यथाविधि सुखसाता पूछकर बाहर आये। और सामायिक के कपड़े पहने और पूज्य सन्तों के सम्मुख, सामायिक का विधि शुरू किया। सामायिक में 'करेमि भन्ते' का पाठ पढ़ते समय श्रावक की सामायिकता में जहाँ 'घटिकाइयं' का विधान आता है, उसके बदले में उन्होंने 'यावज्जीवन' (जावज्जीव) का उच्चार कर दिया। जैसे :– जाव नियमं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं। (अर्थात्–दो घड़ियों के लिए षट्काय जीवहिंसा से मैं निवृत्त होता हूँ।) इस के बदले में उन्होंने कहा – जावज्जीव पज्जुवासामि तिविहं तिविहेणं। (अर्थात्–तीन करणों और तीन योगों से यावत् जीवन में साधुता का ग्रहण करता हूँ।) यह उनका उच्चारण मुनि श्री लालचन्दजी के सुनने में आया (वे उस समय पीछे के भाग में परदे की ओट में मयूरी पदार्थ ले रहे थे।) उन्होंने पूछा–"विनोदकुमार! तुम यह क्या कर रहे हो?" प्रत्युत्तर मिला–"अप्पाणं वोसिरामि।" (अर्थात् यावज्जीवन संसार का त्याग करता हूँ) इस प्रकार कह कर उन्होंने अपना पाठ समाप्त किया। बाद में विनयपूर्वक दो हाथ जोड़कर वे कहने लगे कि, महाराज, यह तो हो चुका! मैंने स्वयमेव दीक्षा ले ली। बस, यह ठीक ही हुआ है। अब इस में किसी भी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है; और यह हो भी नहीं सकता। अब इस के सिवा अगर आपकी कोई आज्ञा हो, तो आदेश कीजिए।

इस प्रकार की स्वयंदीक्षा अंगीकृत करने के बाद उसी दिन दुपहर को मुनि श्री समर्थमलजी महाराजजीने विनोदकुमार मुनि को अपने पास बुलाया, और समझाया कि तुम एक बड़े खानदान कुटुम्ब के व्यक्ति हो। तुम्हारी दीक्षांगीकार की यह रीति ठीक नहीं है; क्यों कि तुम्हारे माँ-बाप को इसे

घटना के ज्ञान से बड़ा दुःख होगा। मेरी सम्मति है कि रजोहरण के दण्ड में से कपड़ा तुम निकाल लो, जिससे तुम श्रावकों की पंक्ति में आ जाओ। और आवश्यकता पड़ने पर तुम श्रावकों का साथ ले सकते हो। इस प्रकार तीन बार पू. महाराजजीने उन्हें समझाया था पर उन्होंने तीनों बार यही उत्तर दिया था कि, "जो हो गया वह हो गया, अब मुझे आगे क्या करना चाहिए, वह कहिए।"

इस स्थान पर लेखक श्री विनोदमुनि को करोड़ वन्दन करता है और प्रार्थना करता हुआ उन्हें सम्बोधन करके कहता है कि, हे परमपुरुष! अच्छा ही हुआ, आपकी माताजीने आप को जन्म दिया।

जो वीरपुरुष संसार को श्लेष्म की तरह छोड़कर वापिस स्वीकृत नहीं करते, वे ही सच्चे धर्मवीर कहलाते हैं।

जिस प्रकार युद्ध में कर्मशूर पुरुष पीठ नहीं दिखाते उसी प्रकार धर्मशूर भी माताकी गोद को लज्जास्पद नहीं करते। वे कर्म का पराजय करके मोक्षकी प्राप्ति अवश्य ही कर लेते हैं। कोई माता ही ऐसे पुरुष को जन्म देनेवाली होती है। ऐसे पुरुषों को आगम के सम्यग्दर्शन न्याय से 'समुच्चय केवली' कहा गया है। प्रमाण में बड़ी द्विषष्टि में देख सकते हैं। उस में चौथे से लेकर चौदहवें गुणस्थानवाले सभी जीवों को 'समुच्चय केवली' में स्थान दिया गया है।

श्री समर्थमलजी जैसे महामुनि के प्रश्न के सम्बन्ध में, श्री विनोदकुमारने दिये हुए उत्तर को सुनकर खीचन का चतुर्विध संघ विचार में पड़ गया। मुनियों के ऊपर संसारियों का अकारण हमला न हो, इस लिए उन मुनियोंने विनोदकुमार से एक जाहिर निवेदन करने के लिए अनुरोध किया। उस में साधुओं की सलामती का प्रश्न था।

श्री चतुर्विध संघ की इस आज्ञा को मानकर, दीक्षा के दूसरे दिन, अपने हस्ताक्षरों से, एक निवेदन उन्होंने संघ के

समक्ष पेश किया। भावसंक्षेप उसका यह है कि, मेरे मातापिता मोहाभिभूत होकर मुझे दीक्षा की आज्ञा नहीं दे सकते थे और मेरी अन्तर्ध्वनि मुझे, 'असमय जीविय मा पमायए' एक क्षणभर भी दीक्षारहित न रहने के लिए पुकार कर रही थी। विनोदमुनि के उस निवेदन को यथास्थिति यहाँ पर लिखा जा रहा है।

मुनिश्री विनोदकुमार ने स्वयमेव दीक्षा लेने के बाद खीचन (राजस्थान) के श्री चतुर्विध संघ के समक्ष किया हुआ

"निवेदन"

पूज्य मुनिराजगण, भगवती महासतियो, सुज्ञ और सम्यग्दृष्टि श्रावकगण एवं, श्राविकाओ !

गत कल, सुबह में यहाँ लाइध्रजी महाराज, कानमलजी महाराज आदिने मुझ, अपनी दीक्षा के लिए भरा और सोच विचार करने के लिए कहा; फिर भी मुझे लगा, कि भागवती प्रव्रज्या के लिए क्षणपरिमित समय का प्रमाद करना भी उचित नहीं है। अतएव मैंने श्री अरिहन्त भगवन्तों और श्री सिद्ध भगवन्त की साक्षी से एवं अपने गुरु महाराज के समक्ष यावज्जीवन (जावज्जीवा), तीन योगों और तीन करणों से पाठ पढकर अपनी आत्मा के कल्याण के लिए भागवती प्रव्रज्या का अंगीकार किया है।

मेरी अपनी भावना तो खीचन गाँव के बाहर से ही दीक्षा लेकर यहाँ आने की थी; परन्तु विचार हुआ कि पू. समर्थमलजी महाराज तो मुझ से अपरिचित हैं। अतः कुछ बाधा आ पड़े तो ? —इस विचार से मैं यहाँ श्रावक के नाते आया था। पर जब मेरे परमोपकारी गुरुवर्य श्री लालचन्द्रजी महाराज के दर्शन किए कि मेरी भावना स्थिर हुई; और प्रव्रज्या अंगीकृत की है। पू श्री समर्थमलजी महा राजजीने मेरे हित के लिए मुझसे कहा कि, मुझे अपनी

प्रशंसा के लिए नहीं, किन्तु लोगों को कहीं झूठा ख्याल न आए कि मेरी प्रव्रज्या क्षणिक भावनाओं से प्रेरित है, या ज्ञानराहित्य से हुई है। और भी लोगों में जिनशासन की प्रभावना हो, इसे हेतु से मुझे अपना जीवन वृत्तान्त प्रकट करना चाहिए। इस आज्ञा को मान कर मैं अपने लिए संक्षेप में कुछ कहूँगा।

संसारपक्ष की वात करता हूँ। शामजी वेलजी वीराणी मेरे दादा होते है। मेरे पिताजी का नाम दुर्लभजी है, और माताजी का नाम मणिवहन है। हम पाँच भाई हैं। सभी के नाम क्रमशः (१) केशवलाल, (२) हसमुखराय, (३) शान्तिलाल, (४) विनोदचन्द्र (यानी मैं) और (५) रमेशकुमार।

मेरी बड़ी वहन का नाम मंजुला, और छोटी बहन का नाम सुशीला है। मेरे पिताजी आदि, करीव छः वर्ष के पहले, राजकोट से वोटाद, नवीनचन्द्रजी महाराज के दर्शन के लिए गए थे, तभी मुझे महाराज के पास रहकर 'महाराज' वन जाने की इच्छा थी; परन्तु मुझे अनुमति न मिली। हालाँकि मेरी माताजीने तो तव भी मुझे अनुमोदन दिया था। उस के पहले और वाद में भी गोण्डल सम्प्रदाय के गादी-धारक पू. आचार्य श्री पुरुषोत्तमजी महाराज और अमीचन्द्रजी महाराज का निकट का सम्पर्क मुझको रहा। अतः धार्मिक संस्कार तो वने ही रहे। सांसारिक सामान्य अभ्यास कर के, मैं अपने भाई से मिलने के लिए लन्दन गया था। १९५३ का वह वर्ष था। वहाँ भी मेरे पिताजी का पत्र था कि मैं ज्यादा अभ्यास वहीं रहकर करूँ; परन्तु मेरी इच्छा जैनधर्म का अभ्यास करने की थी। वह तो वहां नहीं वन सकता था। सुदान की पीढि में भी घर के आदमी की ज़रूरत थी। अतः मैंने पोर्टसुदान की हमारी पीढि में एक-दो वर्ष तक काम किया था। उसके दरम्यान एक दिन, सामायिक वांधकर मैं वैठा

था। यहां उत्तराध्ययनजी सूत्र का १९ वाँ अध्ययन पढ़ने में आया। मुझे लगा कि मनुष्यजीवन को परमफलान्वित करने वाली केवल एक दीक्षा ही है॥

श्री अमोलखऋषिजी महाराज का जैन तत्त्व प्रकाश भी पढ़ने में आया था, और मुझे लगा कि, सांसारिक ज्ञान की बनिस्बत आध्यात्मिक ज्ञान–बत्तीस आगमों का ज्ञान–अनन्तगुणा से अच्छा है। मुझे दिल में हुआ कि अब कुछ अनुकूल संयोग मिल जाएँ तो मुझे सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और साधुसाध्वियों की सम्यग्दृष्टि का परिचय करना चाहिए। अब मैंने विचारानुसार किया। बहुत साधुओं और आर्याओं के सत्सङ्ग में, मैं आने लगा।

उसमें एक समय चींचपोकली के उपाश्रय में सहज ही लालचन्द्रजी महाराज के दर्शन हुए। दर्शन होते ही मुझे बहुत आनन्द हुआ फिर तो मैं लगभग हररोज लालचन्द्रजी महाराज, मानमलजी महाराज, कानमलजी महाराज और पार्श्वमलजी महाराज के पास दर्शन करने के लिये जाया करता था। उन सब की कृपा दृष्टि से कुछ कुछ ज्ञान प्राप्त करता रहता था। बाद में गत चातुर्मास के पहले मुझे दीक्षा की भावना हुई थी। अतः मैंने अपने पिताजी से आज्ञा माँगी थी; पर उन्होंने उस बात की ओर ध्यान नहीं दिया था। इस बात को एक वर्ष बीत गया। फिर से मैंने अपने पिताजी से आज्ञा माँगी; और इस समय भी प्रथम की तरह ही बात को उन्होंने उड़ा दिया। अनन्त उपकारी मेरे पिताजी के समक्ष मैं बड़ी भाषा में बात करने की क्षमता नहीं रखता था। और दूसरी तरफ मुझे लगा कि आयु अशाश्वत है, और ऐसे उत्तम कार्य के लिए मुझे जरा भी प्रमाद करना उचित नहीं है। अतः सोचसमझ कर ही मैंने यह कार्य किया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि श्री वीरप्रभु महावीर स्वामी का सकल संघ मेरे इस कार्य को अनुमोदन करेगा ही। तथास्तु।

प्रकरण १८

श्री विनोदमुनि का गोपाल स्वरूप से बलिदान

(श्री विनोदमुनि कालधर्म को प्राप्त हुए–स्वर्गगमन की ओर)
"असंखयं जीविय मा पमायए"–नामक मंत्र का साधक उत्पन्न होकर अस्त हो जाता है।

मातापिता को अपनी अज्ञानता का भान होता है–कर्म की विचित्र घटना–खीचन के चतुर्विध श्रीसंघ के समक्ष महान शोकापात।

अद्भुत–रहस्यमय घटना

इस संसार का स्वरूप बड़ा विचित्र है। श्री विनोदमुनि के मातापिता को अपने भेजे हुए मिशन की ओर से खबर मिली कि श्री विनोदकुमार की स्वयंदीक्षा, परिपक्व निश्चय के परिणाम से हुई है। अतः मनुष्य तो क्या, किसी देवकी भी शक्ति नहीं है कि उनके निश्चय को परिवर्तित कर सके। इस करुणारसमय उत्तर से मातापिता को असह्य दुःख हुआ। थोड़े समय में चि. शान्तिलालभाई के लग्न का प्रसंग था। इस प्रसंग का लाभ लेकर पिताजीने विनोदकुमार के वियोग के दुःख को भूलने का प्रयत्न किया, और वाणी से श्री विनोद-कुमार की माताजी को भी दुःख भुला देने के अनेक प्रयत्न शुरू किये। लग्न के निमित्त से गृह–शोभा आदि कार्य किये गये, और अनेक चीज़ें लाकर मकान को सुन्दर बनाया गया। लग्न प्रसंग अतिआनन्द और उत्साह से मनाया गया। उसके परिणाम से श्री विनोदकुमार के वियोग का दुःख विस्मृत

हो जाय। परन्तु शुभ फलों के आस्वादन करनेवालों को यह मालूम नहीं होता कि, इस ससार के शुभप्रसग क्षणिक ही हैं, और अशुभ कर्मों का प्रबल उदय एक क्षण में लात लगाकर सुख को हरप लेता है। इस आगम सिद्धान्त के न्याय के अनुसार श्री विनोदकुमार के मातापिता को भयकर पश्चात्ताप करने का समय कर्मगति ने दे दिया। वे न तो दीक्षामहोत्सव मना सके, या न तो इस परम पवित्र पुरुष के दर्शन करने का अवसर भी पा सके।

घटनावली

श्री विनोदकुमारने तो भसराजभाई के साथ दीक्षा लेनेका निर्णय किया था, पर कर्मों ने दोनों को अलग कर दिया।

श्री विनोदमुनिकी दीक्षा वैशाख कृष्ण द्वादशी, रविवार, ता २६-५-'५७ के रोज स्रीचन में हुई, और मुनि श्री भसराजभाई की दीक्षा ज्येष्ठ शुक्ल पञ्चमी, सोमवार, ता ३-६-'५७ के शुभ दिन पर मांगरोल में हुई। किए हुए निश्चय के अनुसार तो दोनों की दीक्षा हो चुकी; परन्तु अन्तराय कर्मों से आचार्य श्री १००८ पुरुषोत्तमजी महाराज के शिष्यों के नाते दोनों मिलकर नहीं रह पाये।

श्री विनोदकुमार का स्रीचन की ओर आकृष्ट करनेवाला, श्री लाम्भचन्दजी महाराज का सम्बन्ध था। वह सम्बन्ध बम्बई में निष्पन्न हुआ था। इस सम्बन्ध के अनुसार जहाँ जहाँ श्री लालचन्दजी महाराज विराजित हों, वहाँ के श्री संघ के साथ पत्रव्यवहार कर, पत्र द्वारा ज्ञान प्राप्त करने का श्री विनोदकुमार सदैव प्रयत्न करते थे। एक समय बाल ब्रह्मचारी महासतीजी को श्री ससार पक्ष से श्री लाम्भचन्दजी महाराज की पुत्रीस्वरूपी थीं, उन्होंने किसी के द्वारा श्री विनोदकुमार को खबर भेजी कि, पू श्री लाम्भचन्दजी महाराज आदि ठाणा ४, स्रीचन

जानेवाले हैं, और खीचन में पू. शास्त्रविशारद श्री समर्थमलजी महाराज विराजित हैं। उनके पास उनकी अभ्यास करने की भावना है।

यह घटना आकर्षक बनी थी, औरश्री विनोदकुमार की स्वयं-दीक्षा भी हो चुकी।

थोड़े समय में फलोदी के श्री संघने पू. श्री लालचन्दजी महाराज से फलोदी में चातुर्मास करने का अनुरोध किया, किन्तु ज्ञानाभ्यास की तमन्ना में, पहले तो मुनिश्रीने फलोदी के श्री संघ की विज्ञप्ति का अस्वीकार किया। इस समय फलोदी में किसी का भी चातुर्मास नहीं था। मुनिजीने श्री संघ की विनय का अस्वीकार किया, अतः श्री संघ बहुत गमगीन बना। करुणारसस्वामी मुनिजी श्री लालचन्दजीने इस वातावरण को देखकर अपना निर्णय बदला, और चातुर्मास फलोदी में करने का निर्णय कर, अषाढ शुक्ल त्रयोदशी को विहार किया, और फलोदी आए।

फलोदी में हरकोई श्रावक श्राविकादि व्यक्ति इन मुनि श्री विनोदकुमार के दर्शन कर बहुत आनन्दित होता था। और अपनी भाषा में पूछता था कि, "कैसा है? मुनिजी!" इस प्रकार पूछने का भाव यह था कि विहार में आपको चलने का परिषह सहन करना पड़ा है उस का असर हुआ कि नहीं। क्यों कि श्री विनोदमुनि का सुकोमल शरीर देखनेवाले को चकित कर देता था।

श्री विनोदमुनि का ज़वाब उनकी मातृभाषा में मिलता था वह इस प्रकार था-'बहुज आनन्द छे, बहुज आनन्द छे।' यह भाषा, सुननेवाले को बहुत प्रिय लगती थी। गुरुजीने भी विहार के बाद पूछा कि क्यों विनोदमुनि, पैर दुःखते

हैं क्या? उत्तर में श्री विनोदमुनिने बताया कि 'महाराज! पैर तो दुखते हैं, पर आनन्द बहुत है।

कर्म की किसी विचित्र घटना की वजह से इन मुनियों का फलोदी में आगमन हुआ है। यह भाव तो केवली भगवान के अतिरिक्त और कोई नहीं जान सकता। इतना जरूर है कि मतिश्रुत ज्ञान के फल में इन भावों के स्वरूप को असं ख्य जीविय या पम्मायए मन्त्र साधना में घटना को स्वरूपसे नहीं, परं कालधर्मस्वरूप से अवश्य श्री विनोदमुनिने आत्मा में अनुभूत किया होगा। अर्थात् अपने मरण काल के उन्हों ने अवश्य दर्शन किये होंगे। और यही उनकी सिद्ध दीक्षा का कारण था यह बात घटना का यह स्वरूप निश्चित कर देता है, और उनके निवेदन में भी इस सत्ता की आवाज़ है।

जिस प्रकार श्री गजसुकुमाल को अन्तगड केवली होने के लिए अपने राक्षसरूप श्वशुर सोमिल का निमित्त था। उसने श्मसानभूमि में ध्यानस्थ गजसुकुमाल के सर पर आर्द्र मिट्टी की मर्यादा कर, भयंकर आग लगा दी। परिणाम यह हुआ कि एकायक उत्कृष्ट परिषह को सहन कर श्री नेमिनाथ भगवान की छत्र छाया में इन महामुनि के समस्त निर्वाण प्राप्त किया अर्थात् सिद्धि का वरण किया। उसकी साक्षी में आगे प्रसिद्ध है, उस प्रकार कर्म की गति न्यारी है—उस प्रकार विनोदमुनि के कालधर्म का कर्मोंने समर्थन किया। यह दृष्टान्त कदाचित् आगामी चौवीसी के प्रथम तीर्थंकर इस के समय में कहा जायगा और अनेक जीव, उस आगमन्याय से सिद्धि को प्राप्त करेंगे। इस प्रकार का सूचन घटना के स्वरूप में सन्निविष्ट हुआ मालूम पड़ता है।

इस वर्तमान काल में काल के प्रभावसे महाकर्मी आत्माओं को ऐसी घटनाओं के रहस्य की लेश भी गन्ध प्राप्त नहीं हो सकती।

कालधर्म का आकर्षण।

दीक्षा के बाद के ठीक ढाई मास के बाद घटना ऐसी घटी कि, श्री विनोदमुनि को टट्टी जाने की संज्ञा हुई। शास्त्र की परिभाषा में उसे 'स्थंडिलगमन', 'ठले जाना', 'पासवण निमित्तक गमन', आदि कहते हैं। इस क्रिया में साधु को जंगल में जाना चाहिए। उसकी क्रिया के लिए जानेकी उन्होंने तैयारी की।

जिनकी आज्ञा में वे प्रवृत्त थे, उन श्री तपस्विराजजीने कहा कि, बहुत गर्मी है, ज़रा ठहर जाइए। आज्ञा सर पर चढ़ाकर, उस के बीच के समय में समिति गुप्ति न्यायसे वस्त्र रजोहरण आदि की प्रतिलेखना कर ली। इतने में असह्य दबाव आया। फिर से आज्ञा माँगी। उन्होंने कहा कि 'मुझे हाजत विशेष है; अतएव मैं जाता हूँ, जल्दी ही लौट आऊँगा'। काल की गहन गति को दुःखद रचना करनी थी। आज ही हाजत के लिए अकेले जाने का प्रसंग था। रोज़ तो सभी साधु साथ मिलकर जाते थे।

हाज़त से मुक्त होकर वापिस आ रहे थे, इतने में रेल्वे लाईन के ऊपर दो गायें आ रही थीं। दूसरी ओर से गाड़ी भी आ रही थी। उसकी व्हीसल बजने पर भी गायें दूर नहीं जा रही थीं। विनोदमुनिने देखा कि अगर ये गायें नहीं हटेंगी, तो कुचली जाएँगी। मुनिका हृदय कम्पित हो उठा। महती अनुकम्पाने मुनि के हृदय में स्थान लिया। हाथ में रजोहरण लेकर जान की परवाह किये विना गायों को बचाने के लिए दौड़े। गायों को तो उन्होंने बचा ही लिया, परन्तु इस क्रिया में षट्कायरूप जीवों की दया के साधन रूप रजोहरण, कि जो विनोदमुनि को आत्मा से ज्यादा प्यारा था, वह गाड़ी की लाईन के ऊपर गिर गया, और षट्काय जीवों के रक्षक श्री विनोदमुनि उसे प्राप्त करने के लिये दौड़े। जड़वाद को सिद्ध करते हुए एँजिन के बीच में वे

दौड़ते दौड़ते आ गये। अपना बलिदान उन्होंने दे दिया। और गोपालस्वरूप से स्वर्ग की ओर प्रयाण किया। उस के प्रमाण में उन की मृतदेह को देखनेवालों के शब्द नीचे दिये जा रहे हैं।

धराशायी हो गये। शरीर से रक्त का प्रवाह फूट पड़ा, और कुछ देर बाद प्राणान्त हो गया। फलोदी व शीघ्र में यह खबर फैलते ही हाहाकार मच गया। सभी लोग कहते थे कि, गौरक्षण में मुनि श्री ने अपने प्राण झोंक दिये। उन के चेहरे पर शान्ति विराजमान हो रही थी। चेहरे को देखने पर यही लगता था कि उन्होंने समता भाव धारण कर शान्ति से देह छोड़ी। इसी से चेहरे पर किसी प्रकार की विकृति नहीं आयी।

इस दुर्घटना की खबर, राजकोट में निवास करते हुए श्री विनोदमुनि के ससार पक्षीय पिताजी दुर्लभजी भाई को फलोदी श्री सघने टेलीफोन से भेजी। उस समय पिताजी बाहर गये थे, और माताजी मणिबहन सामायिक-प्रतिक्रमण में बैठी थीं। केवल एक नौकर घर में था। उसने टेलीफोन उठाया, पर वह नौकर टेलीफोन में कुछ समझ नहीं पाया। परन्तु बताया कि टेलीफोन आया था, और "श्री विनोदमुनि फलोदी पधार गए, और शान्ति में विराजमान हैं।" ऐसा उस में कहा गया था। दुर्लभजी भाई को तो आश्चर्य हुआ कि फिर से समाचार क्यों आये।

सुबह के सात बजे फलोदी श्री संघ का तार, श्री दुर्लभजी भाई के हाथों मे आया। उस में भी ऐसा घोटाला हुआ कि 'ट्रेइन एक्सीडन्ट' के बदले 'रेइन एक्सीडन्ट' लिखा गया था। गाड़ी के बदले बरसात उस का भय होता था। इन शब्दों से दुर्लभजी भाई की आत्मा भ्रमित हो गई। खराब

समाचार हैं, यह तो उन्हें मालूम हो ही गया; परन्तु विशेष निश्चित करने के लिए बम्बई के द्वारा फलोदी से समाचार मँगवाए कि जो समाचार स्पष्ट थे। इस से सारा वीराणी कुटुम्ब इस समाचार को सुनकर दुःख में निमग्न हो गया।

समाचार बीजली की तरह राजकोट के सभी स्थलों में पहुँच गये और राजकोट के श्री संघमें और दूसरी जगहों के स्थानकवासी संघों में शोक की भावना फैल गई।

श्री दुर्लभजी भाईने स्पेशियल प्लेईन में फलोदी पहुँचने की व्यवस्था की। शव के लिए अन्तिम वस्त्र, और अग्नि संस्कार के लिए चन्दन काष्ट आदि साथ में ही लेनेका प्रबन्ध किया और फलोदी श्री संघ को टेलीफोन के द्वारा सूचना भेजी गई कि 'मैं स्पेशियल प्लेईन से वहाँ आता हूँ, और अग्नि संस्कार को रोका जाय।' परन्तु टेलीफोन और तार के घोटाले से, श्री संघ को अग्नि-संस्कार कर डालना पडा। सूचना का टेलीफोन आधे घण्टे की देरी से पहुँचा। यदि सूचना आधे घण्टे पहले से पहुँची होती, तो मातापिता को पुत्र के दर्शन शवरूप से हो जाते, किन्तु भाग्य की कमी से अन्तराय कर्मोंने तार, टेलीफोन आदि की अव्यवस्था करा दी। वह प्रसंग जिन्दगी के लांछन के रूप में बन गया।

अतः प्लेइन का प्रोग्राम वापिस कर दिया गया, और (मातापिता) श्री दुर्लभजी भाई और मणिबहन, ता. १४-८-'५७ के रोज़ ट्रेईन द्वारा फलोदी पहुंचे। इस समय दर्द भरी स्थिति से, श्री संघ के मुखी तुल्य पच्चीस गृहस्थों ने ट्रेईन के ऊपर जाकर स्टेशन पर इन दुःखी मातापिता को धीरज बँधाया। तब सुबह पौने चार बजे का समय था।

इस प्रसंग पर मातापिता को इस दुःखद घटना का तीव्र स्मरण आ गया, और बोलने के प्रारंभ के साथ ही गला

भर आया, और हृदय विह्वल हो उठा। आँखों में आँसुओं की धारा बहने लगी। उन की माताजी तो अति विह्वल होकर रुदन करने लगीं। यह दृश्य अत्यन्त ही करुणाजनक था। फलोदी का श्री संघ भी इस घटना से बहुत दु खी था। परन्तु समयानुसार मन पर काबू रख कर यथा शक्य धर्मश्रद्धा के शब्दों से इन दुःखी मातापिता के चित्त को सान्त्वना दी। उस के बाद श्री संघ के साथ श्री दुर्लभजी भाई और मणिबहनने पू तपस्वीजी श्री लालचन्दजी महाराज के दर्शन किये। इस प्रसंग पर भी श्री विनोदमुनि की हमेश के लिए प्राप्त अनुपस्थिति ने मातापिता के हृदय को अत्यन्त विह्वल बना दिया। आँखों में से उनकी सावन भादो बरसने लगे। माता–पिता की इस स्थिति को देखकर स्वयं तपस्वीजी श्री लालचन्दजी महाराज का हृदय भी भर आया। (जिन्हें अपनी प्रिय धर्मपत्नी के देहावसान के समय आँसू नहीं आये थे।) ऐसे महापुरुष की भी इस प्रसंग पर शोक की छाया में आकर आँखों में से टप टप आँसू गिरने लगे। इकट्ठे हुए समस्त संघ में भी शोक छाया गहरी बन गई। पाँच मिनट तो शून्यवत् स्थिति रही। किसीने एक शब्द भी न कहा–न बोला जा सका। इस प्रसंग पर श्री लालचन्दजी महाराजने अवसर को पहचान कर और धैर्य को यकायक एकत्रित कर के श्री विनोदमुनि के मातापिता की सान्त्वना के लिए उपदेश शुरु किया। संक्षेप में इस का सार नीचे दिया जाता है।

अब तो यह रत्न चला गया। समाज का आशादीप अस्त हो गया। एकदम उदित होकर अस्त हो गया। अब वह दीपक फिर से आ सकनेवाला नहीं है। श्री विनोदमुनि की संसार पक्ष की माताजी मणिबहन से मुनिश्री ने कहा कि, बहन ! शान्ति रखना है। इस विषय में महापुरुषोंने

भी हाथ धो डाले हैं, और सभी को मरणशरण होना ही पड़ता है। तब फिर अपने जैसे पामर प्राणी की क्या ताक़त है? अब तो शोक दूर कर, हमें चाहिए कि हम उनके मृत्यु के आदर्श को देखकर धीरज का अवलम्बन करें।

इन वचनों से मातापिता का हृदय शान्त हुआ। और बताया कि, "कर्मों की गति बड़ी विचित्र है। फलोदी श्री संघने तो अपना क़र्तव्य बजाया, परन्तु हमारे भाग्य में अपने इस रत्नरूप पुत्र के शव के भी महर्षिरूपसे दर्शन करने का नहीं लिखा होगा। अन्तराय कर्मोंने हमारे लिए ऐसी रचना की कि तार टेलीफोन में भी अव्यवस्था उत्पन्न हो गई।" उपर्युक्त घटना के अनुसार संघ के साथ चर्चा वहाँ हुई।

इस बात को कहते कहते भी पिताजी का हृदय बार बार भर आता था; और बात के अन्ततक आँखों में से अश्रधारा बहती रही। उस समय भी समस्त चतुर्विध श्री संघ भी शोक में निमग्न हो गया, और तपस्वीजी श्री लालचन्दजी महाराजने स्वस्थ होकर, श्री दुर्लभजी भाई से कहा कि, "भाई! यह आपके ही दुर्भाग्य के अन्तराय का उदय नहीं है; किन्तु हमारे भी महान अन्तराय और दुर्भाग्य का भी उदय है। वे स्वयं आप के घरकी ही नहीं, पर वे विनोदमुनि हमारे घरकी भी सम्पत्ति थी; परन्तु वे स्थिर नहीं रह पाये! दीक्षा के रूप में उनको शायद ढाई मास हुए होंगे। यों तो सदैव एक मुनि उनके साथ ही रहा करते थे। केवल दो बार ही उन को अकेले जाना पडा था, और इस समय तीसरी बार वे अकेले गए थे।

लगभग चार बजे उन को शारीरिक हाजत पर जाना पड़ा और बाहर जाने के लिए आज्ञा माँगी। इस राजस्थान प्रदेश में भयानक गर्मी पडती है, अतः हमने कहा कि थोड़ी देर

थक ठहर जाइए; क्यों कि गर्मी की सख्ती के कारन से पुलेबहुत तप्त हो गई होगी। वे रुक गये, और पास में बैठकर अपने वस्त्र और रजोहरण आदि का पडिलेहण किया। वहां तक पांच बज चुके थे। उस के बाद मुनिजीने कान्ह, महाराजजी से पूछा कि, 'मेरे साथ चलेंगे?' कान्ह मुनिने उत्तर दिया कि, 'अभी आहारपानी आ जायगा। आहार करके साथ चलूँगा।' तब विनोद मुनिने कहा कि, 'मुझे अब हाजत के लिए जानेकी बहुत जरूरत है, आप आहारपानी कर लें, तब तक मैं जाकर तुरन्त ही वापिस लौटूंगा।' उसी दिन मानमुनि को दसवाँ उपवास था। पारसमुनि भी उस समय इन्फ्ल्यूएन्जा की बीमारी में से अभी अभी ही कुछ अच्छे हुए थे; अतः कोई भी उनके साथ न जा सका। वे जगल गए, और पौने घण्टे में एक ओसवाल भाई हमारे पास दौड़ते दौड़ते और हांफते हांफते आए, और दुर्घटना के समाचार दिये। हमने साधारण चोट की ही कल्पना की थी। श्री कान्हमुनिजी आहार के लिए बैठे, और एक कवल मुंह में गया ही था कि ऐसे समाचार मिले। हम एकदम ही जैसे थे वैसे ही घटना स्थल पर, बात जानने के लिए पहुँच गए। हमने आधा रस्ता पसार किया था कि, मुनिजी के स्वर्गप्रयाण (कालधर्म) करने के समाचार मिले। एकदम हृदय के ऊपर वज्रपात जैसा हो गया।

दूसरी ओर मानमुनिजी उपाश्रय में थे। उन को खबर मिली कि मुनिजी के पैरों में गंभीर चोट लगी है, और एक पैर तो टूट गया हुआ मालुम होता है। उस समय मानमुनि के प्रतिज्ञा की, अहो शासनदेव! जहाँ तक मैं जीवित रहूँगा, वहाँतक अपने पिता और बन्धुओं को छोड़कर आए हुए इन महाभाग्यशाली त्यागी वैरागी मुनिजी की सेवा करता रहूँगा,'

और मेरी संयमयात्रा को पूर्ण करूँगा। आखिर में उन्हें भी समाचार मिले कि, हमारा आशादीपक बूझ गया है। हमारी संपत्ति लूटी गई, हमारा रत्न खो गया! परन्तु भावि प्रबल है। हमारे अपने लिए दुगुने दुर्भाग्य के अन्तराय का उदय है।"

इस प्रकार कहते कहते तपस्वीजी महाराजजी का कंठ भर आया, और आँखों में से अश्रुधारा वहने लगी।

उस के बाद विनोदमुनि के मातापिता से तपस्वी मुनिजी ने उन्हें आश्वासन हो, ऐसा उपदेश दिया। वह वैराग्य से भरपूर उपदेश था। मांगलिक सुनाने में आया, और उस के बाद एक विराट सभा के समक्ष पाट के ऊपर विराजमान होकर कान्हमुनिने व्याख्यान किया।



दुमपत्तए पंडुयए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम! मा पमायए॥

भावार्थ:- जैसे रात्रि और दिवसों के अतिक्रम होने पर वृक्ष का पत्र पीला होकर गिर पड़ता है इसी प्रकार का मनुष्यों का जीवन भी है। इसलिए हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

प्रकरण १९

ऐसी हुई परिस्थिति के विचार के साथ श्री कान्ह मुनिजी महाराजजी का व्याख्यान

गद्गद कण्ठ से व्याख्यान की शुरुआत हुई, और श्री विनोदमुनिजी के अनुकम्पापूर्ण हृदय और आदर्श बलिदान के विषय में प्रकाश डाला गया। कान्ह मुनिने बताया कि,—उपाश्रय से चार फर्लांग दूर (लगभग) श्री विनोदमुनिजी शौच से वापिस आते समय एक वृक्ष के नीचे विराजमान थे। बहुत सुकुमार होने से वे बहुधा इस प्रकार आराम करते थे। उसी समय उन्होंने देखा कि रेल्वे सड़क पर दो गायें आ रही हैं। और इंजिन की सीटी बजने पर भी दूर नहीं जा रही हैं। तब उन्होंने अपने श्रम की परवाह किये बिना, तीव्र अनुकम्पा के वश होकर पात्र वहीं रखकर उन गायों को सड़क पर से दूर करने के लिए, वहां दौड़ना शुरू किया। गायों को हटाते समय पवन जोर से आने से रजोहरण उड़कर पटरियों के आगे के किनारे पर जा गिरा। मुनिश्री उसे लेने के लिए जा रहे थे और उस में व फिसल पड़े। अपने को सम्हाल न पाये, अतः इस दुःखद घटना का निर्माण हुआ। उस समय मुनिश्री के मुख से वेदना या पीड़ा की चीख लेश भी नहीं निकली थी; पर 'अरिहन्त अरिहन्त'—का रटन ही सुनाई देता था। इस आदर्श बलिदान को दो सिन्धी भाइयों और दो हरिजन बहनों ने देखा था पर दुर्घटना के बाद कोई भी वहां उपस्थित न रहा। सिन्धी भाइयों ने डर से विचार किया कि कहीं हम

को इस प्रकरण में साक्षी बनाकर व्यर्थ दौड़ादौड़ी का प्रसंग उपस्थित किया जाय। और बेचारी ग्वारिन बहनें तो इतनी घबड़ाई हुई थीं कि, वे न तो वहां खड़ी रह सकीं या न तो कुछ कह ही पायीं।

दूसरे दिन इस सत्य घटना के समाचार प्राप्त हुए। अस्तु। जो कुछ भी हुआ है उसके पीछे कुछ दैवी संकेत या तो आत्मा की गुप्त प्रेरणा समझनी चाहिए। मुनिजीने तो अपने जीवन और संयम को सफल बना दिया। छह छह वर्षों तक पिताजी से अनुरोध करनेवाले एवं किसी भी दिन पिताजी के आदेश का भंग नहीं करनेवाले मुनिजी को आयु की अल्पता मालूम हो गई, और बिना किसी से कहे, मुनिजी घर से बाहर निकल गए। बहुत दूर जाकर खीचन में यकायक दीक्षा का उन्होंने अंगीकार किया। मुनिजी निरन्तर 'असंखयं जीविय मा पमायए' कहा करते थे। मन्त्र का मतलब है कि टूटी हुई आयु का फिर से सन्धान नहीं हो सकता, अतः क्षणमात्र का भी, प्रमाद नहीं करना चाहिए। यह जीवन अत्यन्त छोटे निमित्त को पाकर भी समाप्त हो सकता है। उसे किसी भी तरह फिर से जोड़ा नहीं जा सकता। अतः एव एक क्षण का भी प्रमाद नहीं करना चाहिए. और सातत्य से मुक्ति की साधना में तल्लीन रहना चाहिए।

(नोटः—श्री विनोदमुनि के जीवन की समीक्षा करते हुए लेखक को यह मालूम हो सका है कि, जब वे संसार में थे, तब अनेक विद्वान मुनियों के दर्शन करते थे, और चर्चा भी करते थे। ऐसी चर्चाओं के समय उनका प्रधान प्रश्न यही रहता था कि, इस पंचम काल में मोक्ष क्यों नहीं मिल सकता, यही, मुझे समझना है। इस चर्चास्पद प्रश्न में उनकी भावना, इस महादुःखरूप संसार को छोड़कर, किसी

भी सयोग में सिद्धि का प्राप्त करने की थी। हालाँ कि यह बात उन के पिताजी के खयाल में ही थी, पर मोहनीय कर्मों के उदय में दीक्षा की आज्ञा उन के कण्ठ में से बाहर न निकल पायी क्यों कि भाविभाव नियम के अनुसार बनने घटना को कौन रोक सकता है ?)

प्रबल भावना से प्रेरित होकर उन्होंने स्वयं दीक्षा स्वीकृत करली। ढाई महीनों तक के समय में उन्होंने अपनी भावना की पूर्ति भी कर ली ! अहा ! इसे दैवी भावना या शुद्ध आत्म प्रेरणा के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ! उनके शव की मुखमुद्रा भी कितनी सौम्य थी ! ऐसी आकस्मिक घटना और ऐसी वेदना हुई थी, फिर भी उनकी मुखमुद्रा के ऊपर आर्त–भय–संक्लेश या ग्लानि का लेश भी संकेत नहीं मिलता था। जिस किसीने भी उन की 'मुखमुद्रा' को देखा था, उन्होंने मुक्तकण्ठ से उन की प्रशंसा ही की है। सोलह सोलह घण्टों तक शव न दुर्गन्ध न रहना, सारी रात उस शव शरीर के जंगल में पड़े रहने पर भी और रक्त से भूमि स्वावस्त भरी हुई होने पर भी किसी भी जन्तु का पाँव न माना, तीन तीन दिनों तक श्मसान में भस्म का ज्यों का त्यों रहना,–य सब चिह्न उनकी मृत्यु की सफलता समाधि और शुद्ध जीवन के द्योतक हैं। आकस्मिक घटना का गासेवारूप हेतु भी उनके जीवन की शुद्धता का परिचायक है। ऐसे विश्वास के लिए लेखक की आत्मा आन्तरिक प्रेरणा पा सकती है।

नोट :– लेखकने श्री विनोदमुनि की शिष्यता सम्पादित करने के लिए यह प्रकरणबद्ध रचना की है। श्री कानमुनिजी का व्याख्यान इस के लिए प्रमाणभूत माना जा सकता है। आगमन्याय स लखकने यह मान लिया है कि, श्री विनोद

मुनि का मनुष्यलोक में, देवलोक में से आगमन हुआ है। स्थानांग सूत्र के चतुर्थ स्थान में चतुर्भंगी है, उस में देवगति में से मनुष्य गति में उत्पन्न होनेवाले के चार लक्षण बताये गये हैं:—

(१) उदारचित्त का होना, (२) कण्ठ का सुस्वर होना, (३) धर्मानुरागिता होना, (४) देवगुरुओं की भक्ति का होना। विनोदमुनि का जीवन इन चारों लक्षणों से युक्त बना था। वह तो जगविख्यात बात है। इसी प्रकार मनुष्य देह को छोड़कर देवगति को प्राप्त करनेवालों के अनेक लक्षणों को, द्वादशांग शास्त्र उपवाय सूत्र में बताता है। इन लक्षणों के आधार पर, कल्पदेव लोक की उच्च देवगति की कल्पना की जा सकती है। अवश्य ही इन महामुनिने उसी देवगति को प्राप्त किया होगा। क्यों कि कथित लक्षणों से उनका समस्त जीवन व्याप्त था, और कालधर्म की प्राप्ति भी तो ऐसी ही थी।

द्वादशांगों का मन्तव्य है कि, जीवों का मनुष्य-भव, बहुत मात्राओं में दुःखपूर्ण ही है। कदाचित् उसमें सुख की प्राप्ति आ जाती है, फिर भी वह सुखप्राप्ति सिंधुसम पापपुंज के आगे बिन्दु की उपमा में ही रहती है। पूर्णतः पापभीरु आत्माएँ ही उच्च कोटिकी देवगति या सिद्धगति को प्राप्त कर सकती हैं। अवश्य ही विनोदमुनि की आत्मा ऐसी पापभीरु थी। तभी न उन्होंने नितान्त रूपसे पाप से बचने के लिए मातापिता की आज्ञा का अनादर किया! तभी तो उन्होंने स्वयमेव दीक्षा को अंगीकार किया, और आत्मा का कल्याण सिद्ध कर लिया।

संसार की विषयासक्ति ही भवान्तर में अनन्त संसार में मारा मारा घुमानेवाली निम्न गति के लिए कारणभूत है। शूरवीर पुरुष ही उसका त्याग कर सकते हैं। त्याग करने के बाद भी यदि मनोभाव सांसारिक आसक्ति में डूबे रहें, तो 'संथारा' करना ही आवश्यक समझा गया है।

जिस प्रकार अंगान कुल के साप के डंक मारने पर उसका चूसा नहीं जा सकता-वह स्वयं चूसता नहीं-ठीक उसी प्रकार धर्मवीर पुरुष, प्रव्रज्या को धारण करने के बाद 'संथारा' स्वीकृत कर लेते हैं, पर चूक कर घाटना उनके लिए असंभव ही है। ऐसे वीर पुरुष कौन थ? श्री बीराणी कुटुम्ब के वीर विनोदकुमार ही, कि जिन्होंने वीरता से पूर्ण त्याग कर के व्यवहारियों की व्यावहारिकता को धूल में मिला दिया।

इन मुनि को लेखक के कोटिशः नमस्कार हों। लेखक अनुरोध करता है कि, इन मुनिजी की अशाता करनेवाले सभी को जाहिर में उन की क्षमा माँगनी चाहिए।

परिपूर्ण वैराग्य का उपदेश कर भी कान्हमुनि, अपने उपदेश को पूर्ण करते हैं, और श्री विनोदकुमार के संसारपक्ष के मातापिता को धीरज मिलता है। दुपहर के लगभग दो बजे एक विराट शोकसभा का आयोजन होता है और पूर्वनिर्दिष्ट हेतु से विनोदमुनिजी के जीवन का यहाँ बयान किया जाता है। अतिशोक भावना में शोकसभा का विसर्जन होता है।

दूसरे दिन, श्री दुर्लभजी भाई और मणिभाइने स्टेशन में विराजित श्री समर्थमलजी महाराजजी और तपस्वीजी श्री सिरेमलजी महाराजजी के दर्शन किये। यहाँ जहाँ श्री विनोदमुनिने स्वयं दीक्षा ली थी उस जगह पर चाँदी की डिब्बी में सुरक्षित लुंचित केशों को और संसारी अवस्था के वस्त्रों का उन्होंने देखा, तब उनका हृदय भर आया। सारा शरीर शिथिल हो गया। पंडितजी महाराजने, श्री विनोदमुनि के असाधारण गुणों का स्मरण कराते कराते उन्हें असीम आश्वासन दिया।

शाम को मातापिता फिर से फलोदी आये। बाद में श्री विनोदकुमार की माताजीने महाराजजी से कहा :-

"महाराज जी! मेरी यही भावना थी कि अब मैं विनोद महाराज को उनके गुरुदेव के साथ, स्वयं पदविहार कर गुजरात में लाऊँगी, पर वह भावना पूरी नहीं हुई। आप गुजरात में ज़रूर आइएगा, और राजकोट को पावन कीजिएगा।

विनोदमुनि की आपने बहुत सहायता की है। आप उनके तारक हैं। यह उपकार कभी भूला नहीं जा सकेगा, पर अब राजकोट पधारने की कृपा कर दूसरा उपकार कीजिएगा।

"श्री विनोदमुनि की स्मृति में कुटुम्बी जनों के पश्चात्ताप के परिणाम से व्रत पच्चक्खाणरूप से त्याग और पश्चात्ताप की भाषा।"

फलोदी में ही मुनिजी के समक्ष, माताजीने १००१ सामायिक करने की प्रतिज्ञा ली, और वनस्पतिकाय को यावज्जीवन (जावजीव) अभयदान दिया। पिताजी दुर्लभजी भाईने अपने से हुई मोहमय गलतियों का, तपस्वीजी लालचन्द्रजी महाराज के आगे स्वीकार किया, और एक मास में चार दिन, निवृत्ति-संवर-पूर्वक व्यतीत करने का व्रत भावपूर्वक धारण किया। महाराजजी के उपदेश का वह फल था। रसिकभाई वीराणीने विधिपुरःसर, नवकार मंत्र की एक माला प्रतिदिन फिराने की प्रतिज्ञा ली। पिताजी दुर्लभजी भाईने गद्‌गद् कण्ठ से तपस्वीजी लालचन्द्रजी महाराज का उपकार माना, और राजकोट पधारने का हार्दिक अनुरोध किया।

फलोदी श्री संघने मुनिजी के मातापिता को यथासमय स्टेशन पर पहुँचा कर, अल्पपुण्य फलोदी नगरी के ऊपर कृपादृष्टि रखने की प्रार्थना करते हुए व्यथित-हृदय से विदा किया।

श्री विनोदमुनि के मातापिता राजकोट आये। श्री छोटालाल

भाईने रात्रि भोजन का त्याग किया। आठम–पाखी का उपवास और एक सामायिक करने की भी प्रतिज्ञा उन्होंने ली।

माताजी मणिबहनने देश में आकर तप शुरू किया। अन्तिम तिथि के दिन अठ्ठम यानी तीन उपवास करने शुरू किये। हर महीने में एक अठ्ठम आता है।

घर की सभी स्त्रियोंने अष्टमी, पाखी और निर्णीत तिथि–महीने में पाँच तिथियों–में कुछ न कुछ करने का निश्चित किया। उस में एकासण(श)न, उपवास, आयंबिल आदि का समावेश होता है।

श्री दुर्लभजी भाईने राजकोट में आकर महीने की पाँच तिथियों में आयंबिल करने का निश्चित किया। साथ ही साथ उन दिनों को धर्मकरणी में ही व्यतीत करने का नियम किया।

सुइ च लध्धुं सद्ध च, वीरिय पुण दुल्लह।
बहवे रोयमाणा वि, नो यण पडिवज्जए॥

भावार्थ :– मनुष्य जन्म के साथ श्रुति और श्रद्धा के प्राप्त हो जाने पर भी संयम में पुरुषार्थ का होना तो दुर्लभ ही है। क्योंकि बहुत से जीव, धर्म में रुचि होने पर भी उसे ग्रहण नहीं कर सकते।

प्रकरण २०

बा. ब्र. श्री. विनोदमुनि की संसार अवस्था की जीवनपोथी में से

धर्म प्रेरक जीवन प्रसंग

*

सम्यग्दर्शन अथवा समकित.

व्यवहार से-

शुद्ध देव – अरिहन्त

शुद्ध गुरु – निर्गन्थ, पाँच समितियों एवं तीन गुप्तियों से युक्त।

शुद्ध धर्म – केवली भगवान के द्वारा प्ररूपित–कथित।

निश्चय से-

अरिहन्त सिद्ध भगवान के समान गुणमय बनना। संघ का संचालन- जिस में ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, तप और दान, शील ओर तप भावना के कार्य संनिविष्ट होते हैं।

समकित अथवा सम्यक्त्व।

१ आत्मा स्वयं अपना निर्णय कर ले, उसे समकित कहा जाता हैं।

२ आत्मा अपने कर्तव्यों का निर्णय करे, उसे समकित कहते हैं।

३ अपने कर्तव्यों से उपार्जित फलों का निर्णय आत्मा कर ले, उसे समकित कहा गया है।

४ जिस के सिवा हम रह सकते हैं– जिन्दा रह सकते हैं– वह आत्मा का गुण कदापि नहीं माना जा सकता।

समय के चार प्रकार।

१ समय-काल, जो सूर्य की गति से होता है, वह केवल ढाई द्वीपों में ही है; क्यों कि उन ढाई द्वीपों में ही सूर्य गति करते हैं। ढाई द्वीपों के बाहर असंख्य सूर्य चन्द्र हैं, पर वे गतिशील नहीं हैं। जहां हैं, वहीं वे स्थिर ही रहते हैं।

इन ढाई द्वीपों में समय रूप काल है उसे व्यवहार काल कहा जाता है, क्यों कि सूर्य की गति से काल उत्पन्न होता है। यह व्यवहारकाल-निश्चयकाल-हरएक जीव-पुद्गलों के ऊपर प्रभुत्व रखता है।

२. समय यानी सिद्धान्त – देखिए-आचारांगसूत्र।

३ समय का मतलब मत से है (३६३ दल)

४ समय का तात्पर्य आत्मा से है।

भगवानने पन्नवणाजी में आदेश दिया है कि,

'जं समयं जाणइ, तं समयं न पासइ।'

भगवानने 'जाणइ-पासइ' जो भाव प्रकाशित किये हैं, वे आत्म सत्ता की अपेक्षा से हैं। जो सत्ता 'ज्ञातव्य' है, वह 'दृश्य' नहीं है, और जो सत्ता 'दृश्य' है, वह 'ज्ञातव्य' नहीं है। 'ज्ञातव्य' सत्ता को 'ज्ञानोपयोगी' कहा जाता है, और 'दृश्य' सत्ता को 'दर्शनोपयोगी' माना जाता है।

वैराग्य।

सांसारिक पदार्थों से विरक्ति ही सही वैराग्य अवस्था है। आत्मरम स्वभावरमण ही वैराग्य है।

मनुष्य को उचित है कि अपने मनमें निरन्तर वह भगवान का ही चिन्तन रखे। दूसरा संकल्प वह न

आने दे, क्यों कि जीवन अल्प और अनित्य है, न जाने कब अचानक ही इस जीवन का अन्त हो जाय।

अपनी निपुणता प्रदर्शित करने के लिए कभी किसी से कुछ भी नहीं कहना चाहिए किन्तु हितबुद्धि से ही कहना चाहिए।

सन्तसमागम।

जिज्ञासाबल, विचारबल, ध्यानबल और ज्ञानबल की वृद्धि के लिए आत्मार्थी जीव को तथारूप ज्ञानी पुरुष के समागम की विशेष उपासना करनी उचित है।

ज्यों ज्यों निःस्पृहता बलवान हो, त्यों त्यों ध्यान बलवान होता है और कर्म भी बलवान हो सकता है।

वेशपूजा।

परिग्रहधारी यतियों का सन्मान करने से मिथ्यात्व को पोषण मिलता है, मार्ग अवरुद्ध होता है।

दाक्षिण्य–सभ्यता–की भी रक्षा करनी चाहिए।

जीव को त्याग करना अच्छा नहीं लगता, और कुछ करना अच्छा नहीं लगता। उसे तो मिथ्या निपुणता–होशियारी की ही बातें करनी हैं।

ब्रह्मचर्य।

सर्व चारित्र्य वशीभूत करने के लिए, सर्व प्रमाद दूर करने के लिए, आत्मा में अखण्ड वृत्ति रखने के लिए और मोक्ष सम्बन्धी सभी साधनों की जय–प्राप्ति करने के लिए 'ब्रह्मचर्य' अद्भुत सहकारी साधन है, अथवा मूलभूत ही है।

प्रतिक्रमण।

प्रतिक्रमण यानी पीछे हटना। आत्मा स्व-भाव को

भूल कर विभाव में गई थी। वहाँ से लौट कर स्वभाव में स्थापित करना ही 'प्रतिक्रमण' है।

व्रत प्रत्याख्यान।

निम्नलिखित पच्चक्खाण 'कार्तिकी पूर्णिमा तक के हैं। तदुपरान्त भी जहाँ तक पाले जायेंगे,' लाभ ही होगा।

१ चाय पीने का प्रतिबन्ध।

२ पन्द्रह द्रव्यों से अधिक का त्याग।

३ कन्दमूल– आलू, प्याज, लशुन, गाजर आदि का त्याग। शारीरिक कारणों से अदरक हल्दी आदि पदार्थों का उपयोग करना पड़े, तो उनका अपवाद। (आगार।) किसी भी जगह पर भोजन के लिए जाना पड़े, और वहाँ दाल आदि में ऐसे पदार्थ डाले हों तो वहाँ उनका आगार। (अपवाद)

४ इस चातुर्मास में वेरावल से चार मील के आगे जाने का प्रतिबन्ध। अनिवार्य कारणवशात् राजकोट का आगार।

५ पाँच वर्षों तक फिल्म आदि मनोरंजन (शो) देखने की मेरे लिए मनाही है।

ज्ञानवृद्धि के कारण।

१ निद्रात्याग से ज्ञान बढ़ता है।
२ ऊनोदरी से ज्ञानप्राप्ति होती है।
३ मितभाषिता ज्ञान की उत्पत्ति का कारण है।
४ पण्डित की सोहबत से ज्ञान लाभ होता है।
५ विनय से ज्ञान मिलता है।
६ कपट रहित तप से भी ज्ञान की उपलब्धि मानी गई है।
७ संसार की असारता की पहचान ज्ञानदायक है।

८ परस्पर चर्चाविचारणा भी ज्ञानोत्पत्ति का कारण है।
९ ज्ञानीजन के पास अध्ययन भी ज्ञानजनक है।
१० इन्द्रियों के विषयों का त्याग करने से भी ज्ञान बढ़ता है।
११ उद्यम करने से भी ज्ञानवृद्धि होती है।

बा. ब्र. श्री विनोदमुनिने एक दीक्षार्थिनी बहन को लिखा हुआ पत्र।

"देखिए! अब आपको दीक्षा लेने के भाव पूरे हैं, तब ज़रूर ही दीक्षा ले लीजिए, और यथासाध्य शीघ्रातिशीघ्र ही तैयार बन जाइए। गुरुपद की धारणा भी कर लीजिए, और त्वरा से उनके चरणों में चली जाइए। उनके साथ ही रहिए। बड़े बापूजी, माताजी, सास ससुर—सभी की अनुमति ले लीजिए। अपनी गुरुआनी के साथ ही जीवन व्यतीत करने का संकल्प कर लीजिए। उनकी नजर में आप जब दीक्षा के योग्य हों, तब यथाशीघ्र दीक्षांगीकार कर ही लीजिए। त्याग और वैराग्य में आप बहुत आगे बढ़ें।

पौद्गलिक सभी पदार्थ, शुष्कतृणवत् तुच्छ हैं, ऐसा आप समझिए।

मित्रता और दुश्मनी तो हरएक जीव के लिए अनेक प्रकार से होती ही रहती है।

प्रतिज्ञा।

आज से दो वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत को धारण किया है। —विनोद (११ दिसम्बर, १९५९)

आज से छह महीनों तक एक मास में बीस माला करनेका नियम धारण किया है। (१९ दिसम्बर, १९५९)



बम्बई से मैंने ३७१) रुपये लिए। उस रकम में से

७१) पम्बई से रतलाम के टिकट के, और रतलाम में २०० रुपयोंकी मालाएँ, साधु मुनिराजों के लिए रजोहरण ५, गुच्छे ४८ और ६० शमन मालाएँ आदि चीजें खरीद कीं। अवशिष्ट पैसे टेक्सी, मजदूरी, पक्षीस आदि में दिये।



कुछ धर्मप्रेरक हृदयोद्गार।

'क्रान्ति' क्या करनेवाली है? सूत्रों में ही तो सब लिखा है।

अब हम अमर भये न मरेंगे।

शौर्य अगर हो, तो एक वर्ष का काम दो घड़ियों में कर लो।

जगत में अनेक काल तक लिया, कम लेना सीखो।

चतुर्थ आरे की अविरल प्राप्ति होने पर भी 'पुरुषार्थ करने से ही मुक्ति मिलती है।

अजीर्ण दूर होने पर ही अमृत मिलता है-भाता है-।

शान्ति से ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है।

आत्मसिद्धि के लिए द्वादशांगी का ज्ञान पढ़ते हुए बहुत समय बीता जा सकता है पर शान्ति का सेवन करने से तुरन्त ही आत्मसिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

"णिग्गन्थं पावयणं अय अट्ठ अयं परमट्ठे सेसे अणट्ठे। सद्दहामि णं भन्ते। णिग्गन्थं पावयणं"

जिज्ञासा।

१ भगवान कौन हैं। अरिहन्त और सिद्ध।

२ भारत में ऐसे कितने धर्म हैं, जिनके अवलम्बन से जीव मोक्ष की ओर जा सकता है?—जैनधर्म।

३ जैनेतर धर्म में कुछ नहीं बातें भी आती हैं, तब

फिर उसे पढ़ने में क्या दोष है? कुछ सही बातों के साथ गलतफ़हमियाँ भी आ जाती हैं।

४ आत्मा का त्रैकालिक स्वरूप क्या है? चेतना।

५ विद्वान साधु-श्रावक अपना कोई स्वतन्त्र अभिप्राय दे सकते हैं या आधारपूर्वक ही बोल सकते हैं?

उनका अभिप्राय सूत्रसंगत ही होना चाहिए।

६ साधु संसार का त्याग कर, वीतरागानुसारी और उन्हीं के आज्ञापालक होते हैं क्या वे अपने उस आराधन ध्येय को छोड़कर किसी काम को कर सकते हैं?

जिनाज्ञा के अतिरिक्त वे कुछ नहीं कर सकते।

७ जैन दर्शन में साधुश्रावकों के लिए बताई गई क्रिया का ध्येय क्या है? अथवा मोक्ष प्राप्ति का रहस्य क्या है?

सम्यक्परिणति.

८ हमें कैसे यह प्रतीति हो सकती है कि हम मोक्ष के सही रास्ते पर हैं? स्वानुभूति से ही।

९ भाषा समिति का क्या अर्थ है?

निरवद्य और सही मोक्षमार्ग का कथन। जिन प्रवचनों के आधार से मोक्षमार्ग की प्ररूपणा करना और शुद्ध भाषा का व्यवहार रखना।



प्रकरण २१

श्री विनोदमुनि को श्रद्धाञ्जलि।

खीचन से_शास्त्रविशारद, स्याद्वादशैली के उच्च कोटि के ज्ञाता, १००८ मुनिजी श्री समर्थमलजी महाराज जी का विनोदमुनि के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में प्रमाण पत्र मूल-

निवेदन।

(यह निवेदन मुनिजी के अनुभवों से समेत है-उसे नीचे दिया जा रहा है)

प्राथमिक एवं अल्पकाल के परिचय से मुझे उन के विषय में अनुभव हुआ कि उनकी धर्मप्रियता और धर्माभिलाषिता अस्थिमिंजा प्रेमाणुरागरक्त का परिचय करानेवाली थी। संसार में प्राप्त मधुर वैभव की ओर उनकी रुचि ही नहीं दीखाई देती थी। वे तो वीतरागवाणी के संसर्ग से विषय-विमुख धर्मकार्यों में कटिबद्ध और सर्वदा तल्लीन ही दीखे पड़ते थे। खास तौर से परिचय के अभाव से भी उनकी वैराग्य-धारा से, उनकी धर्मानुरागिता और जीवनचर्या से कठिन कार्य करने के समय में भी घबराहट के बदले सुखानुभव की वृत्ति लक्षित की जाती थी।

इन आशास्पद मुनिजी से जैन समाज को अधिक लाभ होने की आशा थी; पर उन का आयुबल कम होने से वह आशा फलीभूत न हो पाई।

स्वर्गगत आत्मा, मोक्ष की शीघ्रातिशीघ्र अधिकारी हो, यही कल्याणकामना है।

'सम्यग्दर्शन'–मासिक के सम्पादक की बहुमानपूर्वक श्री विनोदमुनि को श्रद्धाञ्जलि।

योगनिष्ठ महापुरुष का श्री विनोदमुनि के लिए अंतर्नाद।

उपर्युक्त 'सम्यग्दर्शन' मासिक के सम्पादक, श्री रतनलालजी डोशी, सैलाना जैन समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। जैनदर्शन का उनका अभ्यास और तदनुकूल आचरण उनके जीवन की विशिष्टता है। श्री विनोदमुनि के निर्वाण के बाद उन्होंने मुनिजी के मातापिता के ऊपर एक आश्वासन पत्र लिखा है। अपने मासिक पत्र में भी विनोदमुनिजी को उन्होंने श्रद्धांजलि दी है, और मुनिजी का बहुमान किया है।

वे बताते हैं कि श्री विनोदमुनिने संसार में मेरा सम्पर्क किया था। जिस परिचय के विषय में निम्नलिखित शब्द प्रकाश डाल सकते हैं।

स्वर्गीय श्री विनोदमुनिजी से मेरा पहला परिचय, लगभग सवा वर्ष पूर्व यहाँ– सैलाना में–ही हुआ था। एक दिन अचानक वे रतलाम के दो भाइयों के साथ यहाँ आये। उनका विचार तो दो घण्टों के बाद ही वापिस जानेका था, परन्तु बातचीत में मन लग गया, और रातभर यहाँ ठहर गये। रतलामवाले साथी तो जल्दी ही सो गये, परन्तु हमने रात के दो बजे तक चर्चा की। प्रातःकाल भी रतलामवाले साथी तो जल्दी ही करते थे; परन्तु उन्होंने फिर बातचीत की और दूसरे मोटरबस में रवाना हुए। उस चर्चा के दरम्यान ही मैं समझ गया था कि वे कितने पवित्र आत्मावाले थे। उस समय मी मैं बीमार था। मै कभी बैठे बैठे बात करता, तो कभी सोते सोते। पर वे तो बैठे ही रहते थे; ध्यान से बात सुनते थे और पूछने योग्य प्रश्नों को पूछते थे। उनकी हार्दिक सरलता और पवित्रता की गहरी छाप मुझ पर पड़ी थी।

सीक्ना में मुझसे उनकी बातें हुई। उन्होंने कहा था कि, "मैंने एक बार अभिग्रह कर लिया था कि जब तक दीक्षा के विषय में स्पष्ट खुलासा नहीं हो, तब तक आहार नहीं करूंगा। फिर मातेश्वरी-के प्रयत्न स आश्वासन मिल गया था।"

उनकी बातचीत पर से मैंने अनुमान लगाया कि उनकी समझ जोरदार थी, फिर भी उस विषय में उन्होंने अपनी उतावली को प्रकट नहीं किया। मेरे विचार से उनका अनुकूल क्षेत्र सौराष्ट्र ही था। पू पुरुषोत्तमजी महाराज के पास ठीक रहता। मैंने ऐसा सोचा था, इस लिए मैंने उनसे पूछा भी था। वे उधर होनेवाले कोलाहल के भय-विरोध से ही मारवाड़ चले गये थे। खैर, ये बातें तो गईं, उनकी चर्चा अब व्यर्थ है। अब क्या हो सकता था?

मुझे तो उनकी हार्दिक पवित्रता, सरलता, त्यागमियता धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा और साधनारत जीवन ने अधिक मुग्ध कर लिया था। यदि यह पवित्रात्मा संसार में रहती तो समाज के लिए, संस्कृति के लिए और निर्ग्रन्थ धर्म के लिए बड़ी उपकारक सिद्ध होती।

उनके अचानक देहावसान ने मेरे मन में सन्देह भर दिया था। मैंने इस विषय में फलादी लिखा भी था। पर सन्देह गलत साबीत हुआ। इसी लिए मैंने विलम्ब से समाचार छापे।

"श्री विनोदमुनि के स्वर्गवास के विषय में योगनिष्ठ मुनि का अभिप्राय।"

श्री विनोदकुमार मुनिजीने बालभाव व परिणाम में देह छोड़ी, और दूसरे देवलोक में दो पल्योपम की स्थितिवाले महान ऋद्धि शाली देव हुए हैं, ऐसा सम्भव है।

स्वर्ग से आई हुई आत्मा, पुन स्वर्गप्रयाण कर गई।

मैं तो विश्वास करता हूँ कि, वे वहाँ से 'च्यवन' कर मोक्ष प्राप्त करेंगे। आप को व मातेश्वरीजी को शोक नहीं कर के धर्मध्यान में ही समय वीताना चाहिए। श्री विनोदकुमार जी आपको संसार की असारता की महान शिक्षा दे गए हैं। कम से कम दृढ श्रद्धा, विशुद्ध श्रद्धा यथाशक्य शुद्ध धर्म प्रचार की भावना, स्वाध्याय, विरति की ओर अधिक ध्यान रखने की विनति है।

प्रत्येक व्यक्ति को यह सदैव याद रखना चाहिए कि, मुझे एक दिन अवश्य मरना है। यदि यह सोचकर वह मृत्यु सुधारने के लिए सावधान रहे, और अपनी परिणति सुधारता रहे, तो उसकी दुर्गति हो ही नहीं सकती।

मैं आप से अधिक क्या निवेदन करूँ? आप स्वयं सुज्ञ हैं। डाक्टर साहब का सत्संग करते रहेंगे, तो उनसे अधिक लाभ होगा। व्यवसाय प्रधान जीवन में से थोड़ा समय वचा कर स्वाध्याय आदि में लगाएँ तो उत्तम होगा।

श्रीमान् सेठ रामजीभाई से तो राजकोट में साक्षात्कार हुआ था; परन्तु आपश्री से मिलने का सौभाग्य नहीं हुआ। अव मेरा उधर आना भी नहीं होता। कभी योग हुआ तो मिलेंगे।

आप सपरिवार प्रसन्न होंगे। कृपा रहे। योग्य सेवा फरमावें। पत्रोत्तर प्रदान करें।

रतनलाल डोशी,
सैलाना (म. प्र.)

विनयावनत,
रतनलाल डोशी।

ता.क. मातेश्वरीजीको प्रणाम निवेदन करें।

*

यतो धर्मस्ततो जयः।

श्री विनोदमुनि के वारे में सुना कि, उन्होंने स्वयमेव

भागवती दीक्षा अंगीकार की। वैराग्य की इतनी सीमातीत उत्कृष्टता, लक्ष्मीपुत्र का ऐसा अपूर्व त्याग सुनकर मन मचल उठा उस आध्यात्मिक आत्मा के दर्शन के हेतु।

किन्तु समयचक्र चला। एक दिन सहसा सुना तो चौंक पड़ा। उफ! मार्मिक आघात! दिल के अरमान दिल में रह गए। वाह रे! क्रूर काल!!

'चन्द्र चमका, लेकिन एक मुल्क मुसाफर ही अस्त हो गया।'

लक्ष्मीलाल जैन, साहित्यरत्न,
प्रधानाध्यापक,
श्री महावीर मिडिल स्कूल, लोचन।

श्री विनोदमुनि के विषय में श्रीमान् सेठ चम्पकलालजी गोलेछा (लोचन) का अनुभव।

राजकोट निवासी श्रीमान् दानवीर सेठ श्री दुर्लभजी त्रामजी वीराणी, के सुपुत्र श्री विनायकुमारजी के प्रथम दर्शन लोचन में हुए। वे जिस दिन यहाँ आए, उसी दिन स्वयं दीक्षित होकर 'अणगार' बन गए। थोड़े दिन यहाँ रुककर उनका फलोदी पधारना हुआ। इस ओर मैं मद्रास चला गया; इससे फिर से मुझे उनके दर्शन का शुभ अवसर (सौभाग्य) प्राप्त नहीं हुआ। हालाँकि उनके साथ मेरा परिचय स्वल्प ही था, फिर भी उनके त्याग वैराग्य की गहरी छाप मेरे दिल में अंकित हो गई। अतुल धनराशि, सुखसम्पत्ति, भोगोपभोगों के लिए प्राप्त सामग्री एवं विशाल कुटुम्ब परिवार, साथ ही साथ स्नेहमूर्ति पिताजी तथा मोहममतामयी माताजी आदि का त्याग उनका महान् त्याग ही था। यह त्याग एक बार तो हमारे दिल में उन प्राचीन राजा महाराजाओं और चक्रवर्तियों के किये हुए त्याग का स्मरण करा देता है।

धनवैभव में पोषित उनका सुकोमल शरीर जितना सुकुमार था, उतना ही संयम मार्ग में आते हुए कष्टों को झेलने के लिए सहिष्णु भी था। उनका सौम्य मुखारविन्द सर्वदा वैराग्य-भावना से ओतप्रोत और प्रसन्न दीख पड़ता था। किसी के पूछने पर उनके मुख से ये ही शब्द निकलते थे कि, "बहुत आनन्द है"। वे नपा-तुला ही बोलते थे, पर आध्यात्मिक भावना में और ज्ञानध्यान मे तल्लीन ही दीख पड़ते थे।

अनुमानतः वे भविष्य के एक महात्मा थे, और जैन-समाज को उनकी ओर से बहुत लाभ मिलने की पूरी संभावना थी। किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि जैनसमाज के ऐसे अहोभाग्य नहीं थे, अथवा क्रूर काल को वह इष्ट न था। अतः यह आकस्मिक रेल्वे दुर्घटना हुई। वे दिवंगत हो गये।

जब ये हृदयविदारक दुःखद समाचार मुझे मद्रास में मिले, तब मेरे दिल मे अत्यन्त आघात लगा।

दिवगत आत्मा को अल्प समय में अनन्त और अक्षय मोक्ष सुख की प्राप्ति हो, और उनके शोकातुर मातापिता एवं सकल परिवार को इस महान कष्ट को सहन करने की शक्ति प्राप्त हो, यही शासन देव से प्रार्थना है।



स्वर्गीय विनोदमुनि यानी हमारे जैन समाज की अमर विभूति। श्री वीराणी कुटुम्ब का कुलदीपक विरल कुमार।

उस अमर आत्मा का मुझे शारदाग्राम में केवल चार दिनों का सम्पर्क रहा। वह परिचय अल्प होते हुए भी अविस्मरणीय है। उनमें दिनप्रतिदिन ज्ञानगर्भित वैराग्य के संस्कार वृद्धि को प्राप्त हुए दृष्टिगोचर होते थे। गुणानुरागिता, दृढ संकल्पशक्ति, औदार्य, सरलता और नाम के समान विनयादि

गुण, अरविन्द की तरह अलिप्त मुनिजी की संसारावस्था में भी सहजरूपसे अवर्तमान थे। गुरुदर्शन, तत्त्वचिन्तन, वाचन और धर्म की समझ—ये सब पदार्थ उनके जीवन की आध्यात्मिक नैतिक खुराक थी।

जब देखें तब उनके मुख से यही वाक्य निकलता था कि, "इस संसार सागर में से यथाशीघ्र निकलकर सद्गुरु के चरणों में स्वात्मार्पण कर के भागवती प्रव्रज्या का अंगीकार कर भाग्यशाली बनना चाहिए।"

यह उनकी आन्तरिक महत्त्वाकांक्षा, उनके बाह्य जीवन में भी ताना-भरनी की तरह ओतप्रोत हो गई थी। अनन्तज्ञान-दर्शनमय-सच्चिदानन्द स्वरूप की ओर उन्होंने वेग धारण किया, और वे स्वयं दीक्षित बन गए। केवल दो महीनों तक ही प्रसन्न भावसे कठिन चारित्र्य रखकर गुरुकृपा को प्राप्त किया। भगवती अहिंसा की आराधना करते करते उन्होंने प्राणार्पण भी स्वीकृत कर लिया।

सर्वज्ञ प्रभु वीतराग के मार्ग में वे निःस्पृही पथिक बन गए, और प्रत्येक साधक जीव के लिए वे अनुकरणीय आदर्श रखते गए।

हमें चाहिए कि हम अपने महामूल्यशाली मानवजीवन में उनके गुणों का और उनके भगीरथ प्रयत्न का संक्रमण करें।

सन्तचरणरज अरपण माला,
भक्त शान्तिलाल शाह।

*

श्री महावीराय नमः।

पूज्य गुणानुरागी शासनदीपक महापुरुषार्थी श्री विनोदमुनि को श्रद्धाञ्जलि।

"माया के बन्धनों को तोड़ने के लिए त्याग के अतिरिक्त कोई उत्तम शस्त्र नहीं है।"

उन वैरागी—विनोदमुनि के चेहरे पर त्याग का निर्मल प्रकाश और आनन्द था। उनके नयनों में समकित भाव का अपूर्व तेज झलक रहा था। उनके ललाट के ऊपर शाश्वत सम्पत्ति की लब्धि का परम सन्तोष था। उनके शरीर में सर्वत्याग की किरणें उमड़ रही थीं। वे सभी सांसारिक बन्धनों लालसाओं और लुभानेवाले सभी सांसारिक सुखों की, सभी कल्पनाओं से विराम लेने के लिए लालायित बन गए थे।

संसार के सभी सुख—स्वप्नों को छोड़कर वे भगवान महावीर के त्याग—मार्ग के योगी बनकर, सक्रिय रूप से उस मार्गपर आरूढ होकर पुकार करते थे कि, "महा मंगलमय विश्वकल्याण के अनादि मार्ग में मेरा स्वीकार हो जाय।" ऐसी पुकार करते हुए उनके अन्तस्तल में आत्मकल्याण का भावनृत्य प्रकट हो रहा था।

आपने इतनी छोटी वय में अपूर्व और महान कार्य किया। हमें स्वप्न में भी खयाल नहीं था कि आपका पुरुषार्थ इतना प्रबल और शौर्यसमेत होगा। धन्य है आप को कि ऐसे राज्यवैभवसम सुखों को छोडकर—पूर्ण ऋद्धि सिद्धि का त्याग कर—वैराग्य के निर्झर दिल में बहाकर, ब्रह्मचर्य की रोशनी जलाकर, वीरवेशभूषा को पहनकर, क्षमा और तप के आयुध लेकर, वीररत्न बनकर आप जीवनरूपी संग्रामक्षेत्र में कर्मशत्रु के साथ युद्ध करके उन्हें जीतने के लिए रणपण्डित बन गये—युद्ध में सज्ज हुए।

हमारा हृदय गर्जन कर उठा था कि, जैन शासन में अपूर्व सूर्य प्रकाशित हुआ। उस सूर्य की बोधरूपी किरणों से आकृष्ट भव्य जीवों का उद्धार होगा, पर प्रकृति के पास किसका चलता है? विकसित सुमन मुरझा गया! हृदय में अतिवेदना

श्री विनोदमुनि को शोकांजलि।

विनोदमुनि ऐसा क्यों किया रे! मरण का वरण किया। टेक।
मुनि के वेश में मातापिताको, दर्शन का अभिलाष; (२)
अहमदावाद के बने अतिथि, भग्न हुई सब आश। वि
तार आया कि मातापिता के, हिय में शोक समा; (२)
बाबा खीमन जी बोल उठे— "हा! कौन उपाय बना?"। वि
आंखों में आंसू बहे री! सावन भादों पूर; (२)
हिय विदारक रुदन होते, सूख गये मुख नूर। वि
छोटी वय में दीक्षा ले ली, ज्ञान के पारावार! (२)
गुरुबन्धु को विरहाग्नि की, उठी अग में ज्वाल। वि
लघु बान्धव तो रोने लगे री! दुःख निःश्वास भरे; (२)
शूल विरह का लगा दिलों में, कैसे धीरज धरें?। वि
जन्मभूमि में आय होते तो, देखते आप का मुख; (२)
विदेशमें आप सोय री प्रिय! दिल में बड़ा दुःख। वि
मित्र आप के विलाप करते, अविरत दिन औ' रात—; (२)
हृदय बिंध गये हा! हमारे, विवेक विनय भ्रात। वि
राजकोट में कीर्तिगाथा, घर घर फैल व्यापी; (२)
नाम लेते ही हृदयतन्त्री, पूर्ण विघूर्ण बनी। वि
दुर्लभ पिपासी दुःख सागर में, डूब गये हैं आज; (२)
इकोतर पीढ़ियाँ तैराने, बन गये जी जहाज। वि
अल्प समय में की तैयारी, नहीं जाना यह तात! (२)
बोया खेत हा! बिगड़ गया, भया उल्कापात। वि
समदृष्टि से पढ़ें पाठक, विमल ज्ञाना ज्ञान; (१)
आत्मार्पण था नाम गुण का, लगे मुझ को बाण। वि
कम्पित लेखिनी लिखत लिखते, थर थर कम्पित काय; (२)
धनजी अर्पित करता अंजलि, नीर नयन न जायँ। वि

—भक्तकवि धनजी जेमलभाई फेफड़िया, डूंगरजवाला।

एकबार पधारें राजकोट में;
मातापिता के दरशन अभिलाष री ! विनोदमुनि।
वाणी सुमिरन हमें दिल में बसा;
स्नेह का अगाध था प्रवाह री विनोदमुनि.
दया आयी दिल में आप के;
गोरक्षण में अर्पित किए प्राण री विनोदमुनि.
जाना नहीं था ऐसा जीव में;
यकायक ही हुए अन्तर्ध्यान री विनोदमुनि.
दिल से दीक्षा का वरण किया;
जीवित योगी दर्शन के अभिलाष री विनोदमुनि.
एकबार पधारें औ' पावन करें;
भाई-भाभीगण देखतें हैं बड़ी बाट री विनोदमुनि.
"सोया सत्पुत्र हा ! मरघाट में;"
माता-मणिबहन का विलाप री विनोदमुनि.
परदेश जाकर सिधारे क्यों वहां ?
लिखे होंगे ऐसे विधिने लेख री ...विनोदमुनि.
बहनें रोती हैं गला फाड़ के;
बडे बापू रोते बम्बई-पुर री विनोदमुनि.
सूनी हो गई गली दिवान की;
राजकोट में हुआ हाहाकार री... विनोदमुनि.
मोटर में मौज मनाते यहां;
ड्रायवर भी देखता बडी बाट री विनोदमुनि.
पनजी दिलगीर हुआ दिलमें बडा,
विनोदमुनि का रहो अमर नाम री विनोदमुनि.

—भक्तकवि पनजी जेमलभाई फेचड़िया,
दूधरेजवाला।

*

हुई। हमारे ऊपर आपने किए हुए उपकारों का ऋण हम कब आपको चुकाएँगे?

आप तो जगत् में चमककर चले गए। चारों ओर मधुर परिमल पसारकर जीवन को धन्य बना गए।

आप जहाँ हों वहाँ सुखी रहें, और स्वल्प समय में कर्म के विजेता बन कर, शाश्वत लक्ष्मी को प्राप्त कर, दिव्य ज्योति को प्रकट कर, आत्मा के आनन्दमय अखण्ड सुख को प्राप्त करें यही अभ्यर्थना है।

—नन्दनज्योति दासाणी

❀

विषम वियोग मुनि जी आपका,
नाम लेते ही नयन आँसु-धार री,
विनोदमुनि! गोरखा मर्थे प्राण दे दिये॥
जन्म की भूमि सुदान पोर्ट में,
जनक जननी धन्य हुए आज री —विनोदमुनि०
गोद धन्य हुई मणि-भगिनी यहाँ,
कुल उजाला दुर्लभजी श्रीमान री —विनोदमुनि०
ऋद्धि सिद्धि बीराणी सेठकी,
तजें छोड़ा, हुए हा! अणगार री —विनोदमुनि०
आशा न ही थी मात – तात मे,
मोहनीय कर्म उदित भाग री —विनोदमुनि०
खबर न की पिता औ' मात को,
पहुँच गए मरुभूमि – मेवाड़ री —विनोदमुनि०
मेहसाना मापित को मुना लिया,
मुण्डित होकर पहुँचे सीवम गाँव री —विनोदमुनि०

वन्दन किये हैं मुनि राज को,
खुद पढे हैं दीक्षा-पाठ प्रमाण री -विनोदमुनि०
बीताते जीवन आध्यात्म को,
ढाई माह में किया जी कल्याण री -विनोदमुनि०
दर्शन करने के भाव हृदय में,
रहे अधूरे माता के भाव री -विनोदमुनि०
धम धम सी अगिन-गाड़ी आ पड़ी!
बचाये थे धेनुत्रय के प्राण री -विनोदमुनि०
करुणा न आयी कुटिल काल को,
हड़प लिए विनोदजी के प्राण री -विनोदमुनि०
डूबा है संघ सागर शोक के,
डूबे हैं ये अग्रज परिवार री -विनोदमुनि०
सूरज हुआ अकाल अस्त यों,
फैलाती किरणें चहुँ ओर री -विनोदमुनि०
अस्तंगत ज्योत्सना बन तो गई,
शीतलता चन्द्रमयी भात री -विनोदमुनि०
तारक हुआ यकायक लीन यों,
तेज पुञ्ज फिर भी बहा जग री -विनोदमुनि०
यों ही मुरझा गया प्रसून हा!
आती है किन्तु गन्ध रेल री -विनोदमुनि०
शान्ति दें 'वीर' शूर आत्म को,
अल्प समय किया स्वकल्याण री -विनोदमुनि०
स्वीकारें हर की काव्यअञ्जलि,
शान्ति! शान्ति शान्ति सुखदाय री
विनोदमुनि! गौरक्षा अर्थ प्राण दे दिये!

*

श्री खिनोदमुनि को शोकांजलि।

खिनोदमुनि ऐसा क्यों किया रे! मरण का वरण किया। टेक।
मुनि के वेष में मातापिताको, दर्शन का अभिलाष; (२)
मरुधरदेश के बने अतिथि, मग्न हुई सब आश। खि
तार आया कि मातापिता के, हिय में शोक समाना; (१)
चाचा जगन भी बोल उठे— "हा! कौन उपाय बना?। खि
आंखों में आंसू बहे री! सावन भादों पूर; (२)
हिय विदारक रुदन होते, सूख गये मुख नूर। खि
छोटी वय में दीक्षा ले ली, ज्ञान के पारावार। (१)
गुरुबन्धु को विरहाग्नि की, उठी अग में ज्वाल। खि
लघु बान्धव तो रोने लगे री! दुःख निःश्वास भरे; (२)
गुरु विरह का स्मा दिलों में, कैसे धीरज धरे?। खि
जन्मभूमि में आय होवे तो, देखते आप का मुख; (२)
विदेशमें आप सोये री प्रिय! दिल में बड़ा दुःख। खि
मित्र आप के विलाप करते, अविरत दिन औ' रात—; (२)
हृदय बिंध गये हा! हमारे, विवक विनय भात। खि
रामकोट में कीर्तिगाथा, घर घर फैल गयी; (२)
नाम लेते ही हृदयतन्त्री, चूर्ण विचूर्ण बनी। खि
दुःखम पिताजी दुःख सागर में, डूब गये हैं आन; (२)
इकत्तर पीढ़ियाँ तैराने, बन गये जी महान। खि
अल्प समय में की तैयारी, नहीं जाना यह तात! (२)
बोया खेत हा! बिगड़ गया, मचा उल्कापात। खि
समादृष्टि स पढ़ें पाठक, विगल ज्ञाना ज्ञान; (१)
आकर्षण था नाम गुण का, लगे मुझ को बाण। खि
कम्पित लेखिनी लिखते लिखत, थर थर कम्पित काय; (२)
धनजी अर्पित करता अञ्जलि, नीर नयन से जायें। खि

—भक्तकवि धनजी जेमलभाई फेफड़िया, बृघरेजयाला।

एकवार पधारें राजकोट में;
मातापिता के दरशन अभिलाष री ! विनोदमुनि ।
वाणी सुमिरन हमें दिल में बसा;
स्नेह का अगाध था प्रवाह री विनोदमुनि.
दया आयी दिल में आप के;
गोरक्षण में अर्पित किए प्राण री विनोदमुनि.
जाना नहीं था ऐसा जीव में;
यकायक ही हुए अन्तर्ध्यान री विनोदमुनि.
दिल से दीक्षा का वरण किया,
जीवित योगी दर्शन के अभिलाष री विनोदमुनि.
एकबार पधारें औ' पावन करें;
भाई-भाभीगण देखतें हैं बड़ी बाट री विनोदमुनि.
"सोया सत्पुत्र हा ! मरघाट में;"
माता-मणिबहन का विलाप री. विनोदमुनि.
परदेश जाकर सिधारे क्यों वहां ?
लिखे होंगे ऐसे विधिने लेख री ...विनोदमुनि.
बहनें रोती हैं गला फाड़ के;
बडे बापू रोते बम्बई-पुर री विनोदमुनि.
सूनी हो गई गली दिवान की;
राजकोट में हुआ हाहाकार री. विनोदमुनि.
मोटर में मौज मनाते यहां;
ड्रायवर भी देखता बडी बाट री विनोदमुनि.
पनजी दिलगीर हुआ दिलमें बडा,
विनोदमुनि का रहो अमर नाम री विनोदमुनि.

—भक्तकवि पनजी जेमलभाई फेचड़िया,
दूधरेजवाला ।

*

(तर्ज मनहर)

आदर्श विनोदमुनि स्वर्ग-वास बसे री!
वियोग के दिन आज, सभी को भी रुलाया (२)
लघु वय में संस्कार-दीपक प्रकाश धर,
धोराणी कुटुम्ब में री! रोशनी वितान कर,
सद्गुण ग्राहक ने जीवन धवल पाया-वियोग•
प्रभ्य युत ज्ञानदान के बहते झरने से,
मरुभूमि जैसे मानवों की तृषा छिपायी;
प्रेमवारि की वृष्टि से जीवन प्रफुल्ल किया-वियोग•
आतम सिद्धि के हेतु चले साधना पथ में,
वीरात्मा के ब्यूगल से रण में सिधारे हैं
निपुण साहसवीर! नाव को थमा लिया-वियोग•
रवि सम आपने प्रकाश धर पृथिवी में,
किरण हजार तेज रोशनी विकास कर;
गाढ अन्धकारमय मग को उजाल दिया-वियोग•
वीर वचनों से दया सिन्धुको पहा बहा,
अन्त में कराया शुभ दरशन महिमा,
सुनहला मोध दे के, परवास कर लिया-वियोग•
अन्तर पुकार देशविदेश के मानवों के,-
"मिले सही शान्ति गत आत्माको प्रभुसे,
शाश्वत सुख प्रसाद, आनन्द विहार हो,"-
दूसरा प्रवास किया- वियोग•

ॐ शान्ति :



चमकने के पूर्व ही सितारा अस्त हो गया।

श्री विनोदमुनिजी चल बसे।

हा! हृदय दहलानेवाले ये कैसे समाचार हैं? समाचार पूरे पढ़ने के पूर्व ही हृदय आशंका से हिल गया। जोधपुर के पत्र में लिखा था कि–

"श्री विनोदमुनि श्रावण शुक्ल द्वादशी को"–इतना पढते ही हृदय में एक भय, एक आशंका जाग उठी। आगे क्या लिखा होगा? हिम्मत कर के पत्र का वाक्य पूरा पढ़ा तो पत्र हाथ में से छूट गया, मानो किसीने छाती पर ज़ोरदार प्रहार कर दिया हो। मुँह से एक 'उफ' निकल गई। पास बैठे हुए बोल उठे–'क्या हुआ? क्या लिखा है उस पत्र में?" किसीका बोलना नहीं सुहाता था। पुत्री आयी–" भोजन कर लीजिए"। "चली जा अभी भोजन नहीं करना है।" उठकर एकान्त में गया। आघात के असर को मिटाने के लिए ध्यान किया तो ओघरूप में लोगस्स चलता रहा। पर ध्यान में तो वही सौम्यमूर्ति–हँसता हुआ चेहरा– आने लगा। जब मैं खीचन से रवाना हुआ, तब उनके जो उद्गार निकलते थे, वे गूँजने लगे। आर्तभाव को हटाने के लिए ध्यान किया, परन्तु आर्तभाव हटा नहीं। रात को भी इन्हीं विचारों–संकल्पविकल्पों–ने निंद को भगा दिया था।

श्री विनोदमुनिजी की दीक्षा में, मैं शरीक़ नहीं था। उनकी दीक्षा के कई दिन बाद, मुझे संक्षिप्त समाचार मिले थे। श्री फुसालालजी की दीक्षा के अवसर पर ही मैं उनके दर्शन कर सका, और उनसे दीक्षा की हक़ीकत जान सका। 'सम्यग्दर्शन' ५, जुलाई के अंक में उनकी दीक्षा के सम्बन्ध

हा ! हा ! विनोदमुनि चल बसे

लेखक : कवि श्री मिलापचन्दजी डड्ढा।

छाई धुम्रता अपार, आत्मज्योति की न पार;
हुआ वज्र सा प्रहार, हा ! हा ! विनोदमुनि चल बसे ॥टेक॥

प्रिय पुत्र थे दुर्लभजी शाह के, नव दीक्षित थे सिर्फ चार माह के;
राजकोट घरबार, चंडा शिष्य परिवार, मणिबहने के कुमार

स्वप्न में भी न थी आशा हमको, वज्र कर दगी काल ज्वाला उनको;
कैसा बना होनहार, रुदन होता बार बार, दिल बड़ा बेकरार

अनुकम्पा के मुनि अवतार थे, आत्मत्याग के अपूर्व आगार थे;
करुणी के परिवार, सिद्ध होता बार बार, धर्मास्थल सोसीदार

मान गायों की मुनिने बचाई, भाजी मांगों की अपनी लगाई;
टला गायों का संहार, होते थे मुनि लाईन पार, हुआ एंजिन एकदम पार

जीना और मरना मुनि ने ही जाना, गौरक्षण का मर्म पहचाना;
किया गायों का उद्धार, देकर प्राणों का उपहार, हो गए अमरवीर अणगार

सीधे सादे थे साधक हमारे, सत्य संयम क्षमाशील सारे;
दिव्य गुणगण भंडार, जनमन लिया हार, जिन शासन श्रृंगार

पूज्य श्रद्धेय शान्तमान कानमुनि पार्श्वमुनि की भी धुनि यह धुनि धुनि;
शोक संकट निवार, धैर्य रक्खे परिवार, धन्य सन्त सुकुमार

चिर शान्ति अभी उन्हें प्राप्त हो, गुण गाया मुनि की विश्वव्याप्त हो;
विनति है बारबार, महा भिक्षुकुमार, हो 'मिलाप' भव पार

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्ति

ॐ

श्रद्धांजलि — गीतमाला

त्यागपूर्ण जीवन से जगमें, (२) नाम कमाया न्यारा री ! टेक
मुनि विनोद के गुण गायें हम, जीवन दिव्य बनाया री ! त्याग
मणिबहन की नेह गोद में (२) लेकर जन्म निराला;
कुल उज्वल कर छोटी वय में, धर्मशरण ली भव्या री !
आफ्रिका व सुदान पोर्ट में, (२) वणिक जाति में जाये;
मुनि विनोद के नामधारी हे ! त्याग भावना धारी री !
बीस वर्ष की नयी उम्र में, (२) दीक्षा भाव जगे थे;
वीराणी कुल में जन्म लिया था, आत्म जागरण जागा री
लालचन्दजी की गुरुवाणी, (२) सुनते विराग आया;
'यह संसार असार'—जान के, दीक्षित पथ स्वीकारा री
गुरु की सेवा करते निशदिन, (२) रहते सरल स्वभावी;
क्षमा धर्म को अखण्ड धरते, किसीको नहीं दुभाते री
मारवाड़ में संयम लेकर, (२) पास पूज्य गुरुवर के;
ढाई माह 'चरित्र' पाल कर, आत्म-सिद्धि वर पाया री
ढाई माह दीक्षा का पालन, (२) कर सबके मन भाये;
दिव्य मूर्ति के दर्शन करते, अनुपम हर्ष बढाया री
श्रावण की द्वादशी शुक्ल पर, (२) बने देवघर वासी;
स्वर्ग सिधारे दिव्य महात्मा, छोड़ा यह संसार री
शुद्ध भाव से सयम पाला, (२) संघ करे जयकार जी;
तव गुणगणका सुमिरन करते, हिय विदीर्ण बन जाय री
ऐसे जीवन में से थोड़े, (२) गुण-रत्नों को लें लें;
विरह अखरता हमें आपका, सुनते अन्तर भरते री
प्रभु की अन्तिम बिनति धरना, (२) देना दर्शन प्यारे;
गुरुवर ! अन्तिम आशिर्वाणी—"मोक्ष पुरी में जाएँ"—री

❀

(खण्ड मनहर)

आदर्श विनोदमुनि स्वर्ग-वास बसे री!
वियोग के दिन आज, सभी को भी रुलाया (२)
लघु वय में संस्कार-दीपक प्रकाश घर,
वोराणी कुटुम्ब में री! रोशनी वितान कर,
सद्गुण ग्राहक मे जीवन बदल माया-वियोग॰
भव्य युत ज्ञानदान, के बहते झरने-से,
मरुभूमि जैसे मानवों की तृषा छिपायी;
प्रेमवारि की वृष्टि से जीवन प्रफुल्ल किया-वियोग॰
आतम सिद्धि के हेतु चले साधना पथ में,
वीराङ्गा के म्यूगल से रण में सिधारे हैं,
निपुण साहसवीर! भाव को बचा लिया-वियोग॰
रवि सम आपने प्रकाश घर पृथिवी में,
किरण हज़ार तेज रोशनी विकास कर;
गाढ अन्धकारमय मग को उजाल दिया-वियोग॰
वीर वचनों से दया सिन्धुको यहां बहा,
अन्त में कराया शुभ दर्शन गहना,
सुनहला बोध दे के, परवास कर लिया-वियोग॰
अन्तर पुकार देशविदेश के मानवों के,-
"मिले सही शान्ति गत आतमाको प्रभुसे,
शाश्वत सुख प्रसाद, आनन्द विहार हो;"-
दूसरा प्रवास किया- वियोग॰

ॐ शान्ति :



चमकने के पूर्व ही सितारा अस्त हो गया।

श्री विनोदमुनिजी चल बसे।

हा! हृदय दहलानेवाले ये कैसे समाचार हैं? समाचार पूरे पढ़ने के पूर्व ही हृदय आशंका से हिल गया। जोधपुर के पत्र में लिखा था कि–

"श्री विनोदमुनि श्रावण शुक्ल द्वादशी को"–इतना पढते ही हृदय में एक भय, एक आशंका जाग उठी। आगे क्या लिखा होगा? हिम्मत कर के पत्र का वाक्य पूरा पढ़ा तो पत्र हाथ में से छूट गया, मानो किसीने छाती पर ज़ोरदार प्रहार कर दिया हो। मुँह से एक 'उफ' निकल गई। पास बैठे मुए बोल उठे–'क्या हुआ? क्या लिखा है उस पत्र में?" किसीका बोलना नहीं सुहाता था। पुत्री आयी–"भोजन कर लीजिए"। "चली जा अभी भोजन नहीं करना है।" उठकर एकान्त में गया। आघात के असर को मिटाने के लिए ध्यान किया तो ओघरूप में लोगस्स चलता रहा। पर ध्यान में तो वही सौम्यमूर्ति–हँसता हुआ चेहरा– आने लगा। जब मैं खीचन से रवाना हुआ, तब उनके जो उद्‌गार निकलते थे, वे गूँजने लगे। आर्तभाव को हटाने के लिए ध्यान किया, परन्तु आर्तभाव हटा नहीं। रात को भी इन्हीं विचारों–संकल्पविकल्पों–ने निंद को भगा दिया था।

श्री विनोदमुनिजी की दीक्षा में, मैं शरीक नहीं था। उनकी दीक्षा के कई दिन बाद, मुझे संक्षिप्त समाचार मिले थे। श्री फुसालालजी की दीक्षा के अवसर पर ही मैं उनके दर्शन कर सका, और उनसे दीक्षा की हक़ीकत जान सका। 'सम्यग्दर्शन' ५, जुलाई के अंक में उनकी दीक्षा के सम्बन्ध

में (जो छेख प्रकाशित हुआ, वह उन्हीं से सुनी हुई हकीकत के आधार से लिखा था। वहाँ से लौटते समय भी मैंने उनसे बहुत सी बातें की थीं। आखिरी में उन्होंने मुझे कहा था कि, "डोशीजी! तमे मारा अम्मापियानुं काम कर्युं" याद यह हुई थी कि, श्री फुसालालजी की दीक्षा के उत्सव के समय, मैंने श्री विनोदमुनिजी को भी सम्बोधन करते हुए कहा था कि –

'जिन उत्कृष्ट भावों से आप दीक्षित हुए हैं, उन्हें वर्धमान रखेंगे, तो आप तीसरे भव ही मोक्ष प्राप्त कर सकेंगे। भगवान महावीर द्वारा दीक्षित उन साधुओं को भी एक अपेक्षा से दुर्भागी मानना होगा, जो तैंतीस सागरोपम काल तक अनुत्तर विमान में–कर्मबन्धनों में–अटके रहेंगे, और आप उनसे पूर्व सिद्ध हो जाएंगे। आप होंगे सिद्ध, और वे रहेंगे साधक। आप होंगे आराध्य, और वे रहेंगे आराधक।

भगवान श्री नेमिनाथ के दीक्षा के समय मिलखण्डाधिपति श्री कृष्णचन्द्रजी के शब्दों में भी आप को आशिर्वाद देता हूँ कि,

णाणेणं दंसणेणं च, चरित्तेण तवेणाय,
खन्तीए मुत्तीए वड्ढमाणो भवाहि य ॥
(उत्तरा० २२)

इसी पर से उन्होंने उपर्युक्त शब्द कहे थे। और उपर्युक्त शिक्षा पर सतत ध्यान रखने के भाव बताये थे। मैंने भी निवेदन किया था कि, मैं इस चातुर्मास में पुनः दर्शन करूँगा। कौन जानता था कि ये अन्तिम दर्शन थे।

दुर्घटना कैसे हुई?

श्रावण शुक्ल द्वादशी के, दिन को चार बजे ही वे

'उच्चार' की वाधा निवारण करने के लिए जंगल जाने को उठे। तपस्विराज ने कहा—"अभी गर्मी पड़ रही है कुछ ठहरकर चलेंगे।" वे थोड़ी देर ठहर गये। प्रतिलेखनादि करने के वाद वोले कि, "मुझे हाज़त विशेष है; अतएव मै जाता हूँ; जल्दी ही लौट आऊँगा।" सदैव तो सभी सन्त साथ ही जाते थे, किन्तु भवितव्यतावश उस दिन वे अकेले ही गए। वापस लौटते समय रेल्वे लाईन को गायों का एक टोला पार कर रहा था। उधर से ट्रेन आ रही थी। मुनिजी ने देखा—यदि गायें नही वटीं, तो ट्रेन से कुचल जाएँगी। हत्या की कल्पना से मुनिजी का हृदय थर्रा गया। गौओं की अनुकम्पा से प्रेरित होकर काल के समान राक्षसी इंजिन से गौओं को वचाने का उन्हों ने साहस किया। गायें तो वचकर लाईन पार हो गईं, किन्तु गायों को लाईन से हटाते समय, मुनिजी का रजोहरण लाईन पर गिर गया। उधर कालस्वरूप वह इंजिन वेग के साथ निकटतम हो चुका था, और आगे वढ़ ही रहा था। मुनिजी रजोहरण उठाने को झुके, और इंजिन की झपट में आ गये। प्राणहारक आघात लगा। धराशायी हो गये। शरीर से रक्त का प्रवाह फूट पड़ा, और कुछ देर वाद प्राणान्त हो गया। फलोदी व खीचन में यह खवर फैलते ही हाहाकार मच गया। सभी लोग कहते थे—"गौरक्षण में मुनिजीने अपने प्राण झोंक दिये।" उनके चेहरे पर शान्ति विराज रही थी। चेहरे को देखने पर यही लगता था कि उन्होंने समताभाव धारण कर शान्ति से देह छोडी। इसीसे चेहरे पर किसी प्रकार की विकृति नहीं आई। इस दुर्घटना की खवर, राजकोट में, दिवंगत के पिताको दी गई, जो प्रातःकाल पहुँची। वे स्पेशियल एरोप्लेन से आना चाहते थे, और टेलीफोन से दाहसंस्कार रोकने के समा-

भार दिये; किन्तु इसके पूर्व ही (लगभग सोलह घण्टों के पहले) संस्कार हो चुका था। फिर दिवगत के पिताजी मामाजी–आदि ट्रेन से पहुँचे। उन के शोक का पार नहीं था। दर्शक यह दृश्य देखकर स्वय शोकाकुल बन गए थे। मुनिवृन्द आर्तध्यान को दूर करने के लिए सतत प्रयत्न करते थे। किन्तु उस समय वह उनसे भी नहीं रहा गया। दो–ढाई महीने में सभी सन्त क्षीरनीरवत् घुलमिल गए थे। ज्ञानध्यान और सयम में आनन्द पूर्वक समय बीत रहा था। परमार्थ के उस निस्वार्थ साथी के वियोग से वे भी दुःखी थे।

गजसुकुमाल की माता, अपने पुत्र का दीक्षा उत्सव तो कर सकी थी, पर दिवगत विनोदमुनि की ममतामयी माता, न तो पुत्र का दीक्षा महोत्सव कर सकीं, और न नवदीक्षित पुत्र के दर्शन ही कर सकीं, उनके दुःख का तो अनुमान ही किया जा सकता है। मातापिता की धूमधामपूर्वक दीक्षा देने की भावना भी सफल न हो सकी, और दर्शन भी नहीं हो सके। मातापिता की भावना थी कि, विनोदमुनि को उनके गुरुदेव के साथ चातुर्मास के बाद काठियावाड़ ले जायें, और अगला चातुर्मास वहीं करायें। ये सब बातें उनके मन में ही रह गईं। भवितव्यता को कौन टाल सकता है? ज्ञान के अवलम्बन से आत्मा को आर्तध्यान से हटाकर धर्मध्यान में लगाना ही हितकर है।

'सम्यग्दर्शन' ता ५–९–१५७
सम्पादक रतनलाल डोशी

समाचार विवरण ।

शोकजनक घटना ।

आशा में निराशा ।

'तरुण जैन' के ता. २२ जुलाई के अंक ४२ के पृष्ठ ३ पर 'आज भी ऐसे महान त्यागी हैं।'—इस शीर्षक के नीचे खीचन (जोधपुर) गाँव में श्री विनोदकुमारजी की भागवती दीक्षा के समाचार दिये थे। उन मुनि का यकायक रेल के इंजिन से टकरा जाने से स्वर्गवास हो गया। ऐसे समाचार, पत्र छपते छपते मिले हैं।

'तरुण जैन' ता. १२–८–'५७

गाय के प्राण बचाने में जैन मुनि की आहुति।

(हमारे संवाददाता द्वारा।)

फलोदी (डाक से), ७ अगस्त की शाम को—उस समय नगर में कुहराम मच गया, जब कि फलोदी से पोकरण जानेवाली रेलगाड़ी के इंजिन से, एक युवा जैनमुनि का प्राणान्त हो गया। कहा जाता है कि उक्त जैन मुनि गाय को बचाने का प्रयास करते हुए अपना प्राण गँवा बैठे।

स्मरण रहे, इन जैन मुनिने करीब ढाई माह पूर्व ही राजकोट से खीचन पहुँच कर दीक्षा ली थी। दीक्षा लेने से पूर्व युवा मुनि, विदेशों का भ्रमण कर चुके थे, और वे एक करोड़पति घराने से सम्बन्धित थे।

'हिन्दूस्तान' ता. १३–८–'५८

❀

फलोदी रेल की टक्कर से जैन मुनि का प्राणान्त।

फलोदी (डाक से), गत बुधवार को फलोदी से पोकरण

जानेवाली रेल की चपेट में आ जाने से एक जैन मुनि का प्राणान्त हो गया। बताया जाता है कि, जैन मुनि ने हाल ही में दीक्षा ली थी, और आप युवावस्था में ही थे। आप एक गाय को बचाने का यत्न कर रहे थे, और उस के प्राणों की रक्षा में खुद के प्राण गँवा बैठ।

'राष्ट्रदूत' ता १४-८-५७



गाय की रक्षा के लिए युवान जैन मुनि का आत्मसमर्पण।

फलोदी, ता १६। चार दिनों के पहले यहाँ एक करुण दुर्घटना हो गई। एक इंजिन आता था, और गाय पटरियों पर चरती थी। नज़दीक में से एक युवान जैन मुनिराज जा रहे थे। इस दृश्य को देखकर वे गाय को बचाने के लिए इंजिन के आगे कूद पड़े। गाय को तो वे बचा पाये, किन्तु स्वय इंजिन की झपट में आकर कालधर्म को प्राप्त कर गये।

यह युवान जैन मुनिराज करोड़पति खानदान घराने से सम्बन्धित थे, और अभी तीन मास पहले ही दीक्षा का अंगीकार किया था। उनके कालधर्म के समाचारने जैनों में गहरे शोक की भावना फैली थी। उनके दर्शन के लिए हजारों जैन-जैनेतर लोग उमड़े थे।

'जनशक्ति' ता १७-८-५७



आत्मचिन्तोत्री विनोदमुनि का देहोत्सर्ग।

राजस्थान के धर्म-प्रेमी समाजसेवी श्री दुल्लमचीभाई रामजीभाई वीराणी के सांसारिक पुत्र, धर्मनिष्ठ श्री विनोदभाईने जीवन में स्वेच्छापूर्वक दीक्षा लेने के समाचार वर्तमानपत्रों

में पढे थे, तब एक धनी के पुत्र की वैराग्यभावना और भागवती दीक्षा अंगीकार कर मानव जीवन को धन्य और सफल बनाने की उत्कृष्ट भावना जान कर, उन्हें मिलने की दर्शन करने की उत्कृष्ट इच्छा हुई थी। खीचन (फलोदी) जानेका पुरोगम भी निश्चित कर दिया था। दरम्यान स्थंडिल जाते हुए, रास्ते में गायों को बचाने के लिए जाते हुए, रेल्वे इंजिन की झड़प में आकर विनश्वर देहका उत्सर्ग करने का यकायक समाचार सुनते ही दिलको एक धक्का लगा। साथ ही साथ देह की क्षणभंगुरता और श्री विनोदमुनि की आत्म-विनोद की उत्कृष्ट वैराग्यभावना स्मृतिपट पर अंकित हो उठी :-

१ देह नाशशील है, आत्मा अमर है। अतः देह और आत्मा का भेदज्ञान-विवेक ज्ञान-ही 'सम्यग्दर्शन' कहा जाता है।

२ आत्मा को शुद्ध, बुद्ध और मुक्त करने के लिए विरक्ति भाव को बढाना चाहिए।

३ विरक्ति-भाव और विवेकज्ञान का समन्वय करना ज़रूरी है। यही भागवती दीक्षा का अंगीकार है।

४ आत्मज्ञान की शिक्षा और भागवती दीक्षा का अंगीकार कर, अहिंसा, संयम और तप की साधना के ज़रिये जीवन को उज्ज्वल बनाना चाहिए।

५ अहिंसा, संयम, तप और त्याग के द्वारा आत्मा की आराधना करनी चाहिए। विराधना का त्याग करना चाहिए, और ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य रूपी रत्नत्रय की सम्यक् आराधना से मोक्षमार्ग की ओर गति करनी चाहिए।

जीवन सिद्धि के ये पाँच सोपान हैं। इन पाँचों के ऊपर चढ़ना सुगम नहीं है; पर समता, सरलता, सहिष्णुता और

क्षमवृत्ति के द्वारा उस कष्टसाध्य मार्ग में भी चला जा सकता है।

विनोदमुनि की आत्मा सचमुच ही वैराग्यशील और आत्म विनोदिनी थी। यही कारण है कि बचपन से ही उनके जीवन में धार्मिक संस्कार उतरे थे, और धर्मजीवन के मार्ग में प्रयाण करते हुए सांसारिक विभवविलास, या प्रलोभन, उन्हें नहीं छुमा सके।

सोही उज्जुभूयस्स

उनकी आत्मा सरल होने से, उन्होंने धर्मशिक्षा, भागवती दीक्षा और वैराग्यभावना के द्वारा आत्मशुद्धि की साधना की, और अहिंसा के रक्षण में उन्होंने देह का उत्सर्ग कर, अपनी आत्मविनोदिता का परिचय दिया। आत्मविनोदी की अमर आत्मा अपूर्व शान्ति प्राप्त करे, और उनके जीवन में से विरक्तिभाव और विवेकज्ञान का आदर्श हमें प्राप्त हो यही आन्तरिक इच्छा और प्रार्थना है।

—शान्तिलाल व शेठ
'जैनप्रकाश' ता २२-८-'५७



गौरक्षा के लिए प्राणोंकी आहुति।
स्वयंदीक्षित श्री विनोदमुनि का रेलकी टक्कर से निधन।

श्रावण शुक्ला १२, बुधवार, फलोदी (मारवाड़) वर्ध० श्रमण संघीय तप मुनि श्री मानचन्दजी महाराज की सेवा में स्थित स्वयंदीक्षित श्री विनोदमुनिजी का आज साय साढ़े पाँच बजे, अकस्मात् रेलकी टक्कर से दुःखद अवसान हो गया। समाचार पाते ही अन्य मुनिराज, महासतीजी एवं सारा नगर घटनास्थल पर पहुँचा। शव के वक्षस्थल से अपार खून बह रहा था, और

दोनों पैरों पर गहरी चोटें आई थीं। इस अत्यन्त शोकप्रद घटना को देखकर, प्रत्येक व्यक्ति नितान्त विह्वल व शिथिल बन गया। ज्ञात हुआ कि मुनि जी गायों के रक्षण के लिए, उन्हें पटरियों से हटाकर लौटे ही थे कि रजोहरण गिर गया। उसे उठाते उठाते यह विषादजनक प्रसंग बन गया। अश्रुपूर्ण नेत्र व सन्तप्त हृदय लिए फलोदी की जैन और जैनेतर जनताने व खीचन के जैन समाजने दूसरे दिन प्रातःकाल में १० बजे दाह संस्कार व १२ बजे निर्वाण काय-उत्सर्ग किया। तीसरे दिन उपाश्रय में मध्याह्न को ढाई से पाँच बजे तक दिवंगत के लिए श्रद्धांजलि देने को सभा हुई। उसमें जन साधारण ने बड़ी संख्या में उपस्थित होकर मुनिजी के प्रति अपने हार्दिक शोकोद्‌गार व्यक्त किए, एवं शासनदेव से सहृदय प्रार्थना की कि वे शोकसंतप्त मानस को धैर्य दें, और दिवंगत मुनिजी को शान्तिप्रदान करें। अत्र विराजित मुनिराजो ने भव्य संस्मरणों एवं आदर्श गुणों पर गीले कण्ठ से प्रकाश डालते हुए मुनिजी के प्रति व्यथित हृदय से शोकांजलि अर्पित की।

दिवंगत मुनि जी, राजकोट निवासी कोटयधिपति श्रीमान् दुर्लभजी शामजी वीराणी के चौथे सर्वाधिक स्नेहपात्र पुत्र थे। बाल्यकाल से ही मुनिजी का हृदय वैराग्यविकसित, व जीवन प्रायः सन्त-सेवा-संलग्न था। छह वर्षों तक मुनि जी भागवती दीक्षा के लिए सांसारिक पिताजी से अनुनय-विनय कर, अनुज्ञा प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहे। जब मोहवशात् व स्नेहवशात् पिताजीने आज्ञा प्रदान न की, तब मुनिजीने खीचन मारवाड़ पधारकर, अत्यन्त साहस के साथ स्वयं दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा पर्याय पालने अभी ढाई मास ही बीते थे कि यह आकस्मिक निधन हो गया।

अति वैभवसम्पन्न होने के कारण मुनि जी बहुत ही सुकुमार

[illegible] मुलोचित थे; तथापि जीवन में विनय, नम्रता, आज्ञापालकता व कष्टसहिष्णुता कूट कूट कर समायी हुई थी। सर्वदा ही मुख ऊपर प्रसन्नतायुत हास्य छाया रहता था; व मुख से अमृतमधुर शब्द निकलते थे। क्या विरत, क्या दीक्षित—दोनों अवस्थाओं में मुनिजी ने 'असखयं जीविय मा पमायए' को जीवनसूत्र बना लिया था। प्रारंभिक चिह्नों से ही प्रकट था कि, मुनिजी निकट भविष्य में कुल के सच्चे दीपक व शासन के प्रभावक पुरुष होंगे; परन्तु समाज का अल्प पुण्य है कि, ऐसी नवनिधि शीघ्र ही समाप्त हो गई।

ऐसे शोचनीय अकस्मात् बनाव के उपरान्त भी मुनिजी की मुखमुद्रा अतीव सौम्य थी, तथा शव साढ़े घण्टों तक रहने पर भी गन्धहीन था। हृदय इस विश्वास के लिए प्रेरित करता है कि ये चिह्न व अकस्मात् घटना का हेतु मुनिजी की समाधिमृत्यु व जीवनसफलता का द्योतक है। शासनदेव से प्रार्थना है कि ऐसी पवित्रात्मा जहाँ कहीं विराजमान हों, हमारी भावभीनी कोटि कोटि वन्दना स्वीकार करें, व अपनी आत्मप्रगति के साथ शासनसहायक बनें।

'स्था जैन' ता २०-८-५७
'तरुण जैन' ता २६-८-'५७
'जैन प्रकाश' ता १-०-'५७



विरल विभूति विनोदमुनि।

वैराग्यमूर्ति श्री विनोदमुनि ने अत्यल्प काल में ही जैन समाज में विशेष ख्याति प्राप्त कर ली थी। इतिहास में सुनो करते थे कि, अनेक सन्त, जन्मजात वैरागी के रूप में इस धराधाम पर अवतरित हुए, और निमित्त मिलते ही उन्होंने

गृहत्याग कर संयम एवं त्याग का जीवन अंगीकार कर लिया। स्वर्गीय श्री विनोदमुनिने उस इतिहास की पुनरावृत्ति की थी।

वि. सं. १९९२ में उनका जन्म एक कोटयधीश परिवार में हुआ। जैन समाज में श्री दुर्लभजी शामजी वीराणी, अपनी दानवीरता के लिए प्रसिद्ध हैं। वह आपके ही सुपुत्र थे। सौ. मणिबहन की रत्नकुक्षि से आपका जन्म हुआ था। आपने मैट्रिक तक विद्याभ्यास किया, और विलायत की यात्रा भी कर आए; पर यह सब करते हुए भी आप संसार में कभी आसक्त नहीं हुए। करोडों की सम्पत्ति आपको आकर्षित न कर सकी। पूर्वजन्म के वैराग्य के जो प्रवल सस्कार उनकी आत्मा में निहित थे, वे बराबर आपको त्याग और संयम की प्रेरणा देते रहे।

इन सस्कारों की प्रेरणा से उनका जीवन, गृहस्थयोगी का-सा बन गया था। श्री विनोदमुनि के पिताजी ने स्वयं लिखा है-"वे बचपन से ही त्याग-वैराग्यमय संस्कारों में रंगे हुए थे। पिछले पाँच वर्षों से वे ज्ञान, ध्यान और सन्तसमागम में अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। हमारे सारे कुटुम्ब में इसका पूर्ण सहयोग था। शास्त्रों का अधिक अभ्यास कर लेने के बाद दीक्षा देने की हमने सम्मति भी दे दी थी; परन्तु उनके अन्तर में वैराग्य की उत्कृष्ट भावना शीघ्रता से जाग्रत हुई, और वे राजस्थान के अन्तर्गत खीचन ग्राम में जाकर ता. २६-५-'५७ को स्वयमेव दीक्षांगीकार कर के तपस्वी मुनिजी श्री लालचन्दजी महाराज तथा उनके शिष्य मुनियो के अन्तेवासी होकर रहने लगे। इस में उनको तथा हमको सन्तोष था।"

इस भौतिक तथा नास्तिकता के युग में धन्य हैं ऐसे धर्मप्रिय पिता, और अतिशय धन्य हैं ऐसे पुत्र! उस चढ़ती

जवानी में, जब मनुष्य का उन्माद उत्पन्न होता है, और मनुष्य विषय भोगों की चंचल तरंगों में बहता फिरता है, श्री विनोदमुनि संयम और त्याग के बीहड़ पन्थ पर चल पड़े।

खेद है कि श्री विनोदमुनि को दीक्षित हुए पूरे ढाई महीने भी न हो पाये थे कि रेल के इंजिन की झपट में आ जाने के कारण अकस्मात् ही आपका स्वर्गवास हो गया।

यह घटना अत्यन्त करुण है। हम इस पर गंभीरता से विचार करते हैं, तो अदृश्य शक्ति की प्रबलता बरबस स्वीकार करनी पड़ती है। कौन कह सकता है कि अल्प आयु लेकर आये विनोदमुनि को अलक्ष्य शक्तिने ही अल्पकाल में आत्मकल्याण करने की प्रेरणा नहीं दी थी? कुछ भी हो, ऐसी विरल और उत्कृष्ट विभूति को खो कर संघ दरिद्र हो गया। बीराणी परिवार को सान्त्वना देने के लिए हमारे पास शब्द नहीं हैं। हम तो यही कह सकते हैं कि श्री विनोदमुनि अखिल जैन संघ के थे उन के वियोग से समस्त जैन संघ दुःखित और आहत है।

सम्पादक,
—'जैन प्रकाश' ता १-९-'५७

जैन सिद्धान्तों में ऐसे बहुत से दृष्टान्त मिलते हैं कि, मरणान्तिक उपसर्ग (मनुष्यकृत, देवकृत, पशुकृत या आकस्मिक) साधु को आ मिलते हैं। उन्हें समभाव से जानने से, शुद्ध आत्मभाव में रहने से या तो मोक्ष होता है, या ऊंचा देव बना जा सकता है। उपसर्ग का कारण तो यथास्थित कर्मों का उदय समझना चाहिए। यह मुनिश्री श्री विनोदकुमार को हुआ। उसका समभावसे वेदन करने से अवश्य ही आत्म कल्याण हो सकता है। उनके मातापिता के लिए गौरव का

स्थान यही है कि, उन को एक सुपुत्र प्राप्त हुआ, जो आत्म-कल्याण कर गया। अपार ऋद्धि-सिद्धि की ओर उसने दृष्टिपात तक नहीं किया। धन्य है ऐसी आत्मा को। वे इस प्रकार के सन्तोष का अनुभव कर अब यदि शेष ज़िंदगी को धर्मध्यान में बिताएँ, तो उनका कल्याण हो सकता है।

—डॉ. एन. के. गान्धी,
'रत्न ज्योत', ता. ५-९-'५७

श्री विनोदकुमार मुनि का अकस्मात् से अवसान।
(उन के स्वर्गवास के सम्बन्ध में श्री दुर्लभजी भाई का हिन्दी में निवेदन।)

श्री विनोदकुमार मुनि संसार-पक्ष की दृष्टि से मेरे सुपुत्र थे। वे बचपन से ही त्याग-वैराग्यमय संस्कारों में रँगे हुए थे। पिछले पाँच वर्षों में वे ज्ञान, ध्यान और सन्तसमागम में अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। हमारे सारे कुटुम्ब का इस में पूर्ण सहयोग था। शास्त्रों का अधिक अध्ययन कर लेने के बाद दीक्षा देने की हमने सम्मति भी दे दी थी; परन्तु उनके अन्तर में वैराग्य की उत्कृष्ट भावना शीघ्रता से जाग्रत हुई, और वे राजस्थानान्तर्गत खीचन ग्राम में जाकर, ता. २६-५-'५७ को स्वयमेव दीक्षा अंगीकार कर के, तपस्वी मुनिजी लालचन्दजी महाराजजी तथा उनके शिष्य मुनियों के अन्तेवासी होकर रहने लगे। इस में उनको तथा हमको सन्तोष था। एक मास खीचन में विराजकर चातुर्मास के लिए सब मुनि फलोदी पधारे, जो कि वहाँ से चार मील दूर है।

ता. ७-८-'५८, सायंकाल पौने छह बजे, वे शौच निवारणार्थ जंगल में गए थे। उस वक्त कुछ गायें रेल की पटरी के पास चर रही थीं। उनको वे दूर करने लगे। गायें हट गईं,

मगर-रजाहरण गिर गया। उसको लेने में स्वयं इंजिन की झपट में आ गए, और उसी वक्त मरणान्त हो गया।

-स्वर्गीय विनोदकुमार मुनि का धार्मिक जीवन अनुकरणीय था। ऐसे उस जीवन से शिक्षा ग्रहण कर हम भी अपना जीवन धर्मपरायण बनायें, यही अभ्यर्थना।

'रत्न ज्योत' ता ५-९-'५७ धर्माभिलाषी,

दुर्लभजी शामजीभाई वीराणी।



आज भी ऐसे महान त्यागी हैं।

इस अंक में श्री विनोदमुनि के आकस्मिक अवसान के समाचार, हिन्दी विभाग में दिए गए हैं। उनका संक्षिप्त परिचय 'सम्यग्दर्शन' में आया था। उसे हम अक्षरशः यहाँ पेश करते हैं।

जोधपुर जिले के भीखन गाँव के उपाश्रय में मुनिगण भाव चर्चा में लगे हुए थे। उतने में एक अनजान युवक उपाश्रय में प्रवेश करता है, और मुनिवरों को वन्दना-नमस्कारादि करके बाहर निकलता है। पाँच-सात मिनटों के बाद ही वह साधु के वेश में पुनः मुनिवरों के सामने उपस्थित होकर उठ बैठ कर के वन्दना-नमस्कारादि करता है, और स्वयं स्वमुख से उच्चारण करता है कि, 'करेमि भन्ते सामाइयं सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं ।'

युवक की इस प्रतिज्ञा को सुनकर सन्त सब आश्चर्यमुग्ध होते हैं, और पूछते हैं कि, "श्रावकजी, यह क्या कर रहे हैं?" युवक नम्रतापूर्वक अपनी भाषा में जवाब देता है कि, "गुरुदेव! अब मैं श्रावक नहीं हूँ, अभी मैं साधु हो गया हूँ। मेरे मन के अभिलाष पूर्ण हुए। मुझे आपके चरणों में स्थान दीजिए।"

मुनिवरने समझाते हुए कहा-' भाई! ऐसा कैसे बन सकता,

है? तुम्हारे मातापिता की आज्ञा प्राप्त किए विना हम तुम्हारे स्वीकार कैसे कर सकते है? पहले सूचना दी होती औ तुम्हारे मातापिता की अनुमति लेकर नियमपूर्वक दीक्षा ले तब विचार करने की जरूरत नहीं पड़ती। हमें पता नहीं थ कि तुम अभी ही आनेवाले हो, और हम से दीक्षा लोगे तुमने यकायक ही यह साहस कर लिया है।"

तब युवक ने कहा-"गुरुदेव यह दुःसाहस नहीं है। भावा वेश में अविचारी डग नहीं रखा है। समझ-बूझ कर औ लम्बे अरसे की विचारणा के बाद ही गृहत्याग किया है मातापिता तो प्रतिकूल नहीं हैं, पर मेरे ऊपर का उनका मो बाधा डालता है, फिर क्या किया जाय?"

श्री विनोदकुमार, राजकोट (सौराष्ट्र) निवासी प्रतिष्ठि श्रीमान् सेठ दुर्लभजी भाई वीराणी के चौथे पुत्र हैं। उ उनकी बीस साल के अन्दर होगी। पिछले तीन चार वर्ष से उनकी धर्मरुचि वृद्धिगत हुई। डॉ. एन्. के. गान्धी के सहवास में उनकी ज्ञानचेतना और चारित्र्यरुचि में अभिवृद्धि हुई। यों तो उन्होने कुछ विदेशभ्रमण भी किया है, किन्त सन्तसमागम और ज्ञानगोष्ठी के लिए स्वदेश के भिन्न भिन्न प्रान्तों में गये हुए हैं। गत वर्ष सैलाना में भी आए थे तब से मैं श्री विनोदकुमार (आज के श्री विनोदमुनि जी) को पहचानता हूँ। मैंने मुनिवर से पूछा-"महाराज जी! आप यं गुप्तता से साधु वन जायँ, यह तो आश्चर्य की बात है।" तब उन्होंने उत्तर दिया था-"नहीं, आश्चर्य की कोई बात नहीं आप जानते हैं कि, मैं संसार छोड़कर 'अनगार' बनने के लिए प्रयत्नशील ही था। मैने गत वर्ष आपसे कहा भी था मातापिता की अनुमति प्राप्त करने के लिए अनेक प्रयत्न किए, पर पूर्ण सफलता प्राप्त न हो सकी। वे समझ चुके थे कि,

विनोद गृहवास में रहनेवाला नहीं है। अत मेरे दीक्षा लेने के विचार से वे सहमत जरूर थ; फिर भी उनके हृदय में यह आशा बनी हुई थी कि, शायद यह मेरी इच्छा भावावशमय होगी। समय बीतने पर यह आवेश शान्त अगर हो जाय, तो हमारा प्यारा विनोद हमारे पास ही रहे। अतः मेरी बात को वे आगे ढकेलते रहे। मैंने सोचा कि अब मुझे ही अपने कर्तव्यपथ पर बढ़ जाना चाहिए। प्रव्रज्या तो मेरे ही अंगीकार से होगी। माता–पिता की अनुमति के साथ प्रव्रज्या का कोई सम्बन्ध नहीं है। मैंने विचार किया कि, किसी को समाचार दिये बिना ही घर में से चला जाना चाहिए। यही मेरे लिए श्रेयस्कर है। अगर ऐसा न हुआ, तो विघ्न उपस्थित होंगे। मैंने तपस्विराज श्री लालचन्दजी महाराज के, बम्बई में दर्शन किये थ। उन सन्तों के प्रति मेरी भक्ति थी ही। उनके दर्शन से मेरी भक्ति बलवती बनी। यह मुझे मालूम पड़ा कि, तपस्विराज सीचन पधारते हैं। बस, मैंने विचार कर लिया कि, यह उत्तम अवसर है। क्षेत्र भी यहाँ से दूर है, अत किसी भी प्रकार की धमाल के बिना मेरे मनोरथ सिद्ध होंगे।

मैं यकायक घर से निकल पड़ा। गाड़ी तैयार खड़ी थी। गाड़ी खुलने क समय ही मैं स्टेशन पर पहुँचा, ताकि किसी को मालूम न पड़ जाय। यहाँ हर समय की तरह फर्स्ट क्लास मैं न बैठा मेहसाना उतरकर वेइटिंग रूम में हजाम को बुलाकर मुंडन करा लिया। मैंने यहाँ पात्र और रजोहरण की तलाश की, किन्तु मुझ वे प्राप्त नहीं हो सके। विचार तो मेरा यह था कि, मैं साधुवेष में ही सीचन गाँव में प्रवेश करूँ; किन्तु फिर विचार किया कि, कदाचित् लालचन्दजी महाराज सीचन न पहुँचे हों, और सीचन में विराजित अन्य मुनिवर मुझ से अज्ञात होने से स्वीकार न करें तो ? इस

विचार से मैंने खीचन में प्रवेश करने के पहले सन्तों के दर्शन किए, और फिर मुनिवेश धारण कर मैं स्वयं दीक्षित बन गया।

मैं जानता था कि मेरे मातापिता की अनुमति के अतिरिक्त मुनिराज मुझे दीक्षा नहीं देंगे; अतः मैंने किसी से अनुरोध नहीं किया। मैं तो स्वयमेव दीक्षित बन गया। बस, यही घटना है मेरे 'अणगार' होने की। प्रव्रजित होने से पहले मेरे शरीर में कुछ अशाता भी रहती थी, पर अब मैं पूर्ण निरोगिता एवं प्रसन्नता अनुभव करता हूँ।

—'स्थानकवासी जैन' ता. २०—८—'५७

—'तरुण जैन', ता. २२—७—'५७

दुःखद दुर्घटना।

सन् १९५६ अगस्त ७ का दिन, फलोदी नगर की अपेक्षा जैनसमाज के लिए, और विशेषरूप से अखिल भारतीय स्थानकवासी समाज के लिए महान विषैला, क्रूर और घातक साबीत होता है। उपर्युक्त—कथित—दिन के करीब छह बजे, हमारे यहाँ—फलोदी में—एक अत्यन्त दर्दनाक घटना घटी। फलोदी में इस साल, श्रद्धेय पूज्य श्री लालचन्दजी महाराज का चातुर्मास ठाणा ५ से हुआ है।

महाराज जी अपने तीनों पुत्रशिष्य—शान्त सरल स्वभावी बा. ब्र. मुनिजी मान मुनिजी, कान्हमुनिजी, पार्श्वमुनिजी और नवदीक्षित परमविनीत मुनि श्री विनोदमुनिजी के साथ सुखसमाधि के साथ विराजते थे। फलौदी नगर, इस मुनिमण्डल को प्राप्त कर के आनन्द से फूला न समाता था। चारों ओर हर्ष ही हर्ष दिखाई देता था। उत्साहित नगरनिवासियों के जयनाद और 'जैनत्व जिन्दावाद' के नारों से गगनमण्डल गूँजता रहता था, लेकिन कुदरत को यह सब मंजूर न था। रंग में भंग हो ही गया, और देखते ही देखते हमारे परमविनीत और अत्यन्त

मधुरस्वभाववाले मुनि श्री विनोदजी काल के कराल पजे में आ गए। फलोदी से पोकरण जानेवाली शाम की ट्रेन से हमारे इसी विरक्त साधक की टक्कर हो गई। घटना स्थल के समीप मौजूद दो-तीन व्यक्तियों के कहने के मुताबिक मुनिजी दो बूढ़ी और अशक्त गायों को, जो ट्रेन की लाइन के बीच खड़ी थीं, हटाने का प्रयत्न करने में लगे थे। ट्रेन काफी नज़दीक में पहुँच रही थी। और उन दोनों गायों की मृत्यु अवश्यंभावी थी, किन्तु अनुकम्पा के अवतार इन मुनिने अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर उन दोनों गायों को बचाया अवश्य ही, लेकिन करुणा और अनुकम्पा की मूर्ति मुनि स्वयं का बलिदान हो गया। ड्राइवर की लापरवाही और 'ड्रिंकर' अवस्था में होने की वजह से ट्रेन न रुक सकी, और यकायक मुनिजी ट्रेन की चपेट में आकर कालकवलित हो गये। खैर, जैसी हो 'भवितव्यता' के अनुसार मुनिजी का देहान्त हो गया, पर उनके इस तरह आकस्मिक और असामयिक स्वर्गवासने समस्त फलोदी में विशाल शोक और असहनीय दुःखद प्रसंग का सूत्रपात कर दिया। सिर्फ अनुमान ही नहीं, हमें यह पूर्ण विश्वास और दृढ़ आशा है कि मुनिजी अवश्य ही ऊर्ध्वगतिगामी हुए होंगे, और भवान्तर में ही शीघ्र ही जन्म-जरा-मृत्यु के कठिनतम शापमय को जीत कर परमगति प्राप्त करेंगे। गत ८ ता० को मुनिजी के स्वर्गस्थ होने के शोक में एक विशाल सार्वजनिक सभा, स्थानीय धर्मशाला में बुलाई गई। उसमें दो प्रस्ताव पास किए गए एक में मुनिजी की आत्मशान्ति और शुभगतिगमन के लिए ईश्वर से प्रार्थना और दूसरे में मुनिजी के मातापिता और अन्य परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना प्रकट की गई। ये दोनों प्रस्ताव सर्व सम्मति से तय हो गए। मुनिजी के पिताजी श्री दुर्लभजी भाई राजकोटवाले को एक विशेष पत्र यहाँ के समाजने दिया

है, जिसमें गहरी समवेदना प्रकट करते हुए, उन्हें धैर्य धारण करने के लिए निवेदन किया गया है।

—मिलापचन्द ढड्ढा।

*

वाया : उजलवाव स्टेशन,
गढाली ता. २६–८–'५८

श्रीमान् धर्मप्रेमी श्री दुर्लभजीभाई शामजीभाई की सेवामें,

आपकी ओरसे वालब्रह्मचारी श्री विनोदमुनि की स्मृति का ग्रन्थ भेंट मिला। धन्यवाद।

पुस्तक को पढकर मेरे अन्तरमें उठे हुए विचारों को आप के समक्ष पेश करता हूँ।

१ इन श्री विनोदमुनि का तो इसी अवतार में मोक्ष हो गया है। उन्हें देवलोक की ही प्राप्ति मानने की ज़रूरत नहीं है, क्यों कि भगवान महावीर प्रभु श्री गौतम स्वामी से कहते हैं कि 'थथुई मंगल' के पाठ की आराधना करनेवाला, उसी भव में सिद्ध-गति को प्राप्त करता है।

२ श्री गौतमस्वामी से महावीर प्रभु और भी कहते हैं कि, धर्मश्रद्धावान् जीवको कालधर्म के उदय में भी साधुत्व प्राप्त होने से मोक्षफल की प्राप्ति होती है।

३ श्री विनोदमुनिने संसारावस्था में मनोमन्थन के तीन उपाय सिद्ध किए हैं।

४ श्री विनोदमुनि दया के सागर थे। उन्होंने अपने पिताको भी मीलों का व्यापार के लिए बोधप्रद पत्र लिखा था। ऐसे आत्मार्थी का प्रथम भव में ही मोक्ष होता है, ऐसा शास्त्र कहते हैं।

५ श्री विनोदमुनि जन्म से ही बालब्रह्मचारी रहे हैं। अनार्य देशों में वे घूमे थे, एव कश्मीर जैसे बड़े देश में, मुनियों को भी प्रलोभनकारी दृश्यों में वे लुभा नहीं गए। अपने धर्म का रक्षण कर साधु जीवन से ही उन्होंने देशाटन किया। उस आत्मा को इसी भव में मोक्ष हो सकता है।

६ श्री विनोदकुमार मुनिने द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे, जिन आगमों को सिद्ध किया है। आज के इस विषम कलि काल में यह सिद्धि बड़ी दुष्कर है। वे मोक्षार्थी ही थे, और अतएव जिन आगमों की सिद्धि वे कर पाये हैं। इस प्रमाण से भी वे मोक्ष के अधिकारी साबीत होते हैं।

७ देवलोक तो राजवैभव से भी अधिक सुखों और मौजमजाहों की प्राप्ति का स्थान है। ऐसे ब्रह्मचारी वहां रह ही नहीं सकते। क्यों कि जन्म से ही धर्म और वैराग्य को साथ लेकर उन्होंने अवतार धारण किया था। उनके जीवन को पढ़कर हम इस तत्त्व को निकाल सकते हैं।

८ अन्त में श्री विनोदमुनि को मैं लक्षावधि नमस्कार-वन्दनाएँ करता हूँ। प्रभु उनकी अमर आत्मा को पूर्ण शान्ति में रखें ऐसी प्रार्थना करता हूँ।

—शाह पानाचन्द ताराचन्द

*

बालाणं अकामं तु, मरणं असइं भवे।
पण्डियाणं सकामं तु, उक्कोसेण सइ भवे॥

भावार्थ— मूर्खों का अकाम मरण तो अनेक बार होता है किन्तु पंडितों का सकाम मरण तो उत्कर्ष से एक ही बार होता है।

प्रकरण २२

लेखक को सूचना और आगम प्रवचनों की प्रभावना।

अतिमानपुरःसर लेखक महाभाग्यशाली चोराणी कुटुम्ब को सूचना देता है कि :-

स्वधर्मी बन्धुओ !

इस ग्रन्थ की मैंने सम्पूर्णतः न्याय के घर में प्रवेश करके ही रचना की है। इस ग्रन्थ के प्रमाण में आपके संसारव्यवहार की आपकी घटनाएँ, मैंने आप से लेखित रूप में लेकर, और उनकी सत्यता के विषय में, अपने हृदय से पूर्ण प्रतीति पाकर ही रचना की है। साथ ही साथ श्री विनोदमुनिजी के सांसारिक जीवन और साधुजीवन के लिए आधारभूत 'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, फलोदी' की ओर से प्रकाशित पुस्तक जिसका नाम 'स्वर्गस्थ श्री विनोदमुनिजी' है, उसका आधार लिया है। उस पुस्तक में मुनियों के व्याख्यान है और विद्वानों के प्रवचन भी हैं। वह पुस्तक मेरी ग्रन्थरचना की घटनाओं को सिद्ध करती है। मैंने उस सारी रूपरेखा के विषय में न्यायाधीश का काम करने का प्रयास किया है। उस पुस्तक से मुझे व्यवहार दृष्टि की साक्षीभूत घटनाएँ मिली थीं। इस ग्रन्थ को लिखने का मेरा हेतु, धर्मश्रद्धा के सिवा और कोई नहीं है। श्री विनोदमुनि के गुणग्रामों के गाने का जो लाभ मुझे मिला है, वही मेरा सबसे बड़ा लेखन-मूल्य है। भावार्थ यह है कि केवल निःस्वार्थ भावना से प्रेरित होकर ही मैंने इस ग्रन्थ की रचना की है।

इस कार्य को करते हुए मेरी आत्मा में अपूर्व रस की

जागृति आई है, और वह अपूर्व एव दृढ श्रद्धा का प्राप्त हुई है। स्वगस्थ श्री विनोदमुनिजी का यह मेरे ऊपर बड़ा ही उपकार है।

आत्मा का देवता के देवसुख मिलना सुलभ माना जा सकता है; किन्तु शुद्ध धर्मकार्य की प्राप्ति होना अनन्त काल में भी दुर्लभ है। इस कार्य को करते हुए चित्त की प्रसन्नता का जो अनुभव मुझे हुआ है, उस क्षणको मैं देवलोक के देवसुखों से भी अधिक मूल्यवान मान रहा हूँ।

मेरे इस निःस्वार्थ बुद्धि के कार्य के बदले में आप के समस्त कुटुम्ब के पास धर्मबुद्धि से मैं यही याचना करूँगा कि, श्री विनोदमुनि का आपको एक क्षण भी विस्मरण न हो ऐसा प्रबन्ध हो।

श्री विनोदमुनि की भावना अवश्य ही शासनानुसारी बनने में और दूसरों को बनाने में ही प्रवर्तमान थी। अपने साथ ही समस्त कुटुम्ब का कल्याण हो, ऐसे उत्कृष्ट भावनाओं - से युक्त उनके विचार थे। उसके प्रमाण में हम नीचे का दृष्टान्त दे सकते हैं।

जब श्रीमान् राव बहादुर श्री एम पी साहब, श्री केशवलाल भाई पारेख और पण्डित श्री पूर्णचन्द्रजी इन तीनों का मिशन खीचन गया, और अपने साथ राजकोट आने का जब उन्होंने उनसे कहा, तब श्री विनोदमुनिने श्री केशवलाल भाई पारेख को जो उत्तर दिया, वह उत्तर मेरे मतके मुताबिक महाकर सारे कुटुम्ब का चाहिए कि वह उस स्वाध्याय रचना रूप बना ले। उस मूल्यवान उत्तर के शब्द ये हैं –

'मैंने दीक्षा का अंगीकार कर लिया है, उस में अब किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो सकता। आप हमारे वीराणी कुटुम्ब के हितैषी हैं। अगर आप सही रूप से हितैषी हों, तो मेरी पूज्य माताजी और पूजनीय पिताजी को समझाइए और अब बाद में होनेवाली बड़ी दीक्षा की अनुमति उनसे एक

सप्ताह के भीतर लिखा दीजिए। इतना ही नहीं, पर 'सवी जीव करूँ शासनरसी' की भावना में, और आज दिन तक के मेरे ऊपर के उपकार के बदले में आगम को लक्ष्य कर मेरी भावना यही हो सकती है कि–और है ही कि,–मेरी दीक्षा उनकी दीक्षा का निमित्त बन जाय। मेरे मातापिता सद्गति को प्राप्त करें; यानी मेरे साथ दीक्षा लें। साथ ही साथ आप भी बहुत समय से–बार बार–निवृत्त होने की बातें करते हैं, तो यह स्थल निवृत्ति के लिए अच्छा है। पूजनीय ज्ञानी महाराजों का उत्तम योग है। अतः यहाँ रहकर निवृत्त हो जाइए, और ज्ञान का लाभ लीजिए। ऐसा मेरा आपसे खास अनुरोध है।'

लेखकने ग्रन्थ के प्रारम्भ में श्री विनोदमुनि का 'थइथुई मंगलम्' पाठ के रूप में स्तवन किया है; और गुरुस्थानागम-न्याय से पंचमहाव्रतधारी का ही वह हो सकता है। इस नियम के अनुसार श्री विनोदमुनि की स्मृति में लेखक, अपने आत्म-कल्याण के लिए धारणा करता है कि, जिन्दगी के अन्ततक हररोज़ सात 'नमोत्थुणं' स्तुति के पाठ को स्वाध्याय रूप से वह करेगा, और भूलने के दूसरे दिन प्रायश्चित्त में रस के परित्याग से आहार करेगा।

इस प्रकार समस्त वीराणी कुटुम्ब को अतिमानपूर्वक लेखक का अनुरोध और सूचन है कि, आपके समस्त कुटुम्ब की ऋद्धि सिद्धि के कारणीभूत जिस पुरुष का माता के गर्भ में आगमन हुआ है, और समस्त जीवन धर्मानुष्ठान को अर्पित कर आपके कुटुम्ब को जिस वीरपुरुषने दीप्यमान किया, उस महर्षि की स्मृति में हररोज़ तीन समय तक, प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल में, 'श्री विनोदमुनि की जय'–इस प्रकार तीन वक्त कहने के बाद ही कवल मुँह में रखना चाहिए। हालाँकि यह नियम पिताजी दुर्लभजी भाई एवं माताजी मणिबहनने तो अपने लिए बना ही लिया है। उसी मार्ग पर समस्त कुटुम्ब इस योगी

की स्मृति में प्रवृत्त हो ऐसी लेखक की नम्र सूचना है।

तदुपरान्त, सद्गत की भावना को धर्मानुष्ठान के द्वारा प्रकाश में लाने के कार्य भी करने चाहिए, जैसे आगमों के अध्ययनाध्यापन के लिए पाठशालाएँ जहाँ न हों वहाँ उन्हें खोल कर लक्ष्मी का सदुपयोग करना चाहिए।

वर्तमानयुग में कुमारिकाओं की समस्या को सुलझाना बड़ी कठिन बात है। अत ब्रह्मचारिणियों का आश्रम खोलकर, ऐसी कुमारिकाओं के चित्तों को धार्मिक ज्ञान की ओर आकर्षित करना चाहिए; और वे उच्च कोटि का जीवन बीता सकें ऐसा शिक्षण देना चाहिए, उन्हें शिक्षिकाएँ बनाना चाहिए। ठीक इसी प्रकार हमारे समाज में धार्मिक ज्ञानवाले गुरुओं को उत्पन्न करना चाहिए, और श्राविकाशालाओं को भी उत्तेजन देना जरूरी है।

इसे उत्तम कोटिका लक्ष्मी का सद्व्यय कहा जाता है। कारण यह है कि इसमें आत्माएँ स्वयं ही पुस्तक का आकार धारण कर लेती हैं।

इस के अतिरिक्त आगमों के पारिभाषिक शब्द समझने में आएँ, ऐसे ग्रन्थों की भी महती आवश्यकता है। आगमों के रसदायक पुस्तकों को प्रकाशित कर के जैन जनता को धार्मिक लाभ देना चाहिए।

कुछ तिथियों को निश्चित बनाकर, सामुदायिक तपश्चर्याएँ हों, ऐसे प्रबन्ध करने चाहिएँ, और खुद धीराणी कुटुम्ब की वंशपरम्परा में धर्म की ज्योति जागती रहे, और सम्यग्दर्शन की शुद्धि हो, ऐसे ज्ञानाभ्यास का और श्रवण का लाभ बनेवाली रचनाओं का निर्माण भी परम आवश्यक है।

इस सूचन के समर्थन में लेखक यहाँ अपनी भाषा में श्री चिनोदमुनि की स्मृति में यथातथ्य रूप में श्री आचारांगसूत्र में से शिक्षाएँ खोजकर प्रकट करता है।

श्री विनोदमुनि की श्रद्धाञ्जलि में लेखक की आगम प्रवचनों की प्रभावना।

द्वादशांगों में प्रवर्तमान श्री तीर्थंकर भगवानों की वाणी का सूर।

समस्त शिक्षाएँ श्री विनोदमुनि के सम्यक्चरित्र को सिद्ध करती हैं।

श्री तीर्थंकर देव समोसरण में विराजमान होकर, आगमों को प्रकाश में लाते हैं। उस वाणी का सूर द्वादशांगों में मुख्य श्री आचारांग सूत्र से शुरू होता है, और उपांगसूत्रों में श्री उववाय-सूत्र से शुरू होता है। उस समय की समोसरण की स्थिति का वर्णन और वाणीसूर निम्नलिखित है।

चतुर्थ आरे की नगरियों का, राजाओं का, रानियों का और श्री महावीर प्रभु का वर्णन दिव्य भाषा स्वरूप से श्री उववाय सूत्र में से प्राप्त होता है। नगरियों के बाहर उद्यानों में दिव्य स्वरूप से समोसरण की रचना होती है। पृथ्वीशिलापट पर तीर्थंकर देव महती परिषदों के समक्ष जब उपदेश करते हैं तब परिषद् का स्वरूप महत् होता है। वर्णन उसका नीचे दिया जाता है :-

नगरी के राजा और रानियों की उपस्थिति के बीच महती परिषद्, ऋषियों की परिषद्, मुनियों की परिषद्, यतियों की परिषद् देवताओं की परिषद्, अनेक वृन्द-समूहों का होना, ऐसी महती परिषदों में श्री भगवान की वाणी बलवती, अतिबलवती, महाबलवती, अपरिमितबलवती, वीर्यतेजमहाप्रभाववती, महाकान्ति-युता, शरदृतुगर्जा के समान मधुर, मिष्ट, गभीर, क्रौंचपक्षी के स्वर समान, दुन्दुभी स्वरानुकारिणी, हृदय में विस्तृत होकर कण्ठ में वर्तुलाकार घूमनेवाली मस्तक में प्रवेश कर सर्वांग स्पष्ट अलग अलग अक्षरोच्चारशालिनी, मणमणाहट से रहित उच्चारवाली

सर्वाक्षर सन्निपुता, स्वरध्यमनगणितयुता, सर्वद्रव्यभाषानुगामिनी सरस्वती, सुननेवालों का एक योजन-चार कोस-तक सुनने में आ सकती है। प्रसन्न चित्त से प्रशान्तरसपूर्ण यह अर्धमागधी भाषा इस प्रकार से बोली जाती है कि, आर्यअनार्य लोग एवं तिर्यञ्च और देवतागण अपनी अपनी भाषा में समझ जाते हैं।

श्री भगवान की वाणी का सूर।

'अस्ति' है लोक की, 'अस्ति' है आलोक की-इस प्रकार जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव संवर, निर्जर, बन्ध, मोक्ष-इन नवों तत्त्वों की 'अस्ति' है। इसी प्रकार अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव चतुर्गति रूप लोक, माता-पिता, ऋषि, देवलोक, देवतागण, सिद्धस्थान, सिद्ध सभी की 'अस्ति' है, एवं अठारह पापस्थानों की भी 'अस्ति' है।

इस प्रकार समोसरण में विराजमान होकर श्री तीर्थंकर देव, अनेक प्रकार से 'अस्ति'भाव को तत्त्व (अस्तिभाव) से सिद्ध करते हैं, और 'नास्ति'भाव को तत्त्वसे-नास्तिभावसे सिद्ध-करते हैं। ये भाव भगवान की वाणी में स्वर स्वरूप गुम्फित होकर वाग्धारा के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

ऐसे भावों से युक्त द्वादशांगों में से प्रथम आगम ही श्री आचारांगसूत्र है। उसमें महत्त्व भावों के साथ श्री विनोदमुनि के जीवन को गहरा सम्बन्ध है।

श्री आचारांग सूत्र-प्रथम अध्ययन।
"शस्त्रपरिज्ञा"-उद्देश प्रथम।

इस प्रथम उद्देश का सार सातवें प्रकरण में प्रकट हो चुका है। दूसरे उद्देशों के आधारसे - जगत के जीव अनिष्ट का संयोग होने से और इष्ट के वियोग से आर्तध्यान होते हैं, और विषय

कषायरूप अग्नि में पचकर–जलकर–शक्तिहीन बन जाते हैं। अतः उन्हें समझाना बहुत कठिन बात है।

जगत के जीव षट्कायजीव, पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय की हिंसा करते हैं। उन में निम्नलिखित जीव रहे हुए हैं।

पृथ्वीकाय के सरसों परिमित विभाग में, पानी की एक बूँद में, अग्नि के एक स्फुलिंग में, और चुटकी बजाने की परिमित वायु में असंख्यात असंख्यात जीव हैं।

वनस्पतिकाय के दो भेद हैं–(१) प्रत्येक, (२) साधारण। प्रत्येक वनस्पति में तीन प्रकार के जीव हैं–(१) संख्यात, (२) असंख्यात और (३) अनन्ता।

साधारण वनस्पति में एक सूई के अग्रभाग प्रमाण में अनन्ता जीव, कन्दमूल में रहते हैं।

इस प्रकार पृथ्वी, जल तेज (अग्नि), वायु और वनस्पति को 'स्थावर जीव' कहा जाता है। व्याख्या इस की यह है कि जो हल–चल नहीं कर सकते वे जीव स्थावर कहलाते हैं। वे स्थावर जीव खुद की 'जीवता' व्यक्त करने की पुण्यशालिता से रहित होते हैं।-स्थावर नामकर्मों के उदय से उन्हे स्थावर कहा जाता है।

इन स्थावर जीवों की दया का, धर्मतत्त्व के साथ सम्बन्ध है। उस दया की आराधना, तो द्वादशांगाराधक शुद्ध सम्यग्ज्ञान-शाली साधु ही कर सकता है। ऐसे दया के आराधक को द्वादशांग 'शूर' की उपमा देते हैं।

स्थावर जीवों के साथ अनेक त्रस जीवों की भी हिंसा होती है।

त्रसजीवो की व्याख्या :– हलनचलन से युक्त जीव, यानी जो जीव खुदकी 'जीवता' को प्रकट करने की पुण्यशालिता

रखते हैं, त्रसनामकर्मों का जिनको उदय हुआ है, उन्हें त्रस जीव कहा जाता है।

श्री आचारांग सूत्र में स्थावर सत्त्व को समझने के लिए अनेक दाँवों की रचना करने में आती है।

जल के लिए भी भगवान फरमाते हैं कि, जो पानी में रहे हुए जीवों की शंका करता है, वह आत्मा के अस्तित्व की ही शंका करता है, और जो आत्मा के अस्तित्व की शंका करता है, वह लोक की शंका करता है। इस प्रकार शंका की परम्परासे वह नास्तिक बन जाता है।

अग्नि के विषय में भगवान फरमाते हैं कि, अग्नि-काय का आरम्भ बड़ा जुल्मगार है।

वनस्पति की व्याख्या करते हुए भगवान फरमाते हैं कि, जिस प्रकार मनुष्यशरीर को बन्धन है, वह बढ़ता है, जन्म लेता है, मरता है, उसी प्रकार के भेद वनस्पति में भी हैं।

वायुकाय की व्याख्या करते हुए भगवान फरमाते हैं कि, जो दूसरों के दुःखों को जान सकता है, वह वायुकाय की हिंसा से निवृत्त हो सकता है।

साधु होकर यानी 'साधु' नामधारी होकर जो षट्काय जीवकी हिंसा करता है, उसका नामधारित्व व्यर्थ ही सिद्ध होता है। अतः जीवन का निर्वाह करने के लिए, वन्दना-गुणानुवादादि के लिए, सत्कार-सम्मान के लिए, धर्म के लिए या शारीरिक दुःख के निवारण के लिए, साधु होकर जो षट्काय जीव की हिंसा करता है या अनुमोदन करता है, उस साधु को उस हिंसा का फल अहितकारी, दुःखप्रद और समकित नाशक ही होगा।

साधु के लिए षट्काय का आरंभ, आठ कर्मों का कारणी भूत है, मोह के लिए हेतु भूत है, मृत्यु के लिए भी कारण है; नरक का भी कारण है।

त्रसकाय के आठ भेद श्री भगवान ने आदिष्ट किए हैं:—

१. अण्डज = अण्ड में से उत्पन्न पक्षी आदि !
२. पोतज = थेली में से उत्पन्न हाथी आदि !
३. जरायुज = जरायु में से उत्पन्न गाय-भेंस आदि !.
४. रसज = रस में से जन्म पाने वाले कीड़े आदि !
५. स्वेदज = पसीने में से उत्पन्न होने वाले लीक आदि कीड़े !
६. सम्मूर्च्छिम = अपने आप ही उत्पन्न !
७. उद्भिज = भूमि को फाड़कर उत्पन्न होने वाले तीड़ आदि जीव !
८. औपपातिक = देवता और नारकीय !

देवता शय्या में उत्पन्न होते हैं; नारकीय कुंभी में उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार आठ प्रकार के लोक, व्यवहार लोक संज्ञित हैं; क्यों कि जीव तत्त्व की वे पहचान देनेवाले हैं। सुख-दुख की भावना प्रकट करने-कराने वाले ये लोक हैं। उन लोकों से सिद्ध होता है, कि सर्व जीवों को सुख प्रिय है, दुःख, अप्रिय और भय का कारण है।

स्थावर जीवों की अपेक्षा, त्रस जीव अनन्तानन्त मात्रा में पुण्यशालिता को धारण करने वाले हैं, जब कि स्थावर जीव पुण्यशालिता से हाथ धो बैठे हुए है। अतः उनकी दया, श्री श्रमण भगवन्त महावीर द्वारा प्ररूपित द्वादशांगों के अन्दर ही है। उन अंगों के शासन में, इन स्थावर जीवों की दया को प्राधान्य दिया गया है।

इस नियम के अनुसार द्वादशांगों की आज्ञा में प्रवर्तमान साधु, नवकोटि से पचक्खाण-युक्त होने से षट्काय जीव की हिंसा नहीं कर सकता। इतना ही नहीं वह करवाता नहीं और अनुमोदन भी नही देता। वही शुद्ध संयमी साधु कहा जा सकता है।

उपर्युक्त प्रकार से, 'ज्ञ' परिज्ञा से षट्काय जीवों का स्वरूप किसने जाना था, और 'प्रत्याख्यान' परिज्ञा से आरम्भ परिग्रह का त्याग किसने किया?

श्री विनोदकुमारने ही, कि जिन्होंने भगवान की आज्ञा के अनुसार संयम को पालने का पुरुषार्थ किया। उसके समर्थन में भी आचारांगजी सूत्र के दूसरे अध्ययनों में से कुछ रूप रेखाओं का चुनाव किया गया है। उन्हें प्रभावकार स्वरूप से पाठकगण के आगे पेश किया जाता है।

श्री आचारांग सूत्र—अध्ययन द्वितीय, लोक विजय।

लोक-विजय का अर्थ, जीव का कर्मबन्धों को तोड़कर सिद्ध गति को प्राप्त करना ही होता है।

विषय-संसार का हेतु और संसार का हेतु ही 'विषय' कहलाता है। विषयार्थी महान दुःख का भागी होता है। 'विषय', संसार के सभी जड़चेतन पदार्थों में मोह उत्पन्न करते हैं। मरते समय जीव को कोइ प्राण-शरण नहीं देता।

वृद्धावस्था में हास्यादि क्रीडा भी नहीं अच्छी लगती; अतः यौवन की अवस्था ही धर्मकरण के लिए उपयोगी है।

शरीर में जब रोग आते हैं, तब लक्ष्मी भी काम नहीं कर सकती। हरएक जीव अपने अपने सुख दुःख भिन्न भिन्न प्रकार से भोगता है। जो स्नेह का त्याग करता है, वही संयम में दृढ़ रह सकता है।

संयम पालते पालते 'अरति' उत्पन्न अगर हो तो, उसे दूर करनेवाला ही मुक्ति प्राप्त करता है।

जो कामभोगों का त्यागकर, लोभ का निर्मूल करके दीक्षा लेता है, वह सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होता है।

धन और स्त्री-दोनों आरम्भ समारम्भ के कारण हैं।

"पण्डित लोग सोचसमझकर जीव हिंसा नहीं करते, अनुमोदन भी नहीं देते।"

"भोग से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं, अतः भोगासक्ति हमेशा त्याज्य ही समझनी चाहिए।"

"धीर पुरुष, विषयवाञ्छा और प्रलोभन से दूर रहते हैं। स्त्री और धन को सुख माननेवाला अज्ञानी ही है।"

"जिस धन से सुख मानने में आता है, वही धन कदाचित् दुःख का कारण भी बन सकता है।"

"मोहमें फँसा हुआ धर्म को नहीं समझ सकता।"

"शरीर को क्षणभंगुर समझकर चतुर पुरुष प्रमाद नहीं करता।"

"भोगों की कदापि तृप्ति हो ही नहीं सकती।"

"खेदरहित संयम को पालनेवाला पराक्रमी है।"

"शुद्ध मुनि, आहार की भिक्षा में सावधान रहकर सदोष आहार ग्रहण नहीं करता, नहीं कराता और अनुमोदन भी नहीं देता।"

"साधुओं को चाहिए कि वे अवसर, आत्मबल, विभाग, अभ्यास, विनय, स्वमत,-परमत की भावना आदि को जानकर ममत्व का त्याग करें, और फल की वांछा से रहित होकर मोक्षमार्ग को और प्रवृत्त हों।"

"साधुओं के लिए उपयोगी वस्त्र, पात्र आदि चीजें मिल जाएँ तो उन्हें प्रसन्न होना चाहिए, अगर न मिलें तो उन्हें उदास नहीं होना चाहिए।"

"कामभोगों के लिए लालायित दुःखी होता है।"

"जो आत्मज्ञानी दुनिया के विचित्र रंगों को जानता

है, वह लोगों के उच्चनीच एव तीर्छा भाग को जानता है, यानी लोक में जीव कैसे उत्पन्न होते हैं, यह जानता है।"

"जो जीव विषयों को छोड़ता है, वह प्रशमनीय है।"

"साधु पुरुष मल-मूत्र से भरे हुए शरीर के विषय में ममत्व नहीं रखते।" सच्चे त्यागी 'त्यागी' बनने के बाद फिर से ससारी नहीं बनते।"

"कामी पुरुष अपनी आत्मा से वैर करते हैं। गर्वी पुरुष को हमेशा ही शरीर की चिन्ता बनी रहती है।"

"इस संसारमें प्राणियों का वध हो रहा है, यह प्रत्यक्ष दुःख है-ऐसा समझकर किसीको भी दुःख हो, ऐसा कर्म नहीं करना चाहिए, यही परिज्ञा है।"

"पराक्रमी बाह्य पदार्थों की ओर चित्त को नहीं लगाता।"

"साधु को चाहिए कि, कामभोगों को जीतने के लिए वह शरीर को दुर्बल बनाए।"

"तत्त्वज्ञानी मोक्षमार्ग को छोड़कर अन्य मार्ग में रमण नहीं करता।"

"निःस्वार्थी मुनि, राजा और रक दोनों को समान मानकर उपदेश देता है। वह उपदेश श्रेणी ऐसी होती है कि विपरीत परिणाम को वह स्पृष्ट नहीं करती।"

आचारांग-तृतीय अध्ययन, 'शीतोष्णीय'-शुभाशुभ।

"पापी जीव परमार्थ को नहीं जानता। जाग्रत अवस्था में भी वह सोये के समान ही है। परमार्थदर्शी साधु सुप्त होनेपर भी जाग्रत के समान ही है।"

"जो पुरुष शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श की सुन्दरता -विरूपता में समभाव धारण करता है, वह आत्मा, ज्ञान, वेद, धर्म और ब्रह्म को जानता है, और लोकों का ज्ञान रखता है।"

"जगत के जीवों की दुःखोत्पत्ति का मूल कारण आरम्भ है।"

"जिस महात्मा को मृत्यु का डर है, वह विषयों से दूर रहता है।"

"काम भोगों में जो आसक्त बनता है, उसे फिरसे गर्भ में आना पड़ता है।"

"तत्त्ववेत्ता नरक के दुःखों का विचार करके पाप नहीं करते।"

"जो कर्म को दूर करता है, वह खुद को देखता है।"

"भोगों के सुखों का धिक्कार करने से स्त्री की आसक्ति कम होती है।"

"समताभाव और शान्त स्वभाव में रमण करने से साधुता प्राप्त होती है।"

"मुनि को रूपलोभी नहीं बनना चाहिए।"

"गति-अगति का विचारक किसी भी पदार्थ से छिन्न नहीं होता, भिन्न नहीं होता, जलता नहीं, मरता नहीं है। इस प्रकार द्रव्य और भाव से आत्मा स्थिर होती है।"

"जैसे जैसे कर्म हों, ऐसे ऐसे स्थानों में जीव उत्पन्न होता है, इससे विपरीत प्ररूपणा मुनि को नहीं करनी चाहिए।"

"योगियों के मनमें खुशी या उदासी नहीं होती। दुःख कर्मनाश के कारण बनते हैं—ऐसा समझ कर परिषदों को सहन करना चाहिए।"

"जो कर्म को दूर करता है, वह मान, माया, लोभ को दूर करेगा।"

"प्रमादी को सभी चीज़ों में भय मालूम पड़ता है।"

"जिसने मोह को दूर किया, उसने सभी को नत किया समझना चाहिए।"

"पराक्रमी कुटुम्बसम्बन्ध को छोड़ सकता है।"

"तीर्थंकर के वचनों की श्रद्धा रखनेवाला लोकस्वरूप को पहचान सकता है।"

"जो क्रोध का छोड़ता है, वह मान का छोड़ता है मान को छोड़नेवाला माया को छोड़ सकता है माया छूटने पर लोभ छूटता है, अन्त में रागद्वेष को छोड़कर उसे मोक्ष प्राप्त होता है।"

आचारांग चतुर्थ अध्ययन "सम्यक्त्व।"

समस्त तीर्थंकर जगत् के जीवों को सम्बोधन करते हुए उपदेश देते हैं कि जीव हिंसा को न करना ही शुद्ध, सनातन और शाश्वत धर्म है।

इस शाश्वत धर्म का अंगीकार करने में प्रमाद नहीं करना चाहिए और ग्रहण करने के बाद प्राण छोड़ने का मौका आ जाय, तो भी छोड़ना नहीं चाहिए। दुनिया के रंगरागों में मोह नहीं करना चाहिए और लोगों का अनुकरण नहीं करना चाहिए।

ज्ञानी महात्मा का बोध संसार के सरल जीवों को धर्म कार्य करने का निमित्त बनता है।

संसारी जीवों की क्रिया में जितनी मात्राओं में क्रूरतादि भाव हैं, उस हद तक दुःखयोनी में उत्पन्न होना पड़ता है।

सच्चा सम्यग्दर्शनी, आरंभ को कर्म का कारण मानकर आरम्भ से मुक्त हो जाता है।

जिन आज्ञा चाहती है कि अपनी आत्मा को अकेला मानकर शरीर को तपसे कृश–दुर्बल–करना चाहिए।

वही पुरुष मोक्षगमन के लिए योग्य समझा जाता है, जो तपश्चर्या से शरीर के रक्त और मांस को सुखा देता है।

मोह में फँसे हुओं का भगवान की आज्ञा का लाभ नहीं मिलता। कृत कर्मों के फल अवश्य ही भुगतने पड़ते हैं।

तत्त्वदर्शी के लिए किसी भी प्रकार का उपाधि नहीं होता।

आचारांग पंचम अध्ययन "लोकसार।"

जिस को भवभ्रमण करने के होते हैं, उसके लिए विषय

त्याग कठिन ही होता है; तत्त्वदर्शी की दृष्टि आयु की स्थिरता पर ही होती है।

चतुर पुरुष को चाहिए कि वह कदापि स्त्रीसंग न करे, कदाचित् हो जाय, तो प्रायश्चित्त करके शुद्ध होना चाहिए।

मन से भी कामभोगों की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

अगर कर्मोदय से साधु को रोगोत्पत्ति हो, तो उसे सहन कर लेना चाहिए, पर पापोपचार तो कदापि नहीं करना चाहिए; क्यों कि शरीर का एकबार तो जरूर पतन होनेवाला ही है।

सम्यक् प्रकार से देखनेवाला नरकादि गति नहीं करता।

सच्चे त्यागी को ज्ञानादि गुणों की प्राप्ति होती है।

निष्परिग्रहत्व में ही ब्रह्मचर्यादि स्थिर रह सकते हैं।

आत्मा खुद के द्वारा ही मुक्ति प्राप्त करेगी, अतः निष्परिग्रही को संकट सहन करने चाहिए।

समता में ही स्थिर धर्म समाविष्ट है।

"मुनि को चाहिए कि वह शरीर से कसकर कर्मों के साथ लड़े। दूसरी सभी लडाइयाँ व्यर्थ हैं। उस लडाई के योग्य ऐसा शरीर मिलना, नितान्त दुर्लभ है।"

"जिनशासन ऐसा कहता है कि, विषयासक्त हिंसक बनता है। सम्यक्त्व ही सच्ची साधुता है, और साधुता ही सम्यक्त्व है।"

विषयासक्त, कपटी, प्रमादी, गृहममत्वी साधु नहीं हो सकता। साधु का प्रधान कर्तव्य यही है कि उसे सदैव गुरु के दृष्टिपथ में रहना चाहिए, और बड़े यत्न से कार्य करने चाहिए।

साधु को स्त्रीदर्शन से यही विचार आना चाहिए कि, स्त्री में मेरा कल्याण नहीं है। कदाचित् मोह बढ़ जाय, और इन्द्रियाँ पीड़ित करें, तो उन्हें शान्त करने के लिए तुच्छ आहार करना चाहिए, एक स्थानकमें कायोत्सर्ग करना चाहिए, या तो उस गाँव को छोड देना चाहिए। फिर भी अगर मोह न छूटे तो

आहार छोड़ देना चाहिए; पर स्त्रीसंग से तो हमेशा के लिए दूर ही रहना चाहिए ।

ब्रह्मचारी को चाहिए कि–

१ वह स्त्रीशृंगार की कथा न करे।
२ स्त्रियों के अंगोपांगों का निरीक्षण वह न करे।
३ स्त्रियों के साथ एकान्त में वह न बैठे।
४ किसी स्त्री से वह प्रेम न करे।
५ स्त्री का कार्य वह न करे।
६ और क्या ? वह स्त्री के साथ सम्भाषण तक न करे।

" अध्ययनाध्यापन के लिए चतुर्भंगी "

१ ब्रह (ह्रद) में से पानी निकलता है, और आता है जैसे ' सीता सीतोदा नदी " उसी प्रकार इस प्रथम श्रेष्ठ भांगे के (विभाग के) साधु पढ़ते हैं, और पढ़ाते हैं।
२ ब्रह (ह्रद) में पानी निकलता है, पर आता नहीं है, उदाहरण पद्मब्रह (ह्रद) इस भांगे के-विभाग के साधु पढ़ते हैं, पर पढ़ाते नहीं।
३ ब्रह में पानी आता है परन्तु निकलता नहीं है 'समुद्र' इस भांगे का साधु पढ़ते हैं और पढ़ाते भी नहीं।
४ ब्रह (ह्रद) में पानी आता भी नहीं, और निकलता भी नहीं। इस भांगे के विभाग के साधु, पढ़ते भी नहीं, और पढ़ाते भी नहीं।

"पढ़ने-पढ़ाने वाले की आत्मा शुद्ध रहती है ।"

सूत्र के फलमें शंका करनेवाला असमाधि की मौत से मरता है ।

तीर्थंकर भगवान के वचन अगर समझ में न आएँ, तो श्रद्धा में ही स्थित रहना चाहिए, पर भ्रष्ट नहीं होना चाहिए।

दूसरोंको दुःख देते समय यह सोचना चाहिए कि, मैं उस जीव को दुःख नहीं देता, पर खुद को दुःख दे रहा हूँ; क्यों कि उसका दुःखफल मुझे अवश्य ही भुगतना पड़ेगा।

जाननेवाला पदार्थ आत्मा ही है।

आत्मवादी का संयम ही सही आत्मसंयम है।

वस्तुज्ञान के तीन ही मार्ग हैं–(१) जातिस्मरणज्ञान, (२) श्री तीर्थंकर भगवान के वचनों में श्रद्धा और (३) आचार्य के पास से श्रवणलब्धि।

सारे जगत् में पापप्रवाह बह रहा है।

आस्रव के अवरोध से यानी नवीन कर्मों के बन्धन के अटक जाने से मोक्ष हस्तामलकवत् हो जाता है।

मोक्ष के सुख को समझाने के लिए शब्द काम नहीं करते। वह कल्पना की भी विषय नहीं है। मोक्ष के सुख के लिए अगर कहना चाहें, तो हम इतना ही कह सकते हैं कि,

सर्वकर्मरहित एकाकी जीव, सम्पूर्ण ज्ञानमयता से विराजित है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और आकार से वह भिन्न है। उन चीज़ों का वह ज्ञाता है, द्रष्टा है। समता ही मोक्ष के रूप की चाबी है।

आचारांग–षष्ठ अध्ययन–"धूताख्य।"

जिस प्रकार कोई पुराना कूप पर्णों से आच्छादित हो जाता है, और उस में रहा हुआ कच्छप अशक्त बन जाता है, उस का बाहर आना मुश्किल हो जाता है, उसी प्रकार संसार के जीवों को संसार छोड़कर मोक्षमार्ग में आना मुश्किल हो जाता है।

कर्मों से जीव को अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, उनमें कण्ठमाल आदि सोलह रोग मुख्य हैं।

तिर्यञ्च जीवों की ओर देखो—वे साक्षात् दुःखों को भोग रहे हैं।

औषध से ज़रा भी रोग दूर नहीं होता, पर हिंसारूप औषध कर्मरूपी रोग की तो अवश्य ही वृद्धि करता है।

दीक्षा लेनेको उद्यत होनेवाले को माता-पिता की अनुमति प्राप्त करनी कठिन हो सकती है, तथापि वह वैरागी अपने वैराग्यमार्ग से वंचित नहीं रह सकता—पीछे नहीं हटता।

साधु को सोचना चाहिए कि, "मेरा कोई नहीं है; मैं अकेला ही हूं। मुनि को चाहिए कि वह भिक्षाहारी बनकर ऊनोदरीतप का आश्रय ले।

धर्म का क्षेत्र आत्मा में ही स्थित है।

उत्तम और एकाकी विहार करने वाले साधु को चाहिए कि वह समभाव से ही अपना वर्तन करे।

सदाचारी मुनि धर्मोपकरणों के अलावा दूसरी किसी चीज़ को अपने पास नहीं रखता।

मुनि, भूतकाल के तपस्वियों के तप को अपनी दृष्टि के समक्ष रखकर ही तप करता है।

साधु को अपने शिष्यों को धर्म में प्रवीण बनाना चाहिए। विषयवासना इतनी प्रबल है कि, वह बहुतों को दीक्षा लेनेके बाद भी गिरा सकती है। ऐसी विषयवासना को ठीक तौर से समझकर, विद्वान को चाहिए कि वह किसी पवित्र पुरुष के साथ रहकर 'संयम' का पालन करे।

साधु को एक ही जगह स्थिरवास नहीं करना चाहिए।

आचारांग अष्टम अध्ययन 'विमोक्ष'।

केवलज्ञानी ने कहा है कि, विवेकी को धर्मकाय के विषय

में गाँव या वनमें किसी भी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती, जब कि विवेकहीन को गाँव हो या जंगल, कर्मबन्धन का ही कारण बन जाता है।

महाव्रत के तीन भेद हैं अहिंसा, सत्य और निर्ममत्व। क्रोधरहित जो हुआ वही 'नियाणा' रहित भी हो चुका।

साधु को चाहिए कि वह निरीक्षण के अयोग्य आहार न करे, और ऐसे स्थान का भी उपभोग वह न करे। आहार देनेवाला गृहस्थ क्रोधी अगर मारे, तो मार को सहन कर लेना चाहिए। शक्य हो तो उसे समझाना चाहिए। अगर वह न समझा, तो मौन का अवलम्बन कर लेना चाहिए।

साधु के शीत–परिषह को देखकर अगर कोई गृहस्थ वहाँ अग्नि को जला दे, तो साधु को उसका अनादर कर देना चाहिए।

अगर शीत परिषह साधु से सहन न हो, तो 'संथारा' उचित माना गया है, पर व्रतभग उचित नहीं है। मोहरहित पुरुष के लिए वह 'पण्डितमरण' ही उचित है, हितकर, सुखकर, योग्य और कर्मक्षयकारी है।

आहार में स्वाद प्राप्त करने के लिए, साधु को कवल एक कपोल से दूसरे कपोल में नहीं ले जाना चाहिए।

साधु को जब ऐसा लगे कि, वह संयमक्रिया ठीक तौर से नहीं पाल सकता, तब आहार को घटाना चाहिए, और कषाय क्षय करना चाहिए।

साधु को अगर रोगवृद्धि हो, या रोग से वह अशक्त बन जाए, तो उसे चिन्ता मुक्त हो कर 'सागारी सथारा' करना चाहिए। अर्थ यह है कि उसे सोचना चाहिए कि "अगर मैं अच्छा बन जाऊँगा, तो आहार की कल्पना होगी; अन्यथा अगर आयु खत्म हो ही गई है, तो मैं पण्डित मरण से ही मरूँगा।"

-एक साथ अगर आहार न छूटे तो धीरे धीरे उसे घटाना चाहिए, और अन्त में बिल्कुल त्याग कर देना चाहिए।

गीतार्थी, जघन्य से नव वर्ष तक का 'मानी सथारा' करने के बाद, किसी भी मलामन से मशीभूत नहीं होता, और निदान भी नहीं करता।

आचारांग-अध्ययन पच्चीसवाँ - 'विमुक्ति'

"परिग्रह और आरंभ से बचना चाहिए।"

"पर्वत की तरह धर्म में अडिग रहना चाहिए।"

"मध्यस्थ भाव का आलम्बन कर के किसी जीव की घात नहीं करनी चाहिए।"

महाव्रत सभी जीवों को क्षमा देनेवाले हैं। इन महाव्रतों से साधु अन्धकार रूपी अज्ञान का नाश कर देते हैं।

जिस प्रकार अग्नि स चाँदी का मैल चला जाता है, उसी प्रकार महाव्रतों से कर्मों का नाश हो जाता है।

जिस प्रकार साँप अपनी त्वचा का उतार देता है, और उसे वापिस ग्रहण नहीं करता, उसी प्रकार उत्तम साधु, ससार छोड़ने के बाद वापिस उसका ग्रहण नहीं करता।

जो साधु यह जानता है कि समुद्र दो भुजाओं स तैरना मुश्किल है, इस प्रकार सयम भी कठिन है; इस प्रकार कठिनाई को समझकर ग्रहण किया गया संयम समुद्र को भी पार करा देता है—समस्याओं को वह सुलझा देता है।

जो बन्ध और मुक्ति का स्वरूप जानता है, वह मुक्ति को प्राप्त करता है।

❁

आत्म साधना

(राग–गुजराती के एक 'धोल' का)

मानवभव सार्थक करने बड़ी, जलती जिज्ञासा का साथ,
बन्दन हों जी विनोद वीर को ॥

पहचानी जगत सपन–व्यर्थता, विभव में दिया ज़रा न हाथ व.१

सद्‌गुरु औ' शास्त्रों के योग से, जाने दुख से भरे विलास,
आस्रव-संवर-अजीव-जीव को, निर्झर औ' मुक्ति जगनिवास व.२

जाग्रत है दृष्टि भी विवेक की, ज्ञान है प्रति-अक्ष औ' परोक्ष,
मुक्त हुए दर्शन के मोह से, सम्यग्दर्शन बहा प्रकाश व.३

जीवन का हेतु ज्ञान प्राप्त कर, त्यागी एहलोक भोग आस,
संयम ही जीवन का मन्त्र था, निःस्पृहता श्वास-उच्छ्‌वास व.४

उपशम कर के कषाय चार का, अहंभाव छोडा सभान,
कीर्ति–ऋद्धि–सिद्धि को कुटुम्ब को, माना है पर्ण के समान व.५

अप्रमत्त आत्मभाव से बने, नष्ट बने पँचों प्रमाद;
निजसमान ज्ञान जीव मात्र का, प्रेमनदी वहती अगाध व.६

निश्चल है आत्मा का पन्थ यों, चञ्चलता नहीं लव लेश,
जगद्‌भाव में उदास हो रहे, आत्मभाव रक्ति थी परेश व.७

जीवन से मुक्त बने सिद्धि से, तीन भुवन ले लिये जी हाथ;
मानवभव सार्थक करने बडी, जलती जिज्ञासा का साथ व.८

बालब्रह्मचारी विनोदमुनिजी के

'अहम् भिक्खु' के उद्गार के साथ

शुद्ध चरित्र के विषय की उत्कृष्ट भावना के विषय में

सवत् २०१४ के ज्येठ शुक्ला द्वादशी, और ता ३०-५-'५८ के दिन बा ब्र विदुषी महासतीजी श्री जयाबाई स्वामीने, नयी पौषधशाला में दिये हुए प्रवचन का अवतरण।

आज ब्रा ब्र विनोदकुमार की दसवीं तिथि है। मेरा चातुर्मास गोण्डल है, अत आगामी तिथि पर मेरी उपस्थिति यहाँ नहीं होगी।

श्री अनुयोगद्वार सूत्र में चार प्रकारवाले सामयिक को कहा गया है। प्रथम है समकित सामयिक। यह देव, गुरु और धर्म को तत्त्वत्रय को भली भाँति धारण करती है। दूसरी समकित को श्रुतसामयिक कहा जाता है। तत्त्वज्ञानाध्ययन उसका लक्षण है। तीसरी को देशविरति सामयिक कहा गया है। उसका मतलब विरति और श्रावकों की अविरति स है। चौथी का नाम सर्वविरति सामयिक है। यह सर्व 'सावज्जजोग (सावद्ययोग) का सेवन करने के पच्चक्खाणवाली है। इस सामयिक के स्वामी महापुरुष ही होते हैं। वैराग्यवान् बालब्रह्मचारी विनोदकुमार मुनि ने इस चौथे प्रकारकी सामयिक का स्वयं स्वीकार किया, और अपने आत्मकल्याण के पथ पर चढ़ गए।

विरला जानन्ति गुणान् विरला कुर्वन्ति निर्धने स्नेहम्।
विरला परकार्यरता, परदुःखेऽपि दुःखिताः विरला॥

अर्थ –विरल पुरुष ही गुणों को जानते हैं, विरल पुरुष ही निर्धनों के ऊपर स्नेह रखते हैं; विरल आदमी ही दूसरों के कार्यों में रस लेते हैं; और दूसरों के दुःखों से दुःखित होनेवाले भी विरल ही होते हैं।

बाल ब्रह्मचारी विनोदमुनि के जीवन में
ये सब गुण गुम्फित ही थे।

महान ऋद्धिशाली और उच्चकुटुम्ब में जन्म लेनेवाले, एवं आदर्श मातापिता के सुपुत्र विनोदकुमार भाई का जीवन आदर्श और संस्कारी था, यह तो हम सब ने अपनी नज़रों से देखा है। एक को बुलाने पर पाँच हाज़िर हों, पानी माँगने पर दूध मिले, ऐसा वातावरण था। उस में पोषित हुए विनोदकुमार पापभीरु थे भौतिक वासनाओं से दूर थे; जिज्ञासु थे। वे सोते हों या जाग्रत हों, पर ज्ञानलब्धि ही उनका एकमात्र लक्ष्य था। हमारे पास भी अक्सर उनके दो प्रश्न आते रहते थे (१) दीक्षा ग्रहण करने के लिए कितनी हद तक अभ्यास करना चाहिए? (२) मोक्ष को प्राप्त करने के लिए छोटे से छोटा मार्ग क्या हो सकता है? ये दोनों प्रश्न अतीव रहस्यमय थे। विनोदभाई कौन सी भूमिका के ऊपर थे, उनकी आन्तरिक भावनाएँ क्या थीं, और उनका आत्म लक्ष्य क्या था, वह स्पष्टरूप से समझा जाता था। ससारियों एवं संयमधारियों को किस तरह शाता प्राप्त हो, वही उनका निरन्तर ध्येय बना रहा था।

सौभाग्यवती, सरलस्वभावी, सद्‌गुणी, सदाचारी मणिबहनने हमारे आगे स्वानुभव की बातें करते हुए बताया था कि, "विनोदभाई गर्भ में थे, तब मेरी हमेशा एक ही भावना रहती थी कि, मैं दूसरों के दुःखों मे किस प्रकार सहाय दे सकती हूँ? किस प्रकार दानशीलता में वृद्धि करूँ? किस तरह सुपात्र-दान करूँ? तदुपरान्त वैराग्य की भी मुझे उस समय प्रबल भावना रहती थी।"

ज्ञानी पुरुषों का कथन है कि महान् आत्माओं के लक्षण, गर्भ में से ही व्यक्त होते रहते हैं। यह कथन उपर्युक्त उदाहरण से सिद्ध होता है।

श्री विनोदकुमार मुनि, दीक्षित होने के बाद, उनके दर्शन करने की, उनके मातापिताकी, वीराणी कुटुम्ब की, राजकोट में निवास करते भाइयों और बहनों की एवं त्यागियों-वैरागियों -की भी भावना थी, परन्तु उनके मुनिवेश में तो राव बहादुर ने साक्षने ही दर्शन का लाभ लेकर महाभाग्य प्राप्त किया है। राव बहादुरने खीचन से राजकोट वापिस आने के बाद, वहाँ की घटना का वर्णन करते समय दो महत्त्व की बातें मुझ से कही थीं। एक बात यह कही थी कि- "श्री विनोदकुमार मुनि को मैंने जब प्रथम मुनिवेश में देखा, तब उनके मुनिवेश और रजोहरण ऐसे शोभित हो रहे थे कि मानो मुनि जी बहुत वर्षों के पुराने संयम धारी हों।" दूसरी बात उनकी यह थी कि-"मुनिजी के साथ की गई बातचीत में मुझसे 'विनोदभाई' का सम्बोधन हो गया, पर मुनिश्री ने तुरत ही मेरा ध्यान खींचकर, मुझसे कहा कि 'भद्रम् भिक्खु' इन शब्दों को सुनकर मेरे हृदयमें अपनी गल्ती के लिए दुःख हुआ था।"

इस प्रकार राव बहादुर जीने मुझे बताया था। इन दोनों घटनाओं के ऊपर विचार करते मैं इस अभिप्राय के ऊपर आयी थी कि, मुनिजी की ये सभी तैयारियाँ पूर्वभवकी ही होनी चाहिएँ। 'भद्रम् भिक्खु' ये शब्द, उनकी वर्तमान अवस्था की सावधानता को सूचित कर रहे थे।

श्री विनोदकुमार मुनि को उनके सच्चे रूप में नहीं पहचान पाये, और मुनिवेश में उनके दर्शन भी न हो पाये, इस विषय का भी दुलभजी भाई और श्री मती मणिबहन को अवर्णनीय दुःख रहा है। मैंने इस स्थल से आगे भी कहा है, और आज फिर से कहती हूँ कि, इस के लिए आर्तध्यान करने की कोई जरूरत ही नहीं है। मुनि जी तो वीराणी कुटुम्ब

के एक 'भूषण' रूप ही वन गए। उनके विरह से केवल वीराणी कुटुम्ब को ही हानि हुई है, ऐसा नहीं है, उनके विरह से तो समस्त स्थानकवासी समाजने एक भावी महापुरुष को गँवाया है।

वा. ब्र. विनोदकुमार मुनि तो छोटे समय में अपने कार्य को सिद्ध कर गये। आज हम उनकी तिथि के अवसर पर तप, जप, नियम-जो कुछ वन सके, करके उन के गुणों का अनुसरण कर, मानवभव का सार्थक्य प्राप्त करें, यही हमारे लिए हितावह है।

*

व्याख्यान के अन्त में परिषद् में सभी भाइयों और बहनों ने अपनी शक्ति के अनुसार व्रत, पचक्खान अंगीकार किए थे।

❀

आज तिथी के दिन पर छत्तीस पौषध हुए थे।

❀

॥ श्री ॥

नव दीक्षित संत आपने तो, कर दिया कमाल
मरती हुई गायोंकों मुनिवरने लिया संभाल
दुर्लभजी तात आपके मणि वेनके हो लाल
राजकोट के निवासी, कर दिया कमाल
जै जै विनोद, जै जै विनोद, जै ॥१॥
बचपनसें ही था आपको, प्रशस्त धर्मराग
थे विश्वसे विरक्त, हृदयमें भरा विराग

महावीर के चरणोंमें था, मुनिका अटल अनुराग
अपनाया संयम शुद्ध है, आदर्श मुनिका त्याग
जै जै विनोद, जै जै विनोद, जै ॥२॥

सिरथेय लाल, मान, कान, पारस मुनि प्यारे,
विनोद मुनिके संग, फलोदी में पधारे;
स्वीकृत हुआ पावस खुले सब भाग्य हमारे
लगते थे धर्मबागमें जिनधर्म के नारे
जै जै विनोद, जै जै विनोद, जै ॥३॥

विधी को न मंजूर था सुख सौभाग्य हमारा
उत्साह सब आनंद हो गया भंग सब सारा
ट्रेन दुर्घटनासे साधक स्वर्ग सिधारा
प्राणोंका खेल खेलकर गौवोंका उधारा
जै जै विनोद, जै जै विनोद जै ॥४॥

आदर्श गौ रक्षा का यह कैसा मान है
सुवर्ण अक्षरों में लिखने योग्य यह बलिदान है
जिन धर्म की मुनिने बढ़ाई आज शान है
चिर शान्ति पाये मुनि "गुलाब" का यह ध्यान है
जै जै विनोद, जै जै विनोद जै ॥५॥

गुलाबचन्द गोलछा (वकील)
फलोदी (राजस्थान)

